प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड सन्स,
कश्मीरीगेट दिल्ली।

मूल्य तीन रुपए
प्रथम संस्करण १९५२

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग,
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस,
क्वींस रोड दिल्ली।

समर्पण

उन मुसाफिरों को;

जो कहानी सुनते-सुनाते

अपना रास्ता तय कर लेते हैं।

—'जिज्ञासु'

भूमिका

जिज्ञासु जी की पुस्तक 'कहानी और कहानीकार' हिन्दी पाठकों की एक बड़ी आवश्यकता को पूरा करती है।

पुस्तक के प्रारम्भ में ही जिज्ञासुजी कहते हैं—"अनन्त काल से मनुष्य चित्र, मूर्ति, संगीत, कविता आदि भिन्न-भिन्न प्रणालियों के द्वारा अपनी भावनाओं को व्यक्त करता चला आ रहा है। भावनाओं की इसी अभिव्यक्ति अथवा आविष्करण को कला कहते हैं। साहित्य भी एक प्रकार की कला है. ऐसी कला जो हमारे मस्तिष्क की जिज्ञासा-वृत्ति को ही शान्त नहीं करती वरन् मानव-जीवन को अधिक सुखी और मंगलमय देखना चाहती है। भावना और कल्पना के संसार मे जीवन जिस रूप में दिखाई देता है, साहित्य उसी की आलोचना, व्याख्या और उद्भावना करता रहता है। स्पष्टतः साहित्य का प्रभाव अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। जिस प्रकार कला का सम्बन्ध किन्हीं विशेष नियमो से नहीं होता, ठीक उसी प्रकार साहित्य भी विशेष नियमो से आबद्ध नहीं। साहित्य सरिता की तरह स्वतन्त्र है, लेकिन स्वतन्त्रता के साथ सदैव स्वेच्छाचारिता का भय लगा रहता है, बस इसी-लिए साहित्य-शास्त्रियो को कुछ अनुशासन की आवश्यकता पड़ी और समय-समय पर आवश्यकतानुसार कुछ ऐसे नियम बना दिए गए, जिन पर चलना सबके लिए लाभदायक सिद्ध हुआ।"

जैसे व्याकरण के पूर्व भाषा का विकास हुआ वैसे ही कला की शैलियों के नियमों के पूर्व कला का विकास हुआ। जिज्ञासुजी ठीक कहते हैं कि साहित्य सरिता की तरह स्वतन्त्र है, इसीलिए उन्होंने पुराने-से-पुराने कहानी-लेखकों से लेकर आधुनिकतम कहानी-लेखकों का बड़ी उदारता के साथ समीक्षण किया है।

बात यह है कि प्रत्येक मौलिक कलाकार विद्रोही होता है, पवन की तरह मुक्त और सरिता-जैसा स्वतन्त्र। तभी वह जीवन को कुछ प्रदान कर जाता है। फिर भी जैसे पवन की मुक्तता पर प्रकृति के कुछ अकुश और सरिता के स्वतन्त्र प्रवाह पर गुरुत्वाकर्षण और कूलों के अनिवार्य बन्धन लगे हुए हैं उसी प्रकार कला-कार के विद्रोहों की भिन्नताओं का वर्गीकरण करते-करते कुछ ऐसे नियम निर्धारित हो जाते हैं जिनकी अज्ञात साधना द्वारा कला की अभिव्यञ्जनाएं आविर्भूत होती

रहती हैं। सरिता अपने कूलो को काटती छाँटती रहती है और उनका विस्तार करती जाती है। कलाकार भी नियमों के बन्धनो को काटकर आगे बढ़ता है, विस्तार पाता है और नये नियमों की सृष्टि का आयोजन प्रस्तुत करता रहता है।

एक युग था जब पढ़ने वाले वर्ग के जीवन में अधिक अवकाश था। लम्बी कहानियो की चाह थी। एलन पो ने कहानियों के पढ़ लेने की समय-सीमा आध घंटे से दो घंटे तक रखी है। आधुनिक युग यान्त्रिक सभ्यता का युग है। पाठक के पास अवकाश कम है। मनोविज्ञान की सूक्ष्मताओं पर निरन्तर प्रकाश पड़ता जा रहा है। पाठक की जानकरी उत्तरोत्तर बढ़ती चली जा रही है। "अत आज के कर्म-क्लान्त जीवन में जो कहानीकार छोटी-से-छोटी कहानी द्वारा कम से कम समय मे पाठकों के जीवन को आनन्द-रस से सरसित कर सके, वही सच्चा कहानीकार कहा जा सकता है और उसी की कहानियाँ जनता के गले का हार हो सकती हैं।"

मैं इस निष्कर्ष से बिलकुल सहमत हूँ।

जिज्ञासुजी ने कहानी की विविध शैलियों का विवेचन किया है और कहानी किन बातों में उपन्यास, नाटक, आख्यायिका, रेखा-चित्र तथा कविता इत्यादि से भिन्न हो गई है इसका शास्त्रीय विश्लेषण किया है।

यह बिलकुल सही है कि कहानी ने अपने लिए बहुत-सा पोषक तत्व नाटक से पाया है, परन्तु अब तो वह नाटक से बिलकुल ही भिन्न हो गई है, यद्यपि वह नाटक और उपन्यास का सूक्ष्म रूप में समन्वय है। और ऐसा कि उसका निज का आकर्षक सौन्दर्य दोनों से अलग है।

डॉक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहीं कहा है कि कहानी वह है जिसमें कहानीपन हो। कहानीपन क्या है, इसका विशद तथा सुन्दर विवेचन जिज्ञासुजी ने अपनी इस पुस्तक में अत्यन्त मनोयोग से किया है। हिन्दी-कहानियों का इतिहास भी 'कहानी और कहानीकार' में है। डॉक्टर कृष्णलाल की पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' से एक उद्धरण जिज्ञासुजी ने दिया है—"आधुनिक कहानी साहित्य का एक विकसित कलात्मक रूप है जिसमें लेखक अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे, कम-से-कम पात्रों अथवा चरित्रों के द्वारा, कम-से-कम घटनाओं और प्रसगों की सहायता से मनोवाछित कथानक, चरित्र, वातावरण, दृश्य अथवा प्रभाव की सृष्टि करता है। लेखक यह सब कैसे करता है? जिज्ञासुजी ने 'कहानी और कहानीकार' पुस्तक में विस्तृत अन्वेषण, व्याख्या और उदाहरणों के साथ बतलाया है।

जिज्ञासुजी ने 'कहानी के उपकरण' शीर्षक परिच्छेद में बिलकुल ठीक कहा

है कि "मानवजीवन-सम्बन्धी गहरे अनुभवों की चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति ही कहानी का श्रेष्ठ आधार है।"

'कहानी के प्रमुख अंग' शीर्षक परिच्छेद में एक बहुत ध्यान देने योग्य बात कही गई है :

"भाषा और शैली के विषय में यह ध्यान रखना चाहिए कि उसका एक शब्द भी निरर्थक और व्यर्थ न हो। अच्छी शैली वह तपस्या है, जिसके लिए वर्षों तक कठिन साधना करनी पड़ती है।"

'कहानी में क्या हो' शीर्षक परिच्छेद में (१) मौलिकता, (२) घटनाओं की बारीकी और उन पर विश्वास, (३) व्यक्तित्व, (४) सरसता, (५) विषय की जानकारी, (६) प्रिय विषय, (७) हृदय की प्रधानता, (८) जो कुछ हो, एक हो, और (९) अनुभूति शीर्षक प्रसंगो की विवेचनात्मक व्याख्या की गई है। पूरी पुस्तक की योजना शास्त्रीय है।

गुलेरीजी की अत्यन्त प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' की विश्लेषणात्मक व्याख्या करके जिज्ञासुजी ने कहानी-लेखको के लिए स्पष्ट दिग्दर्शन किया है।

कहानियाँ लिखने की चाह असंख्य युवकों में है और बहुत-से लिखते भी हैं। उनके लिए मेरी सम्मति है कि जिज्ञासुजी की पुस्तक 'कहानी और कहानीकार' का पारायण और मनन करें।

हिन्दी-साहित्य और विशेषतः हिन्दी कहानियो के विद्यार्थियों को भी यह पुस्तक अवश्य अपने पास रखनी चाहिए। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। ऐसी सुन्दर पुस्तक लिखने के लिए जिज्ञासुजी को मेरी बधाई।

झाँसी
२१ फरवरी '५२

वृन्दावनलाल वर्मा

अपने विषय में

अपने विषय में अपनी ही लेखनी से एक विस्तृत भूमिका लिखने की प्रवृत्ति मुझमें नहीं, लेकिन फिर भी ग्रन्थ की उपयोगिता पर दो-चार शब्द कह देना आवश्यक समझता हूँ, जिससे कि दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाय और पाठकों को मुझे समझने में सहायता मिल सके। इसके लिए मैं केवल नपे-तुले शब्द ही कहना पसन्द करूँगा।

कहानी लिखने के पूर्व हमारे तरुण कलाकारों को जिन-जिन आवश्यक बातों को ध्यान में रखना चाहिए, उन समस्त बातों पर इस ग्रन्थ के प्रथम पाँच प्रकरणों में जमकर विचार किया गया है। मेरा अपना विचार है, यदि कहानी लिखने के शौकीन नौजवान उन्हें एक बार हृदयगम कर लें तो फिर शनै-शनै उनकी कहानी-कला का परिमार्जन और परिष्कार होता चला जायगा और अन्तत वे एक सुन्दर कलापूर्ण कहानी की सृष्टि करने में समर्थ हो सकेंगे। हिन्दी के ऐसे प्रेमी, जो कहानी-साहित्य से विशेष दिलचस्पी रखते हैं, इस ग्रन्थ पर विहगम दृष्टि डालकर कहानी-विषयक प्राय समस्त अगों का सम्यक् परिचय प्राप्त कर सकते हैं। उन्हें इसे पढ़कर स्पष्ट विदित हो जायगा कि केवल अल्प वर्षों के भीतर हमारी कहानियों ने अभूत-पूर्व उन्नति कर ली है तथा उनकी आत्मा और शैली में महान् परिवर्तन उपस्थित हो गया है। इन दोनों वर्गों की अपेक्षा, यह ग्रन्थ उन हिन्दी-विद्यार्थियों के लिए विशेष लाभदायक सिद्ध होगा जो प्रतिवर्ष विभिन्न परीक्षाओं की तैयारी करते रहते हैं। विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत हिन्दी की एफ० ए०, बी० ए०, एम० ए० आदि कक्षाओं के पाठ्य-क्रम में कहानियों का एक-न-एक सग्रह अवश्य रहने से यह ग्रन्थ छात्रों तथा अध्यापकों के साहित्यिक यात्रा-पथ में सम्बल का कार्य भी दे सकेगा, क्योंकि इन विविध सग्रहों के लिए कोई ऐसा सहायक ग्रन्थ मेरे देखने में अब तक नहीं आया, जिससे उनकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति स्वाभाविक रूप से हो जाय।

कहानी साहित्य को पूर्ण-रूप से समझने तथा सग्रह-विशेष के तत्सम्बन्धी ज्ञानोपार्जन के लिए अब उन्हें निराश होने की आवश्यकता नहीं। प्रथम प्रकरण से पचम प्रकरण तक कहानी-कला के प्रत्येक पहलू पर विचार किया गया है, षष्ठम प्रकरण में रूप और शैली की दृष्टि से कहानी-साहित्य के विकास पर विचार किया गया है तथा उसी के अन्तर्गत प्रमुख-प्रमुख कहानीकारों की विवेचना भी कर दी गई है। सप्तम प्रकरण में कहानीकार

गुलेरी की 'उसने कहा था' की आलोचना प्रस्तुत करने का प्रयोजन, विद्यार्थियों को आलोचना करने की पद्धति से परिचित कराना है। आशा है, छात्र इससे अधिकाधिक लाभ उठाकर स्वतंत्र रूप से कहानी को पढ़कर आलोचना करना सीख सकेंगे। अंत में, परिशिष्ट के रूप में हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठ कहानीकारों की कतिपय कलापूर्ण कहानियो के नाम देकर, एक ओर तो विद्यार्थियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया है तथा दूसरी ओर अपने संग्रह-कर्ताओं के लिए भी आवश्यक कहानियाँ एक स्थान पर एकत्रित करके रख दी गई हैं। इस प्रकार तरुण कहानीकारों, हिन्दी-प्रेमियो, छात्रो, अध्यापकों तथा संग्रह-कर्ताओ आदि के हितो को दृष्टि-पथ पर रखते हुए 'कहानी और कहानीकार' नामक प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन हुआ है। मेरा प्रबल विश्वास है, कि इसे पढ़कर उनकी वे समस्त कठिनाइयाँ दूर हो सकेंगी जिसका सामना वे अब तक करते आए हैं। अस्तु,

"हमारा कहानी-साहित्य दिन-दिन अपने चरम उत्कर्ष की ओर उन्मुख होता चला जा रहा है और इस क्षेत्र में सदैव नये-नये लेखकों की अवतारणा होती जा रही है। ऐसी अवस्था में कहानियों की संख्या बढ़ जाना स्वाभाविक ही है। एक लेखक की समस्त कहानियो की पृथक्-पृथक् विवेचना प्रस्तुत करना और वह भी इस छोटे से ग्रन्थ में नि.सन्देह एक दुष्कर कार्य है। यद्यपि इसी उद्देश्य से मैंने यह कार्य हाथ मे लिया था, किन्तु विस्तार-भय से मुझे अपना यह विचार थोड़े समय के लिए स्थगित करना पड रहा है। इसलिए षष्ठम प्रकरण 'कहानी-साहित्य का विकास' में मैंने आधुनिक काल के अंतर्गत उन समस्त कहानीकारों की विवेचना कर दी है जिनकी कि कहानियाँ विविध संग्रहों में प्राय. रखी जाती हैं। इन लेखकों पर अभी सब कहानियो को ध्यान में रखते हुए समष्टिरूप से ही विचार व्यक्त किये गए हैं, न कि किसी कहानी-विशेष को ध्यान में रखकर, क्योंकि जैसा कि कहा जा चुका है वह एक लम्बा विषय है। इतना होते हुए भी जिन-जिन विचारो का समावेश इस पुस्तक में हुआ है, वे लेखक की किसी भी कहानी पर घटित किये जा सकते हैं। अन्य नवीन लेखकों की बढ़ती हुई संख्या को देखकर उन्हें एक चलता रूप दे दिया गया है। ठीक भी है, क्योंकि अभी उनकी कहानी-कला विकासोन्मुखी है, पूर्ववर्ती लेखको की भाँति जब उनकी कला प्रौढ़ और परिपक्व हो जायगी तब उन पर भी जमकर विचार कर लिया जायगा। अपनी ओर से सावधानी रखते हुए यद्यपि मैंने आज के प्रत्येक प्रख्यात कहानी-लेखक का पूरा-पूरा ध्यान रखा है, किन्तु फिर भी यदि कोई छूट गया हो तो भूल मनुष्य से ही होती है ऐसा विचार करके विद्वन्मंडली यदि मुझे क्षमा कर देगी तो मुझ पर विशेष कृपा होगी। साथ ही छूटे हुए कहानीकारों

के सम्बन्ध में विश्वास दिलाता हूँ कि उनके ज्ञात होते ही अथवा ध्यान दिलाते ही, मैं उन्हें अविलम्ब जोड़ने का प्रयत्न करूँगा।

इस ग्रन्थ को अस्तित्व में लाने के लिए जिन-जिन विद्वानों की विचार-धाराओं से मैं प्रभावित हुआ हूँ, उन सबका मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ। इसके लिए अधिक लिखने की क्या आवश्यकता ? श्रद्धेय डॉ० सोमनाथजी गुप्त, एम० ए० पी-एच० डी० अध्यक्ष हिन्दी-संस्कृत-विभाग, जसवन्त कालेज, जोधपुर का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ। यथार्थ में यह उनकी प्रेरणा तथा प्रोत्साहन का ही शुभ परिणाम है। मैं 'आत्माराम एण्ड सन्स' के प्रबन्धक भाई श्री भीमसेन जी का विशेष आभारी हूँ, जिनकी अनुकम्पा से यह पुस्तक इतनी शीघ्र और इतने सुन्दर रूप मे प्रकाशित हो रही है। हिन्दी के प्रचार और प्रसार में आप जो कार्य कर रहे हैं, वह सर्वथा स्तुत्य है। अन्त में मैं श्री क्षेमचन्द्र जी 'सुमन' को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता जिन्होंने पुस्तक को शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित करने में हर प्रकार से सहयोग प्रदान किया है।

अन्त में, सबके हितों की आशा करके ही मैं अपने इस श्रम से कुछ सन्तोष-लाभ कर सकता हूँ।

जसवत कॉलेज जोधपुर
१ मार्च १९५२

मोहनलाल 'जिज्ञासु'

१. कहानी क्या है ?

[पृष्ठ १ से पृष्ठ १६ तक]

२. कहानी के उपकरण

[पृष्ठ २० से पृष्ठ २४ तक]

३. कहानी के प्रमुख अंग

[पृष्ठ २५ से पृष्ठ ३८ तक]

४. कहानी में क्या हो ?

[पृष्ठ ३६ से पृष्ठ ४३ तक]

५. कहानियों का वर्गीकरण

[पृष्ठ ४४ से पृष्ठ ४६ तक]

६. कहानी-साहित्य का विकास

[पृष्ठ ५० से पृष्ठ १२५ तक]

७. उपसंहार

[पृष्ठ १२६ से पृष्ठ १२७ तक]

८. आलोचना करने का ढंग

[पृष्ठ १२८ से पृष्ठ १४७ तक]

१

कहानी क्या है ?

(१) *साहित्य में कहानी का स्थान :*—अनन्त काल से मनुष्य चित्र, मूर्ति, संगीत, कविता आदि भिन्न-भिन्न प्रणालियों के द्वारा अपनी भावनाओं को व्यक्त करता चला आ रहा है। भावनाओं की इसी अभिव्यक्ति अथवा आविष्करण को कला कहते हैं। साहित्य भी एक प्रकार की कला है, ऐसी कला जो हमारे मस्तिष्क की जिज्ञासा-वृत्ति को ही शांत नहीं करती वरन् मानव-जीवन को अधिक सुखी और मंगलमय देखना चाहती है। भावना और कल्पना के संसार मे जीवन जिस रूप में दिखाई देता है, साहित्य उसी की आलोचना, व्याख्या और उद्भावना करता रहता है। स्पष्टत: साहित्य का प्रभाव अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। जिस प्रकार कला का सम्बन्ध किन्हीं विशेष नियमों से नहीं होता, ठीक उसी प्रकार साहित्य भी विशेष नियमों से वद्ध नहीं। साहित्य सरिता की तरह स्वतन्त्र है, लेकिन स्वतन्त्रता के साथ सदैव स्वेच्छाचारिता का भय लगा रहता है, बस इसीलिए साहित्य-शास्त्रियों को कुछ अनुशासन की आवश्यकता पड़ी और समय-समय पर आवश्यकतानुसार कुछ ऐसे नियम बना दिये गए, जिन पर चलना सबके लिए लाभदायक सिद्ध हुआ। धीरे-धीरे संग्रह रूप मे हमारे सामने जो साहित्य था, मूल रूप मे वही काव्य के नाम से संबोधित किया जाने लगा। अपने-अपने देश के साहित्य को वहाँ के लोग काव्य-ग्रन्थ के नाम से पुकारने लगे। साहित्य और काव्य का यह भेद केवल व्यवहार की दृष्टि से किया गया, जिसके अन्तर्गत गद्य-पद्य और गद्य-पद्य का सम्मिश्रण, संस्कृत में जिसे चम्पू कहते हैं, समझा जाने लगा। कालान्तर में शब्दों को पारिभाषिक रूप देने तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए व्यवहार की दृष्टि में काव्य के भी दो भेद कर दिये गए—एक गद्य-काव्य और दूसरा पद्य-काव्य। पद्य-काव्य के अन्तर्गत कविता

समझी जाने लगी और गद्य-काव्य के अन्तर्गत उपन्यास, कहानी, निबन्ध और साहित्यिक आलोचना। इस प्रकार समष्टि रूप से कहानी एक कला है, वह गद्य-काव्य का एक भेद है और साहित्य का ही एक विशेष अंग है।

चित्र द्वारा कहानी का स्थान :—
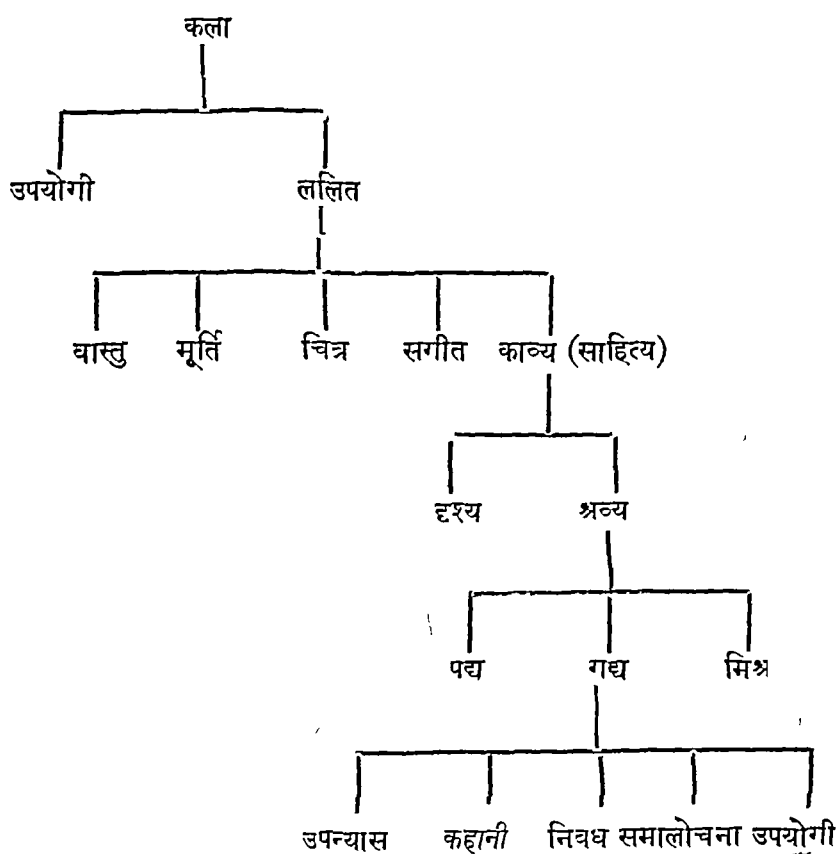
कहानी का परिचय बहुत व्यापक तथा विस्तृत है । इसमें प्रबंधता लिये कविता, नाटक, उपन्यास, कथा, गल्प आदि सभी सम्मिलित हैं । बहुत दिनों तक कथा-साहित्य-मात्र इस परिचय का विषय रहा, परन्तु कालान्तर में कहानी शब्द विशेष अर्थ का सूचक हुआ । जो लोग कहानी की सृष्टि किसी आकस्मिक घटना अथवा स्वतन्त्र रीति से मानते हैं, वे एक बड़ी भारी भूल कर रहे हैं । कहानी का स्वरूप-निर्माण नाटक, निबंध, उपन्यास, कविता आदि के सम्पर्क से ही हुआ है । आधुनिक कहानी अपनी जिस चरम प्रगति की ओर उन्मुख हुई है और उसे जो एक पृथक् स्वरूप मिला है, उसका सम्पूर्ण श्रेय पाश्चात्य देशों को ही है, यह हमें निर्विवाद रूप से स्वीकार कर लेना चाहिए । पाश्चात्य साहित्य में नाटक, निबन्ध, उपन्यास, कविता आदि की सृष्टि होने के उपरान्त आगे चलकर कहानी की अवतारणा हुई और धीरे-धीरे परिवर्तित सामाजिक और कलात्मक परिस्थितियों के कारण इसने अपने कला-रूप में इतनी उन्नति कर दिखाई कि साहित्य में इसने अपनी पृथक् और स्वतन्त्र सत्ता धारण कर ली । वाङ्मय के रूप में कहानी का नम्बर बाद में ही आता है । अतएव यहाँ उपन्यास, नाटक, निबन्ध, कविता आदि से कहानी की समानता विषयक अल्प जानकारी हमारे लिये विशेष लाभदायक सिद्ध होगी ।

(२) *कहानी, उपाख्यान अथवा आख्यायिका और रेखाचित्र* (Sketch) :— कहानी को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—उपाख्यान अथवा आख्यायिका, रेखाचित्र और कहानी । पुराण और बाइबिल आख्यायिकाओं से भरे पड़े हैं । उपाख्यान का दूसरा नाम आख्यायिका है, जो अत्यन्त प्राचीन है । भारतवर्ष में कथा-साहित्य के विकास का प्रथम और प्रमुख युग इन्हीं उपाख्यानों का है, जिनका महत्त्व ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत अधिक हो जाता है । महाभारत में कौरव-पाण्डवों की कथा के अन्तर्गत ऐसी छोटी-मोटी अनेक कहानियाँ हैं, जिन्हें हम उपाख्यान (आख्यायिका) कहते हैं । आज कहानी को हम जिस अर्थ में ग्रहण करते हैं, वह इन उपाख्यानों से सर्वथा भिन्न है, क्योंकि इन कहानियों का उद्देश्य मनोरंजन न होकर कहानी के रूप में जीवन के किसी गंभीर तत्त्व की आलोचना करना तथा नीति और धर्म की शिक्षा देना ही है । जैसे 'एक दुष्ट बिल्ली ने साधु-वेश में चूहों को धोखा देकर उन्हें अपने चंगुल में फँसा लिया ।'... ...इससे यही उपदेश मिलता है कि दुष्ट पुरुषों के धोखे में नहीं आना चाहिए । इस प्रकार इन कहानियों के द्वारा उपदेश ही अधिक मिलता है, जिससे पढ़ने अथवा सुनने वाले के हृदय पर धर्म-तत्त्व की चिरस्थायी

छाप ही अधिक पड़ती है । स्पष्टतः साहित्यिक दृष्टि से ये कहानियाँ आज की कहानियों से कोसों दूर हैं, जिनके द्वारा मनोरंजन भी होता है और साहित्यिकता भी मिलती है । आज कहानीकार जिन तत्त्वों को सामने रखकर कहानी लिखता है, उनमें से रत्ती-भर भी इन कहानियों में नहीं दिखलाई देते । असंख्य देवी-देवताओं की सृष्टि करके ये कहानियाँ अभौतिक और अतिभौतिक सत्ताओं को ही अपना विषय बनाती हैं और बाह्य वर्णन की ओर ही ध्यान देती हैं। संक्षेप मे आत्मा, वातावरण, रूप और शैली आदि की दृष्टि से उनमे और आज की कहानियों में जमीन-आसमान का अन्तर है। रेखाचित्रों (Sketches) के नमूने तो आजकल हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रचुर मात्रा में देखने को मिलते हैं। इनमे जो कहानियाँ प्राय: प्रकाशित हुआ करती हैं, अधिकांश में वे कहानियाँ नहीं होतीं—रेखाचित्र (Sketch) होते हैं, क्योंकि कहानी मे जिन-जिन तत्त्वों का समावेश आवश्यक समझा गया है, उनमें इनका सर्वथा अभाव पाया जाता है । वस्तुत कहानी और रेखाचित्र में बड़ा भारी अन्तर है । कहानियों मे घटनाएं रेलगाड़ी के डिब्बों की तरह एक दूसरे से जुडी हुई होती हैं—घटनाओं की शृङ्खला छिन्न-भिन्न हो जाने से उनका समूचा सौन्दर्य नष्ट हो जाता है । ये सम्वद्ध घटनाएं अपने निश्चित उद्देश्य की ओर अग्रसर होती रहती है और ऐसा करते समय पाठकों की उत्सुकता (Suspense) जागृत करती हुई कहानी अपनी चरम सीमा (Climax) की स्थिति को पहुँचती है । चरम सीमा वाली स्थिति कहानी का प्राण है। आगे चलकर कहानी की आकस्मिक समाप्ति हो जाती है। परन्तु रेखाचित्र (Sketch) की स्थिति कहानी से सर्वथा भिन्न है। प्रवाह तो रेखाचित्र में कहानी-जैसा ही होता है, परन्तु उसमें न तो कथानक होता है और न चरम सीमा वाली स्थिति ही आती है । फिर रेखाचित्र में कहानी की तरह आकस्मिक समाप्ति नहीं होती । इसलिए आकस्मिक समाप्ति के द्वारा कहानी का जो प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता है , वह रेखाचित्र के द्वारा कदापि नहीं पड़ सकता । संक्षेप में कहानी का स्थान उपाख्यान अथवा आख्यायिका और रेखाचित्र (Sketch) इन दोनों से परे है।

(३) *कहानी और उपन्यास*:—आरम्भ में जब कहानी का व्यक्तित्व विकसित नहीं हो पाया था, तब कहानी और उपन्यास में कोई तात्त्विक भेद नहीं माना जाता था । आकार में यदि कहानी कुछ बड़ी हो जाती तो वह उपन्यास का रूप धारण कर लेती और यदि उपन्यास कुछ छोटा हो जाता तो

लोग उसे कहानी समझ लेते थे। रूस के प्रसिद्ध कलाकार टॉलस्टॉय की विश्व-विख्यात कहानी 'क्रियोजर-स्नाता' यथार्थ में एक कहानी है, लेकिन आकार मे बड़ी होने के कारण सभी उसे उपन्यास की श्रेणी में समझ बैठे हैं। इसी प्रकार हिन्दी मे पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की 'चन्द हसीनों के ख़तूत' को हम कहानी नहीं कह सकते। कहानी और उपन्यास के आकार में बड़ा भारी अन्तर होता है। उपन्यास तो महीनों मे समाप्त किया जा सकता है, लेकिन कहानी सदैव एक ही बैठक मे समाप्त कर दी जाती है। कहानी-साहित्य के विकास मे इसी-लिए लेखक आकार की दृष्टि से अन्य उपकरणों की अवहेलना करके उपन्यास को कहानी और कहानी को उपन्यास लिखते चले आ रहे है।

आकार के अतिरिक्त कहानी और उपन्यास मे पहले कल्पना का पुट प्रचुर मात्रा में पाया जाता था। दोनों में घटनाओं और पात्रों की योजना अनिवार्य रूप से समझी जाती थी। कहानी और उपन्यास की यह मूलगत विशेषता कालान्तर में नष्ट हो गई और समय तथा परिस्थितियों के परिवर्तन से धीरे-धीरे कहानी-कला के अन्य उपकरण इतने प्रस्फुटित हो गए कि एक दिन कहानी ने अपनी पृथक् सत्ता धारण कर ली। आज कहानी का उपन्यास से एक सर्वथा भिन्न और पूर्णतया स्वतन्त्र साहित्यिक रूप है। जो लोग कहानी को उपन्यास का ही लघु-रूप समझ बैठे हैं, उनका ऐसा समझ बैठना सर्वथा भ्रांति-पूर्ण है। आधुनिक युग यांत्रिक सभ्यता का युग है। हमारे दैनिक जीवन मे संघर्ष और जटिलता की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। जीवन का तूफान मेल इतनी द्रुत-गति से भाग रहा है कि मनुष्य को पल-भर भी ठहरने का अवकाश नहीं। ऐसी दशा में मनुष्य की सदैव यही मनोकामना रहती है कि वह कम-से-कम समय मे अच्छी-से-अच्छी चीज़ लिखता-पढ़ता रहे। आधुनिक युग मे छोटी कहानियों की लोकप्रियता का यही कारण है। एलेन पो ने इसीलिए कहानी की विवेचना करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि कहानी वह है जो आध घंटे से लेकर एक या दो घंटे मे पढ़ी जा सके और इसी को बढ़ाकर हेनरी हडसन ने दूसरे स्थान पर कहा है कि कहानी उसी को कहेंगे जो एक ही बैठक मे सुगमता से समाप्त की जा सके। अतः आज के कर्म-क्लान्त जीवन में जो कहानीकार छोटी-से-छोटी कहानी द्वारा कम-से-कम समय में पाठकों के जीवन को आनन्द-रस से सरसित कर सके, वही सच्चा कहानीकार कहा जा सकता है और उसी की कहानियाँ जनता के गले का हार हो सकती हैं। कहानी के वास्तविक स्वरूप को पहचानते हुए एक स्थान पर

स्वर्गीय मुन्शी प्रेमचन्द ने भी यही बात लिखी है—

'हम कहानी ऐसी चाहते हैं कि वह थोडे शब्दों मे कही जा सके। उसमें एक वाक्य, एक शब्द भी अनावश्यक न आने पाय। उसका पहला ही वाक्य मन को आकर्षित कर ले और अन्त तक उसको मुग्ध किये रहे और उसमें कुछ चटपटापन हो—कुछ ताजगी हो, कुछ विकास हो, उसके साथ ही कुछ तत्त्व भी हो, तत्त्व-हीन कहानी से चाहे मनोरंजन भले ही हो जाय, मानसिक तृप्ति नहीं होती। यह सच है कि हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते, लेकिन विचारों को उत्तेजित करने के लिए, मन के सुन्दर भावों को जागृत करने के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य चाहते हैं। वही कहानी सफल होती है, जिसमे इन दोनों में से, मनोरजन और मानसिक तृप्ति मे से, एक अवश्य उपलब्ध हो। सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार कोई मनोवैज्ञानिक सत्य हो।'

ऊपर के कथन से स्पष्ट है कि अब कहानी और उपन्यास का भेद केवल आकार का ही नहीं है। कहानी का लघु आकार तो समय और परिस्थितियों का तकाजा है और है उसके विषय का सकोच। स्पष्ट है, कहानी के छोटे-से दायरे में जीवन की उतनी अधिक विवेचना चाहना वृथा है, जितनी कि उपन्यास मे। वस्तुतः उपन्यास और कहानी के उद्देश्य, कथानक, रचना-कौशल, चित्रण की प्रणाली, परिस्थिति और अभिव्यक्ति में भेद पाया जाता है। इस तरह कहानी की अपनी पृथक् विशेषता और विशिष्टता है तथा उपन्यास की अपनी पृथक्। कहानी मानव-जीवन की एक झलक है, उपन्यास उसका पूरा चित्र। कहानी यदि एक बिन्दु है तो उपन्यास उसकी एक रेखा। एक में जीवन की किसी विशेष अवस्था का चित्र पाया जाता है, दूसरे मे उसी की पूर्णता देखने को मिलती है। उपन्यास में किसी चरित्र की सम्पूर्णता होना आवश्यक है, कहानी मे चरित्र के किसी अंश-विशेष का चित्रण पर्याप्त है। कहानी केवल एक विशेष घटना को लेकर ही आगे अग्रसर होती है और जहाँ वह समाप्त होती है, कहानी का अन्त भी उसी स्थल पर हो जाता है। जीवनी, इतिहास और उपन्यास की भाँति जो लोग कहानी में क्रमबद्ध घटनाए देखने की चेष्टा करेंगे, उन्हें यहाँ निराश होना पड़ेगा। जीवन की किसी भी विशेष घटना को लेकर एक सुन्दर कहानी की सृष्टि हो सकती है और यही कहानी का प्रधान कार्य है।

उपन्यास मे विविध चरित्रों के समावेश के द्वारा समाज का एक सर्वांग-पूर्ण चित्र उपस्थित किया जाता है, लेकिन कहानी मे एक-दो पात्रों के किन्हीं एक-दो स्वरूपों को ही चित्रित किया जाता है। यहाँ यह बात समझ लेना आव-

श्यक है कि उपन्यासकार की ही भाँति कहानीकार को भी समाज के सर्वांग-पूर्ण चित्र, जीवनी की पूर्णता तथा विस्तृत परिस्थितियों और मनोभावों का ज्ञान परमावश्यक है, क्योंकि उसके बिना कहानी की सृष्टि नहीं हो सकती। इस दृष्टि से कहानी और उपन्यास का भेद स्पष्ट करते हुए प्रेमचन्द ने कहानी की जो व्याख्या की है, उसे यहाँ उद्धृत करने का लोभ हम संवरण नहीं कर सकते—'कहानी एक रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन का सम्पूर्ण तथा बृहत् रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता, न उसमें उपन्यास की भाँति सभी रसों का सम्मिश्रण होता है। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं, जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल, बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।'

कथानक की दृष्टि से, उपन्यास में कथानक का होना अनिवार्य समझा गया है, किन्तु कहानी में कथानक का होना आवश्यक तो है, लेकिन अनिवार्य नहीं। आजकल ऐसी बहुत-सी कहानियाँ लिखी जाने लगी हैं, जिनमें यद्यपि कथानक नगण्य होता है, फिर भी उनका हमारे ऊपर अद्भुत प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए भगवतीचरण वर्मा की 'मुग़लों ने सल्तनत बख्श दी' प्रेमचन्द की 'पूस की रात,' सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की 'रोज,' आदि कहानियों को लीजिए। उपन्यास में प्रायः एक मुख्य कथानक के साथ-साथ दो-तीन गौण कथाएं भी चलती रहती हैं, लेकिन कहानी में गौण कथाएं होती ही नहीं। आधुनिक कहानियों में कहीं तो कथानक होता है, कहीं नहीं भी होता है। पर जहाँ कथानक होता है, वहाँ केवल एक ही मुख्य कथा होती है, उपन्यास की भाँति दो अथवा तीन नहीं। अन्त में, कहानी का कथानक इस रूप में होना चाहिए कि अपनी निर्दिष्ट सीमा के भीतर वह स्पष्ट और पूर्ण रूप से व्यक्त हो सके, क्योंकि उपन्यास को इस विषय में जितनी स्वाधीनता है, उतनी कहानीकार को नहीं।

कथानक की तरह कहानी में चरित्र-चित्रण का होना भी अनिवार्य नहीं है। कारण स्पष्ट है—कहानी की लघु-भूमि पर चरित्र-चित्रण-जैसा विशाल दुर्ग खड़ा नहीं किया जा सकता। उपन्यास में तो पात्रों की दौड़-धूप के लिए विस्तृत क्षेत्र खुला हुआ रहता है। वहाँ की बात ही और है। कहानीकार चाहे कितने ही

व्यक्तित्व-सम्पन्न चरित्रों का निर्माण करे, पर उपन्यास की-सी बात उसमें आ ही नहीं सकती। प्रेमचन्द के 'सुजान भगत', 'रानी सारन्धा', 'बूढ़ी काकी', आदि क्या होरी, सूरदास, रमानाथ, सुमन आदि की समानता कर सकते हैं? कहानियों मे हमे पात्रों का उतना परिचय मिल ही नहीं सकता, जितना उपन्यास मे, और न हम यहाँ चरित्र-निर्माण के उपकरणों को ही देख सकते हैं। कहानियों में पात्र के चरित्र पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जो प्रभाव पड़ता है, वह बात अलग है, उसे हम चरित्र-चित्रण नहीं कह सकते। कहानी मे केवल विषय-वस्तु, रचना-कौशल और यथार्थ को प्रस्फुटित करने का चातुर्य प्रदर्शित किया जाता है। उपन्यास की तरह जटिल मानव-जीवन की मनोवृत्तियाँ और आंतरिक द्वन्द्वों के सर्वतोमुखी चित्र हमे कहानियों में देखने को नहीं मिल सकते। साथ ही किसी पात्र का क्रम-विकास, उसकी समस्याओं का विश्लेषण तथा उनका समाधान भी कहानियों में मिलना दुष्कर है। कारण यह है कि कहानियों में नायक-नायिका के साथ हमारा क्षण-भर का मेल-मिलाप होने से ही उनके चरित्र का कोई स्थायी या व्यापक प्रभाव हम पर उतना नहीं पड सकता, जितना उपन्यास का। चरित्र-चित्रण के बिना यूरोपीय लेखकों ने बहुत-सी सुन्दर कहानियों की सृष्टि की है। कहानी और उपन्यास के चरित्र-चित्रण-सम्बन्धी भेद पर विचार करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं—

'उपन्यासों की भाँति कहानियाँ भी कुछ घटना-प्रधान होती हैं, कुछ चरित्र-प्रधान। चरित्र-प्रधान कहानी का पद ऊँचा समझा जाता है। कहानी में बहुत विस्तृत विश्लेषण की गुञ्जाइश नहीं होती। यहाँ हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्यों को चित्रित करना नहीं, वरन् उनके चरित्र का एक अंग दिखाना है। यह परम आवश्यक है कि हमारी कहानी से जो परिणाम या तत्त्व निकले, वह सर्वमान्य हो, और उसमे कुछ बारीकी हो ... जब हमारे चरित्र इतने सजीव और आकर्षक होते हैं कि पाठक उनको अपने स्थान पर समझ लेता है, तभी उस कहानी में आनन्द प्राप्त होता है। अगर लेखक ने अपने पात्रों के प्रति पाठक में यह सहानुभूति नहीं उत्पन्न की, तो वह अपने उद्देश्य में असफल है।'

भाषा और शैली की दृष्टि से कहानी और उपन्यास में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। कहानीकार को स्थान के अभाव में उपन्यासकार की तरह प्रकृति-वर्णन, नगर-वर्णन अथवा अन्य स्वाभाविक वर्णनों का समावेश करने का अवसर हाथ नहीं लग सकता। कहानी की शैली बहुत ही गठी हुई और संक्षिप्त होती है। उसमें अनावश्यक शब्द बिलकुल नहीं होते। साथ ही वे मन को

मोहने, लुभाने और आकर्षित करने वाले होते हैं। कहानी की भाषा में एक प्रकार की रागिनी होती है, जो सहज ही मे हमे मन्त्र-मुग्ध कर डालती है। कहानी का नामकरण भी उसी रागिनी के ऊपर होता है और उसी के ऊपर कहानी की सारी सफलता निर्भर करती है।

कहानी और उपन्यास मे आदर्श अथवा उद्देश्य की दृष्टि से भिन्नता स्पष्ट है। उपन्यास मे विविध चरित्रों के द्वारा हमे किसी-न-किसी प्रकार की शिक्षा मिल ही जाती है। उपन्यास मे पात्र चाहे शिक्षाप्रद बनने से रोक दिए जायं, फिर भी शिक्षा का कुछ अंश तो उनमे अवश्य आ ही जाता है। कहानियों के विषय मे यह बात नहीं है। कहानी पढ़ लेने पर भी एक बारगी हम उसके आदर्श तक पहुँचने मे असमर्थ रहते है। उसमे आदर्श अथवा उद्देश्य बँधा हुआ रहता है, उपन्यास की तरह बिखरा हुआ नहीं। थोड़े में बहुत कहने की क्षमता रखने वाला ही कुशल कहानीकार हो सकता है। उपन्यास की अपेक्षा कहानी एक हल्की चीज है, जिसका उद्देश्य केवल उसके प्रभाव तक ही सीमित है। कहानी का प्रभाव ही हमारी समझ में उसका आदर्श अथवा उद्देश्य है।

उपन्यास और कहानी मे एक और भेद, प्रभाव की अन्विति, (Unity of Impression) जिसको एलेन पो ने पूर्णता का प्रभाव (Effect of Totality) कहा है, बतलाया गया है—'Brander Matthews, in his "Philosophy of the short-story," lays great stress on this Unity of Impression—what Poe calls the "effect of totality"—as the mark of distinction between the short story and the novel. And Canby, carrying the distinction still further, says that it is the deliberate and conscious use of impressionistic methods, together with the increasing emphasis on situation that distinguishes the short story of to-day from the tale or simple narrative and makes it seem a newwork of art, (From *The Short Story Its Principles and Structure* by Evelyn May Albright) अर्थात् 'ब्रेण्डर मैथ्यूज़' ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक कहानी का दर्शन' में प्रभाव की अन्विति को विशेष महत्त्व दिया है, जिसे 'पो' ने पूर्णता का प्रभाव माना है। आधुनिक कहानी और उपन्यास मे सबसे बड़ा अन्तर यही है। 'केनबाइ' इस अन्तर को और आगे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि या

प्रभावोत्पादक साधनो का एक स्वेच्छित और सतर्क प्रयोग है। साथ ही इसमे परिस्थिति पर भी अधिक जोर दिया जाता है। यही बात आधुनिक कहानी को गल्प या सामान्य आख्यायिका से पृथक् करती है और उसे ऐसा बना देती है कि जिससे हमें वह एक सुन्दर नवीन कला-कृति के रूप मे प्रतीत होने लगती है। कहानी का प्रधान भाग उसका कथानक है, जिसमे विभाग और उप-विभाग की गुञ्जाइश नहीं रहती। कहानी मे दूसरी बातो के अतिरिक्त कल्पना का सहारा बहुत लिया जाता है, लेकिन उपन्यास कल्पना का अपेक्षाकृत कम सहारा लेते हुए यथार्थ की ओर उन्मुख होता रहता है।

(४) *कहानी, नाटक और निबन्धः*—चरित्र और गठन की दृष्टि से कहानी और नाटक की तुलना की जा सकती है। कहानी को कहानी बनने के लिए एक घटना की आवश्यकता होती है। जब हम किसी मनुष्य के जीवन की किसी घटना को लिखना आरम्भ करते हैं, तब साहित्य के उस अंग की नींव पड़ती है, जिसे हम कहानी कहते हैं। इस घटना को लिखते समय हमे कुछ साहित्यिक नियमो में बँधा रहना पडता है। साथ ही इस 'किसी घटना' से यह अभिप्राय नहीं कि हम साधारण घटनाओं और जीवन की तुच्छ बातों का सन्निवेश अपनी कहानियों मे करें। ह्यू वाकर का यह कहना कि जो कुछ मनुष्य करे, वही कहानी है (Whatever men do is a short story) हमारी समझ मे सर्वथा अनुचित है। बिना प्रमुख घटना के कहानी शुष्क और नीरस हो जाती है, जैसे जल-स्रोत की धारा के बिना मदाकिनी। दिन-भर रेलवे-स्टेशन पर माल असबाब ढोने वाला मजदूर संध्या के समय घर लौटकर यदि अपनी स्त्री से दिन-भर की मजदूरी, बिस्तरे के बोझ, मुसाफिरों की भीड-भाड़, ताँगे वालों की बढ़ती हुई कमाई आदि का ही वृत्तान्त सुनाने बैठे तो उसकी स्त्री अपना काम-काज करती हुई उसकी हॉ-मे-हॉ मिलाती जायगी। उसके लिए ये सब चर्चाएं नवीन नहीं, दैनिक जीवन की साधारण बातें हैं। लेकिन वही मजदूर यदि किसी दूसरे दिन दौड़ता-हॉफता आकर रेलगाड़ी के उलट जाने, रेलवे-मैनेजर साहब की स्त्री के हाथ टूट जाने, उसके द्वारा उसे मौत के मुँह से बचा लेने की करुण गाथा सुनाने बैठे तो उसकी पत्नी थोडी देर के लिए घर का काम-काज भूलकर उसकी सब बातों को पास आकर बड़े ध्यान और तन्मयता से सुनेगी। मानव-मन ही ऐसा है कि वह किसी विशेप घटना से विह्वल हो जाता है। कहानी के लिए ठीक ऐसी ही किसी विशेप घटना का होना अनिवार्य है। जिस कहानी से हमारे मन मे एक अविच्छिन्न भाव-धारा

का उद्रेक नहीं होता, वह कहानी किस काम की ? इसीलिए एच० जी० वेल्स ने कहा है—'Short story aims at a single concentrated impression' अर्थात् 'एक अविच्छिन्न भाव-धारा का हृदय में उद्रेक करना ही कहानी का उद्देश्य है ।' जीवन की तुच्छ बातों और साधारण जीवन की घटनाओं को लेकर वेल्स साहब के इन शब्दों की रक्षा नहीं हो सकती और न हम एक सफल कहानीकार ही बन सकते हैं ।

कहानी में इसी घटना-वैचित्र्य की विशेषता होती है, मार्मिक दृश्यों का सरल तथा रोचक वर्णन देखने को मिलता है और कथोपकथन द्वारा पात्रों का चरित्र-चित्रण होता है । ये सारे गुण नाटक के हैं और इस दृष्टि से कहानी नाटक के बहुत समीप जा पड़ती है। ऊपर जिस प्रमुख घटना का उल्लेख किया गया है, उसकी नाटकीय अभिव्यंजना होना नितान्त आवश्यक है। नाटकीय अभिव्यंजना से तात्पर्य नाटकीय गुणों के समावेश और नाटकीय ढंग के अनुसरण करने से है, जिसके बिना न तो कहानी सफल ही हो सकती है और न उसके प्रभाव में प्रबलता, रोचकता तथा चमत्कार का ही आविर्भाव हो सकता है । यदि नाटकीय ढगों का अनुसरण नहीं किया गया तो कहानी मनोरंजन-शून्य तो होगी ही, साथ ही उसमे साहित्यिकता का भी अभाव होगा । कहानी में पात्रों का अकस्मात् प्रवेश कराना, आकस्मिक अंत आदि ऐसे ढंग हैं, जिनसे उसमें रोचकता आ जाती है। ऐसे प्रसंगों में हमें रस मिलता है, एक नाटकीय छटा देखने को मिलती है । चतुरसेन शास्त्री की 'पान वाली' कहानी का यह अंश देखिये, उसमे नाटकीय ढंग के अनुसरण से कितनी सजीवता और रोचकता आ गई है—

'इस उल्लसित आमोद के बीचों-बीच एक मुर्झाया हुआ पुष्प, कुचली हुई पान की गिलौरी—वही बालिका—बहुमूल्य हीरे--खचित वस्त्र पहने बादशाह के बिलकुल अंक मे लगभग मूर्छित और अस्त-व्यस्त पड़ी थी । रह-रहकर शराब की प्याली उसके मुँह से लग रही थी और वह खाली कर रही थी । एक निर्जीव दुशाले की तरह बादशाह उसे अपने बदन से सटाये मानो अपनी तमाम इन्द्रियों को एक ही रस मे सराबोर कर रहे थे । गम्भीर आधी रात बीत रही थी। सहसा इसी आनन्द-वर्षा मे बिजली गिरी । कक्ष के उसी गुप्त द्वार को विदीर्ण करके क्षण-भर में वही रूपा काले आभूषण से नख-शिख ढके निकल आई । दूसरे ही क्षण एक और मूर्ति वैसे ही आवेष्टन मे गुप्त द्वार से बाहर निकली। क्षण-भर के बाद दोनों ने अपने आवेष्टन उतार फेके । वही अग्नि-शिखा

ज्वलंत रूपा और उसके साथ गौरांग कनल।'

इस प्रकार नाटक की भाँति कहानी मे आकर्षण उत्पन्न करने वाली सामग्री की उचित मात्रा होती है और घटना-चक्र के अन्तर्गत पात्रों का चरित्र-चित्रण आप-ही-आप होता रहता है। अतएव कहानी और नाटक में समानता है। कहानी उसी को कहना चाहिए जिसमें पात्र के जीवन की किसी महत्त्वपूर्ण घटना को नाटकीय रूप दिया गया हो। यदि कहानी मे नाटकीय गुणों का समावेश न हो तो वह कदापि हृदय को स्पर्श नहीं कर सकती। कथा-साहित्य के विशेषज्ञ जेम्स डब्ल्यू० लीन (James W. Linn) ने भी कहा है—'Short story is a representation, in a brief, dramatic form, of a turning point in the life of a single character, अर्थात् 'संक्षेप में, आधुनिक कहानी नाटकीय रूप में एक पात्र के जीवन में संक्रमण-बिन्दु की अभिव्यक्ति है।'

जिस प्रकार केवल अल्प उपकरणों का आश्रय लेकर अपने सीमित क्षेत्र में से होकर कहानी को अपनी निर्दिष्ट दिशा की ओर उन्मुख होना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार नाटक में भी केवल थोड़े-से शब्दों के द्वारा स्थिति में यथेष्ट प्रभाव लाना पड़ता है। विषय की दृष्टि से नाटक और कहानी मे भले ही सम्बन्ध न दिखाई दे, पर शैली और प्रभाव-क्षेत्र की दृष्टि से दोनों एक दूसरे के बहुत समीप पहुँच जाते हैं। In scope and style, if not in subject matter, the short story of to-day is as nearly akin to the drama as to the novel. अर्थात् 'विषय सामग्री की दृष्टि से भले ही न हो, किन्तु प्रभाव-क्षेत्र और शैली की दृष्टि से आधुनिक कहानी उपन्यास की भाँति नाटक से अधिक सम्बन्धित है।'

जैसा कि कहा जा चुका है कहानियों में चरित्र-चित्रण गौण होता है, लेकिन नाटक में चरित्र-चित्रण पर उपन्यास की भाँति विशेष जोर दिया जाता है। यह सच है कि कहानियों में चरित्र-चित्रण होना चाहिए, लेकिन इसकी उतनी प्रधानता नहीं जितनी कि उपन्यास और नाटक में होती है। कहानी का प्रधान कार्य पाठकों का मनोरंजन करना है। यदि कहानी में चरित्र-चित्रण हो गया है तो ठीक, और यदि नहीं भी हुआ है तो उसके लिए लेखक को अपनी ओर से प्रयास करने की आवश्यकता नहीं। कहानी हृदय से जिस रूप में वह निकली है, उसे उसी शुद्ध स्वरूप मे बहने देने में ही भला है। नाटक और उपन्यास की तरह इसमें विभिन्न उपकरणों को चीर-फाड़ कर देखना ठीक नहीं। इस

दृष्टि से कहानी एकांकी नाटक से अधिक मेल खाती है। नाट्य-साहित्य में जो स्थान एकांकी नाटक का है, कथा-साहित्य में वही स्थान कहानी का है। जिस प्रकार एकांकी नाटक में जीवन का एक अंश, परिवर्तन का एक क्षण, मेघ-माला मे दामिनी की चमक की तरह विद्यमान रहता है, उसी प्रकार कहानी में भी जीवन के किसी अंग विशेष की व्यंजना होती है। ध्यान पूर्वक देखने से विदित होगा कि प्रभाव-क्षेत्र और विस्तार की दृष्टि से आधुनिक कहानी एकांकी नाटक और साथ ही निबन्ध के बहुत निकट पहुँच जाती है। जिस प्रकार एकांकी नाटक और निबन्ध दोनों मे जीवन अपनी पूर्णता को लेकर नहीं उतरता, किसी विशेष मनोरंजक, चित्ताकर्षक एवं प्रभावशाली दृश्य अथवा पक्ष का ही चित्र उसमें देखने को मिलता है, उसी प्रकार कहानी मे जीवन का कोई विशेष पहलू ही चित्रित किया जाता है। कहानी का विस्तार भी एकांकी नाटक और साहित्यिक निबंध की ही तरह संक्षिप्त है। कहानी को एकांकी नाटक और निबन्ध की तरह हम डेढ़-दो घंटे मे आराम से पढ़कर समाप्त कर सकते हैं। लेकिन एकांकी नाटक एक अभिनय की वस्तु है। मेरियन क्रॉफोर्ड के शब्दों मे 'उसकी रंग-शाला उसी में निहित है।' यही कारण है कि उसमे बाह्य एवं आंतरिक प्रकृति-वर्णनों का सदैव अभाव रहता है। साथ ही उनकी शैली और कहानी की शैली मे भेद पाया जाता है। निबन्ध मे स्वाभाविक वर्णन होता है, उसकी शैली गठी हुई और संक्षिप्त होती है, परन्तु कहानी की भाँति कल्पना-शक्ति का उसमे सर्वथा अभाव होता है। इतना होने पर भी हमे यह निःसंकोच रूप से स्वीकार करना पड़ेगा कि आधुनिक कहानी में कला के रूप का जो इतना विकास हुआ है, उसका श्रेय नाटक को ही है, साहित्य के किसी और अंग को नहीं। Evelyn may Albright ने एक स्थान पर नाटक और कहानी के विषय मे इस प्रकार कहा है :—

'The story writer, like the dramatist, is compelled by lack of space to present his situation effectively in a few strong strokes, and to render his main characters prominent in their true relations to each other and to their whole environment without the aid of many groups of lesser characters and without the background of a long series of minor events which prepare for and emphasize the climax. The artificial isolation of a limited number

of people and events, the artistic heightening of dialogue, the concentration on a single issue, the vivid picturing of a scene that is significant, are essentially dramatic In a word, the drama is largely responsible for the brilliant technique which is one of the distinguishing features of modern story-writing.' अर्थात् उपन्यासकार की भाँति कहानीकार को स्थानाभाव के कारण वाध्य होकर केवल थोडे-से जोरदार शब्दों में परि-स्थिति की तीव्रता प्रकट करनी पडती है और अपने प्रमुख पात्रों को परस्पर सच्चे अर्थ मे खूबी के साथ चित्रित करना पड़ता है तथा छोटे-छोटे पात्रों में अनेक वर्गों और अवान्तर घटनाओं की पृष्ठभूमि के विना ही उसे सम्पूर्ण वातावरण उपस्थित करना पड़ता है, जिनके द्वारा कि चरम सीमा की तैयारी और पुष्टि होती है। नियत पात्रों तथा घटनाओं का कृत्रिमतापूर्ण पार्थक्य, सलाप का कलापूर्ण सवेग, एक संघर्ष की ओर एकाग्रता तथा किसी अर्थत्व दृश्य का विस्तृत चित्रण आवश्यक रूप मे नाटकीय है। एक शब्द में, सफल कला-पूर्ण चित्रण का उत्तरदायित्व अधिकांश में नाटक पर है, जो कि आधुनिक कहानी-लेखन-कला की प्रमुख विशेषताओं में से एक है।

प्रेमचन्द ने भी कहानी और नाटक की एकता वतलाते-हुए लिखा है कि कहानी एक घटना है। अन्य वाते सव उसकी घटना के अन्तर्गत होती हैं। इस विचार से उसकी तुलना नाटक से की जा सकती है। कहानी की ही तरह नाटक का क्षेत्र भी संकुचित होता है। वह नियमों से जकड़ा रहता है। एक निर्धारित सीमा के अन्दर-अन्दर ही अपनी कला के द्वारा उसे अपनी स्थिति में प्रभावोत्पादकता लानी पडती है। जहाँ उपन्यासकार को अपने प्रधान पात्रों मे प्रभावोत्पादकता लाने के लिए अन्य छोटे-मोटे पात्रों की अवतारणा करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है, वहाँ कहानीकार और नाटककार पर इस वात का प्रतिवन्ध लगा हुआ है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कहानी की स्थिति ठीक नाटक और उपन्यास के वीचों-वीच है।

(५) *कहानी, कविता और गीत*:—कविता और कहानी दोनों ही चिर-काल से मानव-जीवन के साथी वनकर चले आ रहे हैं। दोनो ही कल्पना की स्वतन्त्र उड़ान में उड़कर नित नये संसार और नये जीवन की खोज करने में व्यस्त हैं। साहित्य में जव कला का जन्म नहीं हुआ था, तव से मनुष्य अपनी स्वच्छन्द कल्पना और अनुभूति के द्वारा ही अपने मन के साहित्य का सृजन

करता चला आ रहा है और इस मन के साहित्य में कहानी और कविता दोनों का स्थान बहुत ऊँचा है। अतः कवि और कहानी-लेखक दोनों ही एक-प्रान्त के निवासी हैं। दोनों का जन्म मानव-जीवन और मानव-हृदय से हुआ है। एक यदि भावनाओं का गायक है, तो दूसरा मनोवृत्तियों का निदर्शक। कविता और कहानी दोनों ही देश-काल की प्रवृत्तियों के विकास के अनुरूप भिन्न-भिन्न प्रकार की होती चली आ रही हैं।

कहानी मे जैसा कि कहा जा चुका है, हमारा मन घटना-चमत्कार में ही लगा रहता है, परन्तु कविता मे वह भावों मे पूर्ण रूप से रमने लगता है। कहानी प्रायः हमारी उत्सुकता को जागृत करके आगे की घटना से जानकारी प्राप्त करने के लिए बाध्य करती है। हम पल-भर भी रुकते नहीं, आगे-से-आगे क्रमशः बढ़ते रहते हैं। परन्तु कविता को बारम्बार पढ़ लेने के उपरान्त भी हमारी तृप्ति नहीं हो सकती। 'चिन्तामणि' मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही कहा है :—'कविता और कहानी का अन्तर स्पष्ट है। कविता सुनने वाला किसी भाव मे मग्न रहता है और कभी-कभी बार-बार एक ही पद्य सुनना चाहता है। पर कहानी सुनने वाला आगे की घटना जानने के लिए आकुल रहता है। कविता सुनने वाला कहता है "जरा फिर तो कहिये।" कहानी सुनने वाला कहता है "हॉ, तब क्या हुआ ?" इस "जरा फिर तो कहिये" और "हॉ, तब क्या हुआ" से ही कविता और कहानी का सारा अन्तर स्पष्ट हो जाता है। साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कहानी मे घटना की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है, रमणीयता की ओर अपेक्षाकृत कम। बहुत-सी कहानियाँ ऐसी देखने में आई हैं, जिनके विशेष स्थलों को हम पढ़ तो जाते हैं, लेकिन उनसे मन को तृप्ति नहीं मिलती। अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ कहानी में कौतूहल-वृत्ति की प्रधानता रहती है, वहाँ कविता मे रमण-वृत्ति का ध्यान रखा जाता है। कहानी में रमण-वृत्ति गौण रहती है।

पुनः कविता और कहानी की भावग्राहिका शक्ति से भी बड़ा भेद पाया जाता है। कविता के प्रेमी थोड़े हैं, कहानी के असंख्य। कविता का आनन्द बहुत थोड़े व्यक्ति ही ले पाते हैं, क्योंकि उसका अर्थ सदैव अप्राकृत रूप में रहता है। कविता मे हम अपनी हृदयगत भावनाओं की अभिव्यक्ति चोरी से करते है, उसे अनुभूति, कल्पना और चिन्तन के विविध आवरणों से इतना ढक देते हैं कि उसका शुद्ध स्वरूप विकृत हो जाता है और वह स्पष्ट रूप से हमारे सम्मुख नहीं आ पाता। इसीलिए कविता कभी-कभी हमें दुरूह

मालूम होती है। रहस्यवादी और छायावादी कविताओं मे तो यह बात हमे अधिकांश रूप मे देखने को मिलेगी। आशय यह है कि कविता का प्रकृत रूप भाव-विधान और उक्ति-वैचित्र्य के भार से दबा रहता है, लेकिन कहानी में यह बात नहीं। कहानी अपना काम खुलकर करती है। कहानी की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सरलता है। आज साहित्यिक दुनिया में कहानी ने जो अपना स्थान सर्व प्रथम और सर्व प्रिय बना लिया है, उसका प्रमुख कारण उसकी सरलता, मनोरंजकता और हृदयस्पर्शिता है। आर० के० लागू० M A. अपनी पुस्तक 'Introduction to Modern stories from East & West' में लिखते हैं—

'The story-teller has found a warm welcome and an eager audience in all ages and all countries. Young and old, the cultured and the illiterate—every one succumbs to the spell which the story-teller casts upon us. The craving for a story is ingrained in us. It is in consequence of this that the story-telling tradition has suffered no break at any time and flourishes alike in the East and West ?' अर्थात् 'सब कालों में और सब देशों मे कहानीकार का शानदार स्वागत हुआ है और उसे उत्सुक जनता खड़ी मिली है। तरुण और वृद्ध, संस्कृत और असंस्कृत प्रायः सभी लोग कहानीकार के मंत्र से मुग्ध होने के लिए लालायित हैं, जिसे कि वह हम पर डालता है। कहानी के बीज हम सबमें विद्यमान हैं। इसी का परिणाम है कि कहानी की परम्परा कभी भी नष्ट नहीं हुई और इसीलिए पूर्व और पश्चिम में इसकी धारा समान रूप से विकसित हो रही है।

वर्तमान कविता दिन-दिन क्लिष्ट और अस्पष्ट बनती चली जा रही है. इससे उसकी लोकप्रियता पर बट्टा लग रहा है। कहानी इसीलिए कविता से अधिक लोकप्रिय बन रही है। चाहे विषय-वस्तु की दृष्टि से देखिये, चाहे भाषा की दृष्टि से—कहानी सब बातों में आकर्षक, मोहक और हृदय पर स्थायी प्रभाव डालने वाली वस्तु बन गई है। आज काव्य मे जो स्थान गीत का है, वस्तुत. वही स्थान कथा-साहित्य मे कहानी का समझना चाहिए। गीत और कहानी में केवल इतना ही अन्तर है कि जहाँ गीत में व्यक्तित्व की भावना का अनुरंजन अधिक रहता है, वहाँ कहानी में जीवन और जगत्-व्यापी सामूहिक चेतना का।

(६) प्राचीन और आधुनिक कहानी (Short-Story).–कहानी और उपाख्यान अथवा आख्यायिका, रेखाचित्र, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, कविता, गीत आदि की तुलना से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आधुनिक कहानी (Short-story) की अनेक विशेषताएं हैं। इस सम्बन्ध में हमें निम्न लिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए:—

१—आधुनिक कहानी उन्नीसवीं शताब्दी की देन है। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के संस्पर्श से हमारी विचार-धारा मे जो परिवर्तन उपस्थित हुआ, उसी के कारण कला की गोद मे कहानी रूपी बालक खेलने लगा। इस दृष्टि से हिन्दी मे कलापूर्ण कहानियों का इतिहास केवल तीस-पैंतीस वर्ष पुराना है।

२—आधुनिक कहानियाँ प्राचीन कहानियों की तरह उपदेश न देकर मनुष्य को मनोरंजन और उसके साथ-ही-साथ साहित्यिकता प्रदान करती हैं।

३—आज का युग बुद्धिवादी होने के कारण प्राचीन कहानियों की तरह अति-प्राकृत प्रसंगों (Supernatural) की अवतारणा न करके केवल आकस्मिक घटनाओं और संयोगों से ही काम लिया करती है, जिससे पाठक की उत्सुकता ज्यों-की-त्यों बनी रहती है।

४—प्राचीन कहानियों मे बाह्य वर्णन ही अधिक होता था, किन्तु आधुनिक युग में मनोविज्ञान की बाढ़ आने के कारण कहानियों मे मनुष्य की हृदय-गत सूक्ष्म भावनाओं का भी चित्रण होने लगा।

५—प्राचीन कहानियों के विषय और उपादान अत्यन्त सीमित होते थे, किन्तु कालान्तर में सार्वजनिक समानाधिकार की भावना के जोर पकड़ने के कारण आधुनिक कहानियों के विषय और उत्पादन अधिकाधिक विस्तृत होते गए।

६—आधुनिक पुरुषों के पहले से अधिक चतुर और मिश्र होने के कारण आज के कहानीकार को अपनी कहानियों का आरम्भ एक स्पष्ट भूमिका के साथ करना पड़ता है ताकि पढ़ने अथवा सुनने वाले के मन में किसी प्रकार की कोई शंका न हो।

७—आधुनिक कहानीकार का ध्यान स्वाभाविकता की ओर अधिक है, इसलिए वह सदैव जीवन और जगत् की किसी भी घटना का इस रूप मे चित्र उप-स्थित करता है, जिसे पाठक सत्य और यथार्थ मानने लग जाता है।

८—प्राचीन कहानियों का रूप मौखिक हुआ करता था, किन्तु आज मुद्रण-यंत्रों के प्रचार से लिखित रूप ही अधिक पाया जाता है।

यथार्थवाद से अधिक प्रभावित है।

९—प्राचीन कहानियों मे केवल एक वर्णनात्मक शैली ही हुआ करती थी, लेकिन आधुनिक कहानियों में अनेक शैलियाँ हैं।

१०—देश-देशान्तरों से सम्पर्क बढ़ जाने के कारण आधुनिक कहानियों पर पाश्चात्य देशों का प्रभाव पडा और पडता जा रहा है।

११—आधुनिक कहानी में कल्पना-शक्ति का आरोप साहित्य के अन्य अगों की अपेक्षा अधिक, अत्यावश्यक और अनिवार्य रूप में हुआ करता है। यह प्राचीन काल की अद्भुत कल्पना से भिन्न है।

१२—आधुनिक कहानीकार बहुत ही कम पात्रों और चरित्रों के द्वारा, बहुत ही कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से कथानक, चरित्र, वातावरण, प्रभाव आदि की सृष्टि कर लेता है।

आधुनिक कहानी की इन समस्त विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही हमारे हिन्दी के विद्वानों ने इसकी परिभाषा की है। अनेक परिभाषाओं को न देकर यहाँ हम सबसे सरल एव पूर्ण परिभाषा का ही उल्लेख करेंगे। 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' में डा० श्रीकृष्णलाल ने आधुनिक कहानी की परिभाषा देते हुए लिखा है—"आधुनिक कहानी साहित्य का एक विकसित कलात्मक रूप है, जिसमें लेखक अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे, कम-से-कम पात्रों अथवा चरित्रों के द्वारा, कम-से-कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से मनोवाछित कथानक, चरित्र, वातावरण, दृश्य अथवा प्रभाव की सृष्टि करता है।" अंग्रेजी आलोचक आर० के० लागू (R K Lagu) का भी यही मत है—'The modern short story is a conscious literary effort. It is a cleverly-planned artistic achievement अर्थात् 'आधुनिक कहानी एक स्वेच्छित साहित्यिक प्रयास है। यह होशियारी से तैयार की गई एक कलात्मक पूर्णता है।'

प्राचीन और नवीन कहानियों की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है—'In a word, the old writer was entirely unconscious of the principles which control the short story form He might have accomplished his work with superb success, but he did it without worrying about the formal, technical side of his art We enjoy these old stories for their delightful subject-matter, the quips and quirles, which flash through them and best of all, for the teaching of knowledge and experience which is enshrined in them. The modern

story-teller is conscious of his art to his finger-tips He deliberately plans certain emotional, intellectual and humorous effects and strains every nerve to attain them.

—*Introduction to Modern Stories from E. & West.*

अर्थात् 'एक शब्द मे प्राचीन लेखक उन सिद्धान्तों से सर्वथा अनभिज्ञ था, जो आधुनिक कहानी के रूप को अपने अधीन रखते हैं। उसने अपना कार्य अपूर्व सफलता से सम्पन्न कर दिया होता, किन्तु उसे सफलता इसलिए नहीं मिली कि उसने उसके कला-रूप की अवहेलना करके विना किसी दायित्व के अपना कार्य आरम्भ किया था। हम कहानियों में वर्णित उनकी मनोरंजक विषय-सामग्री तथा दैनिक जीवन-विषयक साधारण वार्तों को पढ़कर आनन्द उठाते हैं, जो कि उनमें चलती रहती हैं और इन सबसे अधिक हम उनको ज्ञान तथा अनुभव की प्राप्ति के लिए पढ़ते हैं, जो कि उनमें विद्यमान रहता है। आधुनिक कहानीकार अँगुलियों की नोक पर अपनी कला के लिए सतर्क है। वह जान-बूझकर कुछ भावात्मक, मानसिक तथा हास्यप्रद प्रसंगों की अवतारणा करता है और उनके निर्वाह में अपना समस्त वल लगा देता है।'

: २ :

कहानी के उपकरण

कहानी के उपकरण जीवन और जगत् के प्रत्येक क्षेत्र में विद्यमान हैं। उन्हें संग्रह करने के लिए जिस लेखक की बुद्धि जितनी ही सतर्क, तत्पर और आलोचनात्मक होगी, वह उतनी ही सुन्दर कहानी लिखने मे समर्थ हो सकेगा। अतएव कहानीकार को अपनी दृष्टि केवल इन गिने-गिनाये उपादानों की ओर न ले जाकर जीवन और जगत् के उन विभिन्न अंगों की ओर ले जाना आवश्यक है, जहाँ पहुँचकर नवीन उपकरणों से सहज ही मे परिचय हो सकता है।

(१) *कल्पना और भाव :*—कहानी के स्वतन्त्र अस्तित्व का एक मनोवैज्ञानिक कारण है। कल्पना और भाव का चोली-दामन का सम्बन्ध है और यही कारण है कि मनुष्य का मन सदैव कुछ-न-कुछ जानने के लिए आतुर रहता है। संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं दिखाई देता, जिसने वह सब-कुछ जान लिया हो, जो उसे जानना चाहिए था। सब-कुछ जान लेने पर भी मनुष्य कुछ और जानने के लिए सदैव लालायित रहता है। कहानी की रचना भाव के द्वारा ही होती है ज्ञान के द्वारा नहीं, यद्यपि ज्ञान की सर्वथा अवहेलना नहीं की जा सकती। मनुष्य ज्ञान से भले ही पराजित हो जाय लेकिन वह भावों से, जो उसके हृदय की वृत्तियाँ हैं, सदैव सतत संघर्ष करता ही रहेगा। साहित्य में वस्तुत: जीवन भावों का ही संघर्ष है। ज्ञान की पिपासा 'वादों' के दो-चार प्याले पीकर शान्त की जा सकती है, लेकिन भावों की मस्त मदिरा पी पीकर भी हम वह तृप्ति नहीं पा सकते। सच बात तो यह है कि जिस वस्तु को हम विशुद्ध ज्ञान के द्वारा एक बार समझ लेते हैं, पुन: उस वस्तु की जानकारी हमारे मन को नहीं मोहती। मानव-स्वभाव की यह विशेषता है कि पुनः वही वस्तु उसी रूप में, जिसे वह देख चुका है, उसके चित्त को शांति और तृप्ति नहीं दे सकती। वह तो नवीन वस्तु के लिए लालायित रहता है, जो उसके दिल-दिमाग को ताजा करती रहे। इस अभाव की पूर्ति भावों के ही द्वारा हो सकती है। ज्ञान एक बार हमें समझा-बुझाकर चुप कर देता है, भाव इसके विपरीत हमें आगे जानने के लिए उत्सुक करता है। इसीलिए एक का क्षेत्र परिमित और दूसरे का

अपरिमित समझा गया है। सूर्य, शुष्क ज्ञानवादियों तथा वैज्ञानिकों के लिए आज दिन तक आग का एक बृहत् गोला बना रहा, लेकिन हमारे साहित्यकारों के हाथ मे पड़कर वह न मालूम क्या-से-क्या बन गया है। कहानी मे इन्हीं भावों की भरमार होती है और इसके लिए कल्पना-शक्ति का होना अनिवार्य है। बिना कल्पना के भावों की सृष्टि नहीं हो सकती। कहानी के भाव में कल्पना के सामञ्जस्य से जो सूक्ष्म आनन्द प्राप्त होता है, वह आनन्द अनिर्वचनीय है। इस आनन्द का प्रस्रवण रस मे है और ये दोनों ही काम भाव और कल्पना के द्वारा पूर्ण होते है। यही कारण है कि संसार मे सात-आठ मौलिक कहानियाँ होते हुए भी हमे अन्य कहानियों मे भी बराबर आनन्द और रस प्राप्त होता रहता है। अतएव भाव और कल्पना कहानी का आवश्यक उपकरण है।

(२) *प्रेम*:—प्रेम कहानियों मे सौंदर्य और आकर्पण-वृद्धि का प्रधान उपकरण है। कहानी-साहित्य का आधार प्रेम है, लेकिन इसका यह अर्थ करना भूल होगी कि बिना प्रेम के कहानियों की सृष्टि ही नहीं हो सकती। ऐसी बहुत-सी कहानियाँ लिखी गई है, जिनमे प्रेम का नाम तक नहीं, फिर भी वे हमें अच्छी लगती हैं। प्रेमचन्द की 'बूढ़ी काकी', कौशिक की 'ताई', अज्ञेय की 'रोज', तुर्गनेव की 'मूमू', मोपाँसा की 'चाँदनी रात का पादरी' आदि कहानियाँ क्या प्रेम-प्रसंग को लेकर लिखी गई है? फिर भी वे हमे इतनी अभिभूत कर देती है कि उनके सामने प्रेम-सम्बन्धी कहानियाँ फीकी जान पड़ती हैं। सच बात तो यह है कि कहानी के लिए किसी भाव विशेष की आवश्यकता होती है। जो मोहक भाव हमारे मन को मुग्ध और चित्त को प्रसन्न कर देता है, वही भाव कहानियों के लिए श्रेयष्कर है, चाहे वह प्रेम-भाव हो, चाहे और कोई। प्रेम-भाव कहानी मे अवश्य हो और उसी से कहानी का सौंदर्य बढ़ता है, यह धारणा सर्वथा निर्मूल और निराधार है। इतना होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि संसार की प्रायः सभी कहानियों मे प्रेम-भावना की प्रधानता है। यह बात हमे माननी पड़ेगी कि यदि कहानियो मे प्रेम के व्यापक स्वरूप को ध्यान में रखकर शुद्ध और सात्त्विक प्रेम की ज्योति जलाई जाय तो उससे हमारा पथ प्रशस्त हो सकता है। पुरुष और स्त्री का सम्बन्ध ही कुछ ऐसा है कि उसके विषय मे जितना लिखा जाय, थोड़ा है। प्रेम जीवन है, जीवन ही क्यों, वह ईश्वर है—(Love is God), लेकिन प्रेम सम्बन्धी कहानियों को लिखते समय लेखक को सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रेम प्रेम ही

रहे, वह वासना में परिणत न हो जाय। दिव्य भावनाओं के लिए प्रेम में अशान्ति और असंयम की आवश्यकता नहीं वरन् आशा, अनूठी प्रतीक्षा, पवित्रता, व्यापकता और निर्मलता की आवश्यकता होती है। प्रेम को सदैव वाह्य सौंदर्य पर निर्भर न रहकर आंतरिक सौंदर्य को अपना केन्द्र-विन्दु बनाना चाहिए। शारीरिक चेष्टाओं मे वह पवित्रता कहाँ जो किसी की श्रद्धा, भक्ति, दया आदि गुणों में देखने को मिलती है। अन्त में, यदि प्रेम के लिए प्रेम वाले कथन की रक्षा के लिए लेखकों ने इस उपकरण को अपनाया तो उससे सौंदर्य की उत्पत्ति और आनन्द की प्राप्ति होती तो दूर रही, हम कहानी को ही बिलकुल बिगाड़कर रख देंगे।

(३) *सौन्दर्य*.—संसार की प्रायः सभी वस्तुएं हमें दो प्रकार से आकर्षित करती हैं। प्रथम, जब हम किसी वस्तु की ओर उपयोगितावाद का सिद्धान्त लेकर चलते हैं। द्वितीय, जब हम उसकी सुन्दरता से प्रभावित होकर उस पर मुग्ध होते हैं। उपयोगी वस्तुओं से हमे लाभ होता है और सुन्दर वस्तुओं से हमारा जीवन कल्याणकारी होता है। जो सुन्दर है, वही सत्य है और वही हमारे लिए कल्याणकारी है। अतः जब हम कहानियों में किसी पात्र के असाधारण त्याग अथवा बलिदान की झाँकी देखते हैं, तो जीवन के निम्न स्तर से ऊपर उठकर हम उसकी महत्ता का अनुभव करते हुए उसे एक ईश्वरीय रूप मे देखने लग जाते हैं। सौंदर्य की महत्ता स्पष्ट करते हुए रवीन्द्र ने लिखा है—'सौन्दर्य जगत् की नाना घटनाओं में ईश्वर के ऐश्वर्य को दिखाता है। मंगल भी मनुष्य के जीवन के अन्दर वही कार्य करता रहता है। मंगल सौन्दर्य को एक-मात्र आँखों से नहीं दिखाता, एक-मात्र बुद्धि द्वारा नहीं समझाता, उसको वह अनन्त व्यापक और गंभीर बनाकर मनुष्य के निकट ले आता है। वास्तव में मंगल मनुष्य के पास रहने वाला आंतरिक सौन्दर्य है। इसी कारण हम उसे बहुधा सुगमता से सुन्दर रूप मे नहीं समझ सकते। किन्तु, जब समझते हैं, तो हमारे प्राण एक वर्षा की नदी के समान भर उठते हैं। उस समय हमें उसकी अपेक्षा कोई भी वस्तु अधिक सुन्दर नहीं प्रतीत होती।' प्रेमचन्द ने कहानियों मे सौन्दर्य के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है—'कहानी का उद्देश्य स्थूल सौन्दर्य नहीं है, वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहती है कि जिसमें सौन्दर्य की झलक हो और जिसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओं को स्पर्श कर सके।' कहानियों मे ऐसे सौन्दर्य से ही सत्य, सत्य से प्रेम और प्रेम से वास्तविक आनन्द की प्राप्ति हो सकती है।

(४) *कथानक का आधार*:—कहानी मे कथानक का आधार क्या हो, इसके लिए कोइ विशेष नियम नहीं है। यह तो लेखक के निजी अनुभव पर निर्भर है; वह चाहे जिस वस्तु को आधार मानकर कहानी की अवतारणा कर सकता है। वैसे उसे कल्पना और भाव का आश्रय लेना पड़ता है और प्रायः कल्पना और भाव पर टिके हुए कथानक ही विशेष रोचक माने जाते हैं। लेकिन कहानी मे किसी-न-किसी प्रकार का रहस्योद्‌घाटन अवश्य रहता है। सामाजिक, धार्मिक राजनीतिक और विभिन्न क्षेत्रा का आधार मानकर सुन्दरतम कहानियों की सृष्टि हो सकती है। जीवन मे इतने रस हैं, जीवन मे इतने भाव हैं और जीवन में इतनी परिवर्तित अवस्थाएं हैं कि उनमे से किसी एक को आधार मानकर कुशल लेखक बाजी मार सकता है, लेकिन ऐसा करते समय वह जीवन के तत्त्वों की अवहेलना कदापि न करे। साहित्य का आधार जीवन है और कहानी भी साहित्य का एक प्रमुख अंग होने के नाते इसी जीवन पर स्थिर है। जीवन की नींव हिलने पर कहानी की कुतुवमीनार ढह जाती है। जीवन मे सुख दुःख, हर्ष-विषाद, विरह-मिलन आदि भावों को व्यंजना होना नितान्त आवश्यक है। वेदना को आधार मानकर लिखी गई मनोवैज्ञानिक कहानियाँ हृदय को स्पश करने वाली और उच्चकोटि की होती हैं। उसका आधार कोइ घटना नहीं वल्कि अनुभूति है। मानव-जीवन-सम्बन्धी गहरे अनुभवों की चमत्कार पूर्ण अभिव्यक्ति ही कहानी का श्रेष्ठ आधार है।

(५) *करुणा*:—कारुणिक और दुःखान्त कहानियों को पढ़ने से हमारे हृदय मे सहानुभूति और आनन्द का संचार होता है—मानवता का द्वार खुल जाता है। ऐसी कहानियाँ ही विशेष प्रिय होती हैं और उनका प्रभाव भी चिर-स्थायी होता है— 'Our sweetest songs are those, that tell of the saddest thoughts.' अर्थात् 'वे गीत सबसे अधिक प्रिय और मीठे होते हैं जो वेदनामय भावों से ओत-प्रोत है।' करुणा से जीवन मे जागृति और प्रगतिशीलता आती है। यदि करुणा न हो तो जीवन की फुलवारी सूख जायगी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'करुणा' नामक निबंध मे इसे जीवन का आवश्यक अंग माना है। करुणा सरल मोहक और सुन्दर छवि लिये हमारी आत्मा को दुःख से विभोर कर देती है और हम दुःख को दूर करने की चेष्टा लिये हुए सुख की आशा की ओर लपकते है। संसार मे वेदना की मात्रा इतनी घनीभूत है कि करुणा के भावों को सहज ही में पाठकों से एक प्रकार का सन्तोष प्राप्त होता है। यथार्थ मे कहानी सहानुभूति पाने की इच्छा का परिणाम है। गीति-काव्य

मे भी इस प्रकार के वेदनामय गान हमारे हृदय को झकझोर देते हैं। महादेवी वर्मा के नाम से सभी परिचित हैं। करुणा उनके जीवन का सर्वस्व है। हिन्दी काव्य-संसार मे महादेवी का नाम करुणा के कारण ही इतना प्रसिद्ध है, अन्यथा वहाँ और है ही क्या ? करुणा से जो एक प्रकार का अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है, कहानियों के लिए उसकी प्रमुख आवश्यकता है। इसके लिए कहानीकार को कुछ ऐसी घटनाओं और कुछ ऐसे पात्रों की अवतारणा करनी चाहिए जो हमारी मन-वीणा के तारों को अपने क्रन्दन से झकृत कर दे, तभी कहानी की मर्म-स्पर्शिता मे वृद्धि हो सकेगी। प्रेमचन्द की 'कामना-तरु', 'प्रेम-तीर्थ', 'सुहाग का शव', 'रानी सारधा' और जैनेन्द्रकुमार की 'फोटोग्राफी', 'दिल्ली मे', 'अपना-अपना भाग्य' आदि कहानियों ने इसीलिए इतनी ख्याति प्राप्त की है।

(६) *हास्यः*— करुणा की भावना के साथ कहानियो मे हास्य का पुट होना भी आवश्यक है। कहानी एक हलकी चीज़ है और इसका प्रधान कार्य मनोरंजन करना है। पाठक केवल करुणा से ही तृप्त नहीं हो सकते। यदि सारा समय कहानीकार अपने रोने-पीटने में ही व्यतीत कर देगा तो उससे हमें उस आनंद का स्वाद नहीं मिल पायगा जो इसकी आवश्यक मात्रा के सन्निवेश से प्राप्त होता है। हास्य (हँसी) अवश्य हो, लेकिन उसमे गाभीर्य का होना आवश्यक है। हँसते-हँसाते मार्मिक तथ्यों का उद्घाटन करना ही कहानी का लक्ष्य होना चाहिए। हास्य हमारे जीवन के लिए बहुत ही उपयोगी उपकरण है, इसीलिए कहानियों में इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है। हास्य वही है जो सरस है, मधुर है, गम्भीर है और हँसाते-हँसाते मार्मिक तथ्यों की ओर संकेत करता है। हास्य के अंतर्गत ही हम व्यग्य और विनोद को भी लेते है। व्यग्य को लेकर प्रेमचन्द, भगवतीचरण वर्मा आदि लेखकों ने सामाजिक और धार्मिक बुराइयों का अच्छा मजाक उडाया है। विनोद में व्यंग्य की कटुता लक्षित नहीं होती, इसका प्रधान कार्य पाठकों का मनोरंजन करना ही है। विनोद के लिए लेखक के मँजे हुए 'शुद्ध' परिष्कृत विचारों की आवश्यकता होती है, जो विनोद की ओट में विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण करते हैं।

३

कहानी के प्रमुख अंग

मनुष्य का शरीर पाँच तत्त्वों से बना हुआ है, जिनमे से यदि एक तत्त्व की भी कमी हो जाय तो सारा शरीर ही मिट्टी मे मिल सकता है। इसी प्रकार कहानी के भी पाँच अंग होते हैं, जिनमें से एक भी उपेक्षणीय नहीं। इनका महत्त्व उतना ही अधिक है, जितना मानव-जीवन में उन पाँचों तत्त्वों का। कहानी के प्रमुख अंगों का विवेचन इस प्रकार है:—

(१) *कथानकः*—कहानी उन घटनाओं और कार्यो से सम्बन्ध रखती है, जो पात्रों के द्वारा किये जाते है और जिनका प्रधान उद्देश्य उसके विकास मे योग देना होता है। ऐसी घटनाओं और ऐसे कार्यो को कहानी का कथानक कहते हैं।

कथानक कैसा हो?—मानव-जीवन ही कथानक का आधार है, जीवन की विविध समस्याएं ही उसकी रचना की प्रधान सहायिका है और जीवन व्यापारों के ही द्वारा उसका निर्माण होता रहता है। अतएव कथानक की सामग्री जीवन से ही उपलब्ध होनी चाहिए, क्योंकि उसका सम्बन्ध मानव-जीवन की गहनतम विवेचना से है। वहाँ साधारण घटनाओं के लिए कोई स्थान नहीं। लेखक की अंतर्दृष्टि जीवन-जगत् की गूढ़तम समस्याओं की ओर जानी आवश्यक है। संक्षेप मे, कथानक जीवन से ओत-प्रोत होना चाहिए। कथानक को उत्कृष्ट बनाने के लिए लेखक को दो प्रमुख बातो का ध्यान रखना आवश्यक है—प्रथम, कथानक का प्रवाह सुन्दर और स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ता रहे। घटनाओं मे शृङ्खला का रहना आवश्यक है और किसी वर्णन के समय उसका प्रवाह सुन्दर गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता रहना चाहिए। कथानक मे प्रवाह बनाये रखने के लिए भाषा की काँट-छाँट अथवा तोड़-मरोड़ की विफल चेष्टा करना उचित नहीं। उसे तो घटनाओं के संसर्ग मे आगे स्वच्छंदता पूर्वक विचरने देने मे ही कथानक का कल्याण है। द्वितीय, कथानक के विभिन्न अंगों मे तारतम्यता का ध्यान रखना आवश्यक है। यदि घटनाएं बिखरी हुई हैं तो कथानक का समूचा सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। कथानक के अंग आपस मे शृङ्खलाबद्ध होने से कथानक स्वाभाविक रूप से अपने अन्तिम लक्ष्य की ओर

अग्रसर होता रहता है। प्रेमचन्द की 'रानी सारधा' का महत्त्व इस दृष्टि से बहुत ऊँचा है।

कथानक की अवस्थाएं:—कथानक मे आरम्भ, विकास, कौतूहल, चरम-सीमा और अन्त में पॉच अवस्थाए होती हैं।

१. *शीर्षक*:—आरम्भ के पूर्व कहानी में शीर्षक का नम्बर आता है। शीर्षक सुन्दर, मोहक और आकर्षक होना चाहिए। शीर्षक देखकर ही लोग कहानी का अन्दाजा लगा लेते है। जैसे किसी मनुष्य का नाम बहुत सुन्दर हो और उसे हमने देखा न हो, पर उसके सुन्दर नाम में ही ऐसा जादू रहता है कि हम उस पर प्रसन्न हो जाते हैं। कहानी में शीर्षक बे-मतलब का कभी न हो, उसमें कहानी का कोई उद्देश्य-साधन अवश्य हो। सामान्य शीर्षक रखना भी ठीक नहीं, उसमें विशिष्टता होनी आवश्यक है। चतुरसेन शास्त्री के शीर्षक बडे ही मजेदार होते हैं। सामान्यत. शीर्षक का प्रयोग निम्न लिखित रूपों मे होता है—

१ कहानी के मुख्य पात्र के नाम पर २ कहानी के प्रधान विषय, भाव अथवा रस के आधार पर ३. कहानी की प्रधान घटना के अनुसार ४. कहानी की मुख्य वस्तु अथवा दृश्यावली के अनुसार ५ स्थान का सूचक। इनके अतिरिक्त और किसी तरह से भी कहानी का नाम रखा जा सकता है।

आरम्भ करने की पद्धतियॉ—शीर्षक के अनन्तर हम कहानी को आरम्भ कर देते हैं। प्राय कहानियों का आरम्भ पॉच प्रकार से हुआ करता है—१. किसी सिद्धान्त विशेष के अनुसार २ किसी दृश्य का उपस्थित करते हुए ३. पात्र के जीवन का परिचय देते हुए ४ घटनाओं को सामने लाते हुए ५. पात्रों को आपस में बातचीत कराते हुए। इन सब ढंगों में हमारी समझ मे पॉचवॉ ढंग अपनाया जाय तो अधिक उत्तम है। इससे रोचकता और चमत्कार की वृद्धि अपेक्षाकृत अधिक होती है।

२. *आरम्भ*:—कहानी का शीर्षक रख देने तथा उपर्युक्त आरम्भ करने की किसी विशेष पद्धति का अनुसरण कर लेने के अनन्तर हमे आरम्भिक भाग पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। आरम्भ कहानी का वह आदि भाग है, जिस पर कहानी की सफलता निर्भर होती है। एलेन पो (Adgar Allan Poe) का कहना है—'If his very initial sentence tend not to the out bringing of this effect, then he has failed in his first step' अर्थात् 'यदि उसका प्रथम वाक्य ही कहानी के प्रभाव की ओर सकेत करने वाला नहीं है, तो कहानीकार को अपने प्रथम चरण मे ही असफल हुआ सम-

भिए। इस प्रारम्भिक भाग को अधिक-से-अधिक सुन्दर, मोहक और आकर्षक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि एक अंग्रेजी विद्वान् के शब्दों में 'Well begun is half done' 'अच्छा आरम्भ आधा काम पूरा कर डालता है' और साथ ही 'The first few lines of a story have been well déscribed as the author's letter of introduction to the reader'' 'कहानी का यह भाग पाठकों को उसका परिचय देता है, अतः परिचय ऐसा हो कि कहानी का प्रभुत्व पाठकों पर जम सके'। जब आरम्भ सुन्दर और श्रेष्ठ होता है, तो पाठक स्वयं कहानी पढ़ने के लिए बाध्य हो जाता है।' यह वह पकड़ है, जिसमें पाठक आने के बाद नहीं छूट सकते और कहानी का पीछा करते हुए उसके अंत तक पहुँचते रहते है। आरम्भ के विषय मे लेखक को अनेकों बातें ध्यान में रखनी चाहिएं। प्रथम तो, उसमें आकर्षण का होना अनिवार्य है। जिस प्रकार हम बाजार में किसी नई चीज़ के आकर्षण से खिंचकर उसे देखने लग जाते हैं और दुकानदार से मोल-तोल करने लग जाते हैं, चाहे हमारी जेब मे पैसा हो अथवा नहीं, ठीक उसी प्रकार कहानी में इस प्रारम्भिक भाग से आकर्षित हो जाना चाहिए। द्वितीय, कहानी के इस आरम्भ का, शेष कहानी से पूरा-पूरा सामंजस्य होना आवश्यक है। ऐसा न हो कि आरम्भ और विकास मे किसी प्रकार का सम्बन्ध ही न रहे और वे पृथक्-पृथक् अवस्थाएं मालूम पड़ें। तृतीय, कहानी के इस आरम्भ मे लेखक को अपने उद्देश्य की ओर संकेत-मात्र कर देना चाहिए, ताकि पाठक को यह मालूम हो सके कि कहानी मे जीवन के किस अंश की झाँकी है? आरम्भ के विषय मे यदि इन तीनों बातों का ध्यान रखा गया, तो निस्संदेह कहानी के सुन्दर होने मे पर्याप्त सहायता मिलेगी। प्रेमचन्द की 'रानी सारंधा' कहानी का आरम्भ इन समस्त गुणों को लिये हुए है।

3 *विकास*:—आरम्भ के पश्चात् दूसरी अवस्था का नाम विकास है। आरम्भ तो परिचय-मात्र होता है, उस परिचय की विस्तार पूर्वक व्याख्या विकास मे ही होती है। वातावरण, पात्रों तथा घटनाओं की सृष्टि होने के अनन्तर जब कोई पात्र किसी कार्य-व्यापार में भाग लेने के लिए तत्पर हो जाता है, तो विकास की अवस्था प्रारम्भ हो जाती है। अतएव कहानीकार के लिए विकास का सुचारु रूप से निर्वाह करना एक कठिन कर्म है, लेकिन यदि उसमे कुछ मुख्य-मुख्य बातों का ध्यान रखा जाय तो बहुत-सी कठिनाइयाँ सहज ही मे दूर हो सकती हैं। प्रथम तो विकास का विस्तार आवश्यकता से अधिक कदापि

नहीं करना चाहिए। इससे स्वाभाविकता मारी जाती है और कहानी का डील-डौल विकृत हो जाता है । विस्तार उतना ही होना चाहिए जितना पात्रों और घटनाओं को आगे बढ़ा सके। पारस्परिक संघर्ष उत्पन्न कर देने के बाद विकास बन्द हो जाना चाहिए। द्वितीय, विकास का विस्तार करते समय ही कहानीकार को आगे के लिए कौतूहल-वर्धक घटना अथवा घटनाओं के लिए अच्छा खासा सामान तैयार कर के रखना चाहिए, ताकि कहानी अपनी करवट बदल सके। तृतीय, विकास का विस्तार करते समय हमें कहानी के प्रत्येक शब्द और वाक्य पर ध्यान देकर देखना चाहिए कि वे आवश्यक और परिस्थितियों के अनुकूल बन पड़े हैं अथवा नहीं । विकास में शब्दों का महत्त्व अधिक बढ़ जाता है। वे भाव विशेष की अभिव्यंजना और साथ ही सौंदर्य-वृद्धि मे सहायक होने चाहिए। चतुरसेन शास्त्री इस विद्या में प्रवीण है।

(। कौतूहल:—विकास से आगे चलकर सबसे कठिन और महत्त्वपूर्ण अवस्था कौतूहल की है। कथानक का सबसे बड़ा भाग यही है और इसी के द्वारा कहानी में चमत्कार और रोचकता लाई जाती है । कौतूहलता के लिए विद्वानों की सम्मति है कि उसका प्रवाह बड़ा ही शान्त होना चाहिए । शीघ्रता करने से कौतूहलता का आनन्द चला जाता है। द्वितीय, कौतूहलता की जागृति के लिए हमें किसी एक अथवा अनेक ऐसी घटनाओं का चुनना आवश्यक है जो महत्त्व-पूर्ण हो और जिसमें एक विशेष प्रकार का आकर्षण हो। इसके लिए लेखक का व्यक्तिगत कौशल, चातुर्य और अनुभव ही सहायक होता है। तृतीय, कौतूहल उत्पन्न करने के लिए घटनाओं के बीच में पात्रों को इस भाँति छोड़ देना चाहिए कि वे स्वयं उनमें से निकलने का कोई सुगम मार्ग न निकाल सकें। चतुर्थ, कौतूहल की सृष्टि इस रूप में हो कि आगे क्या होने वाला है, इसका पता पाठक को बिलकुल न लगने पाय । यदि पहले ही पता चल गया तो सारा मजा चला जायगा । अभिप्राय यह है कि जिस वस्तु की हम स्वप्न में भी आशा नहीं करते वह होकर रहे और वह कभी होकर न रहे, जिसके लिए हम अनु-मान लगाए बैठे हैं। पंचम, कौतूहलता उत्पन्न करने के लिए यदि एक घटना से अधिक और घटनाओं की सृष्टि करना आवश्यक हो तो कर देनी चाहिए। प्रत्येक कौतूहल के बाद पाठकों के उत्साह बढ़ाने के लिए कहानीकार को ऐसी दशा में प्रयत्नशील रहना आवश्यक है। इस प्रकार यदि इन पाँचों बातों का कौतूहलता के लिए पालन किया गया तो इस अवस्था का बड़ा ही सुन्दर रूप से निर्वाह होगा और कहानी हमें पर्याप्त मनोरंजन दे सकेगी । कुशल और

चतुर कहानीकार सदैव ऐसा ही किया करते है। प्रेमचन्द और चतुरसेन की कहानियों मे कौतूहल ऐसा ही होता है।

५ *चरम सीमा :*—कौतूहल से आगे बढ़ने पर चरम सीमा की अवस्था आती है। चरम सीमा के लिए कहानीकार को प्रथम तो पात्रों की भावनाओं मे ऐसी उत्तेजना भर देनी चाहिए और उन्हे एक ऐसे स्थल पर पहुँचा देना चाहिए कि जहाँ उनके भाग्य का फैसला 'अस्ति-नास्ति' की नैया मे न डोलकर निश्चित रूप मे हो जाय। अर्थात् यदि कुछ होना है तो वह हो जाय और नहीं होना है तो न हो। इन दोनों सम्भावनाओ के अतिरिक्त कुछ रख छोड़ना चरम सीमा के लिए ठीक नहीं। वहाँ सबका अपना-अपना भाग्य-निर्णय हो जाता है और जिसको जो मिलना होता है, मिल जाता है। दूसरे शब्दों मे पात्रों तथा घटनाओं का बकाया सारा हिसाब-किताब यहाँ आकर साफ हो जाता है। द्वितीय, यहाँ हमे इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि कौन किससे कितना माँगता था और कितना चुकाया जा चुका है। अर्थात् कथानक की सारी सुन्दरता यहाँ पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जानी चाहिए। तृतीय, चरम सीमा के लिए कहानीकार को एक ऐसी घटना की उद्भावना करनी चाहिए जिसका कहानी से प्रधानतः सम्बन्ध हो। असम्बद्ध घटना से चरम सीमा की अवस्था का ठीक ढंग से निर्वाह कदापि नही हो सकता। चरम सीमा के उत्कृष्ट उदाहरण प्रेमचन्द और सुदर्शन की कहानियों मे देखे जा सकते है।

६ *अन्त :*—चरम सीमा के बाद कथानक मे अन्तिम अवस्था का नाम अन्त है। आरम्भ की भाँति इसका निर्वाह भी बड़ी सावधानी और सतर्कता से करना चाहिए। यदि पहाड़ की चोटी पर पहुँचकर हमने सावधानी से पैर नहीं रखा तो हम फिसलकर नीचे गिर पड़ेगे और हमारी सारी मेहनत पर पानी फिर जायगा। इसलिए सर्व प्रथम तो हमे आरम्भ से अन्त मे अधिक आनन्द आना आवश्यक है। उससे कम तो किसी भी दशा मे नहीं आने पाय। यदि आरम्भ का निर्वाह ठीक ढंग से हुआ और अन्त मे कोई त्रुटि रह गई तो कथानक का सौन्दर्य बिगड़ जायगा। द्वितीय, भाव-प्रधान कहानियों मे यह आवश्यक समझा गया है कि जहाँ चरम सीमा की अवस्था आई, वहीं कहानी का अन्त कर देना चाहिए। इससे पाठकों के हृदय पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है और पढ़ने के उपरान्त भी उन्हे सोचने की कुछ सामग्री मिल ही जाती है। यहाँ अन्त को आगे बढ़ाना ठीक नहीं। केवल कुछ गोपन रीति से आशय की ओर संकेत-मात्र कर देने से ही आनन्द आ जाता है। आगे

बढाने से उसका स्वरूप भद्दा और असंगत प्रतीत होता है जैसे कौशिक की 'प्रभात' नामक कहानी में—'यह संन्यासी कौन था ? वही हमारा पूर्व-परिचित अयोध्याप्रसाद ।' अरे कहानी पढने वाले क्या इस संन्यासी से परिचित नहीं ? जो लेखक पाठक की बुद्धि मे संदेह रखते हैं, वे इस प्रकार की व्याख्या का अनुभव करते हैं। तृतीय, यहाँ आकर लेखक को पाठकों की सम्भावना के विरुद्ध अकस्मात् कुछ ऐसी बात का आविर्भाव करना चाहिए जो कुतूहलता बढ़ाने के साथ-ही-साथ पाठक को थोड़ी देर के लिए विचार में डाल दे। जयशंकर प्रसाद, चद्रगुप्त विद्यालकार आदि की कहानियाँ इसीलिए इतनी उच्चकोटि की समझी जाती हैं।

(२) *पात्र अथवा चरित्र-चित्रण :*—जो व्यक्ति कथानक का कार्य करता है अथवा कथानक की घटनाए जिन व्यक्तियों पर निर्भर होती हैं, वे पात्र कहलाते हैं। कहानी आरम्भ करने के पूर्व कुछ व्यक्तियों को कहानीकार हमारे सामने लाता है, जिनका उसकी घटनाओं से सम्बन्ध होता है। ये व्यक्ति ही कहानी के पात्र कहलाते हैं। चरित्र-चित्रण कहानी का प्रधान अग है। कहानियों में पात्रों के आचरण को (आचरण से अभिप्राय उनके मनोभाव, प्रकृति, आदर्श, उद्देश्य आदि से है) सुन्दर ढग से रखकर जो उनका सम्पूर्ण रूप हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है, वह चरित्र-चित्रण कहलाता है। बिना पात्रों के चरित्र-चित्रण नहीं होता। पात्र के चरित्र-चित्रण के बिना कहानी अधूरी समझी जाती है। रूप, रंग, स्वास्थ्य आदि में मूक मनुष्य जिस प्रकार हमें नहीं लुभाता, ठीक उसी प्रकार कहानी का बहिरंग सुन्दरतम क्यों न हो, उसमें कितने ही गुणों का समावेश क्यों न हो, जब तक पात्रों का चरित्र-चित्रण नहीं होगा तब तक कहानी की कोई छाप हमारे ऊपर नहीं पड़ सकेगी। चरित्र-चित्रण से ही पात्र कहानियों में अमरत्व को प्राप्त होते हैं। इसी के द्वारा उनके आदर्श सदैव हमारे सामने झूमते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। कहानी रूपी दर्पण में चरित्र की छवि-छाया हमें अमरत्व प्रदान करती है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

चरित्र-चित्रण को सुन्दर से सुन्दरतम बनाने के लिए लेखक को जिन नियमों का पालन करना चाहिए, उनमें सर्व(प्रथम)तो यह है कि पात्र में जीवन की शक्तियाँ विद्यमान रहनी चाहिए। जीवन की शक्तियों से हमारा प्रयोजन सुख-दु ख, हर्ष-विषाद, विरह-मिलन आदि शाश्वत मनोभावों से है, जिनमें से होकर पात्र एक सफल विजयी की तरह निकलता रहता है। जो लेखक अपने

चरित्रों को घटनाओं के अनुसार ही आगे बढ़ाते रहते हैं, वे आदर्श चरित्रों का निर्माण नहीं कर सकते। आदर्श चरित्र के लिए यह आवश्यक है कि वह घटनाओं पर विजय प्राप्त करे, तथा समय और परिस्थितियों के अनुसार उन्हे अपनी ओर मोड़ सके। पात्रों को जीवन-मदिरा देना कहानी-साकी-वाला का प्रधान कार्य है। इससे उनके सिद्धान्तों का हमारे ऊपर चिर-स्थायी प्रभाव पड़ सकता है और वे हमारे जीवन में भी परिवर्तन कर देते हैं। सक्षेप में, कहानी के पात्र जीवन की शक्तियों को धारण किये हुए हों। द्वितीय, चरित्र-चित्रण करते समय लेखक को अपनी वर्णन-शैली पर विशेष ध्यान देना चाहिए। दृश्य-वर्णन में लेखकों की पर्यवेक्षण शक्ति गजब की होनी आवश्यक है। हिन्दी मे साधारण-स्वाभाविक दृश्यों के वर्णन में प्रेमचन्द, और प्राकृतिक दृश्य-वर्णन में जयशंकर 'प्रसाद' को आशातीत सफलता मिली है। नाटक मे तो पात्र का साकार रूप हमारे समक्ष खड़ा हो जाता है, लेकिन कहानी मे लेखक को कल्पना के सहारे ही उसका चित्र खींचना पड़ता है। ऐसी दशा में वर्णन-शैली का महत्त्व अधिक बढ़ जाता है। वर्णन-शैली स्पष्ट हो और सूक्ष्म से-सूक्ष्म बातों का परिचय भी उससे मिल जाय। तृतीय, लेखक को स्वयं अपने व्यक्तित्व के विषय में पहले जान लेना चाहिए। विना अपने मन की विशेष दशाओं को जाने, हृदय की सूक्ष्म भावनाओं को समझे उसे समग्र जीवन की मनोभावनाओं को समझने मे कदापि सहायता नहीं मिल सकती इससे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में भी सहायता मिलती है। मनोभाव सबमे समान रूप से पाये जाते हैं, यद्यपि मात्रा का अन्तर उसमे अवश्य रहता है, लेकिन सादृश्यता में तो कोई सन्देह ही नहीं रह जाता। अतएव स्वयं विना अपनी हृदयगत भावनाओं को समझे हम सफल चरित्र-चित्रण नहीं कर सकते। अपने कार्यों, उद्देश्यों, कमजोरियों आदि को समझे विना दूसरों की भावनाओं का ज्ञान निरा शुष्क और थोथा ही रहेगा। चतुर्थ, लेखक को अपने व्यक्तित्व के साथ-साथ समीप-वर्ती जीवन-जगत् के स्वभाव, आचरण, व्यवहार आदि का सूक्ष्म निरीक्षण करना भी आवश्यक है। संसार में जितने भी पदार्थ हैं—जड़ अथवा चेतन, उन सबका सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन और निरीक्षण करना लाभदायक सिद्ध होगा और उनसे कहानी के कुछ ऐसे उपयोगी तत्त्व निकलेंगे, जिनसे उनके चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ सकेगा। पंचम, कहानियों मे चरित्राङ्कन चार प्रकार से हो सकता है—पात्र को विविध परिस्थितियों मे डालकर उसकी हार-जीत के अनुसार ही उसके आदर्श गुणों की व्यंजना। दो, पात्रों के परस्पर

वार्तालाप की योजना से उनके स्वभाव, आचरण और व्यवहार आदि का परिचय। कहीं-कहीं लेखक की ओर से स्वगत कथानकों द्वारा पात्रों की टीका-टिप्पणी और अंत में बहुत-सी जगह दूसरे कथनों के सहारे भी चरित्र-चित्रण किया जा सकता है। लेखक इनमें से किसी-न-किसी ढंग को तो अपनाता ही है। कथोपकथनात्मक ढंग सबसे उत्कृष्ट है। आधुनिक कहानी के कला-रूप में चित्रण आदर्श माना जाता है। पात्रों मे जीवन की शक्तियाँ आ जाने से वे अपना वर्णन स्वय ही कर देते है, लेखक को अपनी ओर से कहने की कोई आवश्यकता नहीं होती। कथोपकथन के द्वारा मानव-जीवन और उसके मनोभावों की अभिव्यक्ति सुन्दरता और सरलता के साथ की जा सकती है। ध्यान केवल इतना ही रखना चाहिए कि चरित्र-चित्रण करते समय विशेष लाघव न करना पड़े। उसकी ओर तो केवल संकेत-मात्र हो, क्योंकि कहानी छोटी होने के कारण चरित्र-चित्रण-जैसे अग का सुचारु रूप से निर्वाह होना वास्तव मे अत्यंत कठिन है। हम तो केवल इतना चाहते हैं कि कहानीकार पात्रों के विषय में कुछ न कहे, कहानी पढ लेने पर स्वय उनके स्वभाव, आचरण और व्यवहार की छाप हमारे ऊपर पड जाय। बस इतना ही चरित्र-चित्रण कहानियों में पर्याप्त है। कौशिक, गुलेरी, प्रेमचन्द, प्रसाद आदि ने अपनी कहानियों में इन बातों का ध्यान रखते हुए बड़ा ही सुन्दर चरित्र-चित्रण किया है।

(३) कथोपकथन :—पात्र आपस में जो वार्तालाप करते हैं, उसी को कथोपकथन कहते है। कहानी का सबसे श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण अग उसका कथोपकथन है। इसके द्वारा एक ओर तो, जैसा कि कहा जा चुका है, हमे पात्रो की वृत्ति, उनके आचरण, स्वभाव आदि का पता चलता है, दूसरी ओर कहानी के प्रभाव मे वृद्धि होती है। इसी अंग के द्वारा पात्र हमारे जीवन के समीप आते हैं, उनमें से बहुत से हमारे मित्र बनते हैं, बहुत-से शत्रु और बहुत-से हमे वार्तालाप करने का सुन्दर ढंग सिखाते हैं। बहुत-से जीवन के कठिन मार्ग मे पथ-प्रदर्शन का कार्य करते हैं। कथोपकथन रस की उत्पत्ति करके सदैव मन को आकृष्ट किये रहता है, ऊबने नहीं देता। अतएव कथोपकथन की महत्ता किसी से छिपी नहीं।

कहानी मे कथोपकथन की उत्कृष्टता के लिए हमें पाँच बातों का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। प्रथम, कहानी मे कथोपकथन अनिवार्य रूप से हो। बिना कथोपकथन के कहानी मे आनन्द आ ही नहीं सकता। मनोरंजन के लिए कथोपकथन की कुछ-न-कुछ मात्रा का होना आवश्यक समझा गया

है। द्वितीय, कथोपकथन का प्रधान कार्य परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से कथानक के प्रवाह में सहायता पहुँचाना है और इस प्रकार उसके द्वारा चरित्र-चित्रण भी सुलभ होता है। जिस संलाप को पढ़कर हम कथानक का प्रवाह रुकता हुआ पायं, वहाँ समझ लेना चाहिए कि लेखक ने इसका निर्वाह ठीक ढंग से नहीं किया है। तृतीय, कथोपकथन स्वाभाविक, उपयुक्त और भावात्मक हो। अस्वाभाविक और अनावश्यक वार्तालाप से हमें चिढ़ होने लग जाती है। मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह व्यर्थ की बकवास सुनना पसन्द नहीं करता, केवल अपने मतलब की बात चाहता है। अतः लेखक को पाठक के मतलब को दृष्टि-पथ पर रखते हुए पात्रों को व्यर्थ की बकवास से बचाने का प्रयत्न करना चाहिए। साथ ही कथोपकथन समय और परिस्थितियों के अनुकूल हो। वह सरल, संक्षिप्त, स्पष्ट और मनोरंजक हो। उसमे प्रत्येक शब्द का विशेष महत्त्व हो और वह आगामी घटना से सम्बन्ध रखने वाला हो। कहानी में कथोपकथन जितना ही संक्षिप्त होगा, उतना ही उसमें कम समय लगेगा। शब्दों का प्रयोग थोड़ा हो, लेकिन उनके अर्थ और भाव लम्बे होने से ही कथोपकथन का मूल्य बढ़ता है। चतुर्थ, कथोपकथन मे उपदेश अथवा वर्णन की ओर अधिक ध्यान देना हानिकारक है। कहानी में उपदेश देना सर्वथा अवांछनीय है। उसका आनन्द तो तभी मिल सकता है जब एक पात्र प्रश्न करे और दूसरा उसका उत्तर देता चले। प्रश्नोत्तर के रूप में कथोपकथन का क्रमिक विकास होना आवश्यक है। पाँचवीं बात यह है कि कथोपकथन की भाषा पात्रों के अनुकूल होनी चाहिए। लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं कि भाषा को हम ठेठ बना दें और वह किसी की समझ मे ही न आय। ऐसे शब्दों का प्रयोग, जो सबकी समझ मे आते है और जो स्थल विशेष पर पात्रों के अनुकूल होने पर भी स्वाभाविक प्रतीत होते हैं, करना चाहिए। इससे कहानी का सौंदर्य बढ़ जाता है और कहानी की सरलता तथा मनोहरता की भी रक्षा होती है। कथोपकथन सम्बन्धी इन पाँच नियमों का पालन करने से यह अंग अत्यन्त ही सुन्दर, स्वाभाविक और मनोहर होगा, इसमे कोई सन्देह नहीं। प्रेमचन्द, प्रसाद, गुलेरी आदि के सलाप इतने महत्त्वपूर्ण इसीलिए हैं कि उन्होंने इन नियमों का पालन किया है।

(४) *भाषा और शैली* :—भाषा और शैली मे परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। भाषा की सुन्दरता और सशक्तता साहित्य की उच्च अवस्था पर तथा लेखक की योग्यता पर निर्भर है। साहित्य जितना उच्चावस्था में होगा और लेखक जितना

योग्य होगा, वह उतनी ही उच्चकोटि की शैली को जन्म दे सकेगा। अत भापा की शक्ति पर ही शैली की उत्कृष्टता अवलंबित है। कहानी की भापा ऐसे सार्थक शब्द-समूहों से गठित होनी चाहिए जो एक विशेप क्रम से व्यवस्थित होकर लेखक अथवा पात्र के मन की वात पाठकों के मन तक पहुँचाकर उसके द्वारा उन्हें प्रभावित करते हों। शैली लिखने का वह कौशल, सौष्ठव और सौंदर्य है, जिसमे एक प्रकार के वैशिष्ट्य की आवश्यकता होती है और वह प्रधान गुणों के कारण पाठकों का ध्यान सहज ही में अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। शैली के दो मुख्य अंग हैं—उपादान (Matter) और रूप (Form)। वाक्य-विन्यास, पद-विन्यास, शब्द-योजना और प्रसंग-गर्भत्व (Albisive-ness) विषय की स्पष्टता के लिए उपाख्यान अथवा कथा के प्रयोग आदि का सम्वन्ध पहले अंग से है और दूसरे मे चरित्र-विकास एवं उसके तत्त्वों पर लेखक के व्यक्तित्व की छाप रहती है। उपादानात्मक शैली के लिए भापा पर लेखक का पूरा अधिकार होना चाहिए। भावों की अभिव्यक्ति का आधार भापा है अतएव भाव को सुन्दर रूप में प्रकाशित करने के लिए उसी के उपयुक्त भाषा में सुन्दरता होनी चाहिए। भाव में भापा के द्वारा ही मार्मिकता का पुट दिया जा सकता है। भाषा सरल और मुहावरेदार हो। स्वर्गीय (हृदयेश) वी० ए० की 'विलासिनी' कहानी में भाषा क्लिष्ट होने से न केवल उसकी सुन्दरता और आनन्द को धक्का लगा है, वरन् हमारा जी भी ऊबने लग जाता है। स्थानाभाव से हम उसका उदाहरण तो नहीं दे सकते, परन्तु इतना तो वल पूर्वक कह ही सकते हैं कि असावधानी पूर्वक शब्दों का प्रयोग करके पाठक को वाक्याडम्बर में उलझाने की चेष्टा उसमें की गई है। वह निवन्ध के लिए उपयुक्त है, कहानी के लिए नहीं।

भापा और शैली का कहानी में विशेष महत्त्व है। उत्कृष्ट शैली को जन्म देने के लिए सर्व प्रथम आवश्यकता तो इस वात की है कि लेखक अपनी भाषा, भाव और कल्पना के द्वारा कथानक को अधिक-से-अधिक प्रभावोत्पादक वनाने का प्रयत्न करे। भाषा के सुन्दर और सवल हुए विना शैली मे वह विशेष प्रकार का गुण और वैशिष्ट्य नहीं आ सकता, जो पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्पित कर सके। 'शैली' शैली के नाम से तव तक नहीं पुकारी जानी चाहिए जव तक कि उसमें कोई विशिष्टता तथा नवीनता न हो। इस दृष्टि से प्रेमचन्द, प्रसाद और कुछ दूसरे कहानीकारों की ही कहानियाँ वास्तविक शैली के अन्तर्गत आती हैं। द्वितीय, शैली के लिए लेखक की प्रतिभा, चातुर्य,

विस्तृत अध्ययन और योग्यता का होना नितान्त आवश्यक है। विना प्रतिभा और चतुरता के तो काम ही नहीं चल सकता। इन दोनों का सम्मिश्रण लेखक में होना चाहिए। श्रेष्ठ शैली के विषय मे एडगर एलेन पो ने भी लिखा है—'The reconciliation of genius with artistic skill is absolutely necessary'. अच्छी शैली तभी बन सकती है जब लेखक सतत परिश्रम करे और लिखने-पढ़ने में ही व्यस्त रहे। अच्छी शैली वह तपस्या है, जिसके लिए वर्षों तक कठिन साधना करनी पड़ती है। भाषा तथा शैली के विषय मे यह ध्यान रखना चाहिए कि उसका एक शब्द भी निरर्थक और व्यर्थ न हो। अच्छी कहानियों में शब्द हटाना तो दूर रहा, यदि एक शब्द के स्थान पर उसका कोई दूसरा पर्यायवाची शब्द भी रख दिया जाता है तो स्वाभाविकता और मनोहरता नष्ट हो जाती है। प्रत्येक शब्द अपने-अपने स्थान पर नपा-तुला हुआ होना चाहिए। इसी बात को और स्पष्ट करते हुए पोकॉक (Pocock) नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है:—'Every single part of the story must be relevant and to the point There must be no padding out, no word spinning. Every epithet, every phrase, every sentence should bear in some way upon the plot, character or atmosphere. so that when we come to the end we feel sure that we could not have skipped a line without missing something essential.' अर्थात् 'कहानी का हर एक भाग प्रसंगानुकूल और उचित होना चाहिए। न तो उसमे भाव-दुरूहता हो, न शब्द-जाल। प्रत्येक शब्द, शब्द-समूह या वाक्य का सम्बन्ध वस्तु, चरित्र या वातावरण से होना आवश्यक है। जब हम कहानी पढ़ चुकें तो हमे ऐसा प्रतीत हो कि यदि हम एक भी पंक्ति छोड़ गए होते तो कहानी अधूरी रह जाती।' जिस प्रकार किसी छोटे-से पेच के गिर जाने से सारी मशीन ही फेल हो जाती है, उसी प्रकार कहानी की शैली मे यदि कोई शब्द अनावश्यक और निरर्थक आ गया तो कहानी का सौंदर्य ही बिखर जायगा। कहानी की शब्दावली सुमधुर होनी चाहिए। उसमे से ऐसी रागिनी, ध्वनि और स्वर-लहरी निकलती रहे, जिससे पाठक पढ़ने मे निमग्न रहे उसमें प्रत्येक चित्र भावात्मक हो, जो शीघ्र ही हृदय को स्पर्श कर ले। संक्षेप मे, कहानीकार को भाषा की मार्मिकता की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। शैली-सम्बन्धी पॉचवीं बात यह है कि उसमे व्यंग्य और हास्य की

योग्य होगा, वह उतनी ही उच्चकोटि की शैली को जन्म दे सकेगा। अत भाषा की शक्ति पर ही शैली की उत्कृष्टता अवलंबित है। कहानी की भाषा ऐसे सार्थक शब्द-समूहों से गठित होनी चाहिए जो एक विशेष क्रम से व्यवस्थित होकर लेखक अथवा पात्र के मन की बात पाठकों के मन तक पहुँचाकर उसके द्वारा उन्हें प्रभावित करते हों। शैली लिखने का वह कौशल, सौष्ठव और सौंदर्य है, जिसमे एक प्रकार के वैशिष्ट्य की आवश्यकता होती है और वह प्रधान गुणों के कारण पाठकों का ध्यान सहज ही में अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। शैली के दो मुख्य अंग हैं—उपादान (Matter) और रूप (Form)। वाक्य-विन्यास, पद-विन्यास, शब्द-योजना और प्रसंग-गर्भत्व (Albisiveness) विषय की स्पष्टता के लिए उपाख्यान अथवा कथा के प्रयोग आदि का सम्बन्ध पहले अंग से है और दूसरे मे चरित्र-विकास एवं उसके तत्त्वों पर लेखक के व्यक्तित्व की छाप रहती है। उपादानात्मक शैली के लिए भाषा पर लेखक का पूरा अधिकार होना चाहिए। भावों की अभिव्यक्ति का आधार भाषा है अतएव भाव को सुन्दर रूप मे प्रकाशित करने के लिए उसी के उपयुक्त भाषा में सुन्दरता होनी चाहिए। भाव में भाषा के द्वारा ही मार्मिकता का पुट दिया जा सकता है। भाषा सरल और मुहावरेदार हो। स्वर्गीय (हृदयेश) बी० ए० की 'विलासिनी' कहानी में भाषा क्लिष्ट होने से न केवल उसकी सुन्दरता और आनन्द को धक्का लगा है, वरन् हमारा जी भी ऊबने लग जाता है। स्थानाभाव से हम उसका उदाहरण तो नहीं दे सकते, परन्तु इतना तो बल पूर्वक कह ही सकते हैं कि असावधानी पूर्वक शब्दों का प्रयोग करके पाठक को वाक्याडम्बर मे उलझाने की चेष्टा उसमे की गई है। वह निबन्ध के लिए उपयुक्त है, कहानी के लिए नहीं।

भाषा और शैली का कहानी में विशेष महत्त्व है। उत्कृष्ट शैली को जन्म देने के लिए सर्व प्रथम आवश्यकता तो इस बात की है कि लेखक अपनी भाषा, भाव और कल्पना के द्वारा कथानक को अधिक-से-अधिक प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयत्न करे। भाषा के सुन्दर और सबल हुए बिना शैली में वह विशेष प्रकार का गुण और वैशिष्ट्य नहीं आ सकता, जो पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सके। 'शैली' शैली के नाम से तब तक नहीं पुकारी जानी चाहिए जब तक कि उसमें कोई विशिष्टता तथा नवीनता न हो। इस दृष्टि से प्रेमचन्द, प्रसाद और कुछ दूसरे कहानीकारों की ही कहानियाँ वास्तविक शैली के अन्तर्गत आती हैं। द्वितीय, शैली के लिए लेखक की प्रतिभा, चातुर्य,

विस्तृत अध्ययन और योग्यता का होना नितान्त आवश्यक है। बिना प्रतिभा और चतुरता के तो काम ही नहीं चल सकता। इन दोनों का सम्मिश्रण लेखक में होना चाहिए। श्रेष्ठ शैली के विषय में एडगर एलेन पो ने भी लिखा है—'The reconciliation of genius with artistic skill is absolutely necessary'. अच्छी शैली तभी बन सकती है जब लेखक सतत परिश्रम करे और लिखने-पढ़ने में ही व्यस्त रहे। अच्छी शैली वह तपस्या है, जिसके लिए वर्षों तक कठिन साधना करनी पड़ती है। भाषा तथा शैली के विषय में यह ध्यान रखना चाहिए कि उसका एक शब्द भी निरर्थक और व्यर्थ न हो। अच्छी कहानियों में शब्द हटाना तो दूर रहा, यदि एक शब्द के स्थान पर उसका कोई दूसरा पर्यायवाची शब्द भी रख दिया जाता है तो स्वाभाविकता और मनोहरता नष्ट हो जाती है। प्रत्येक शब्द अपने-अपने स्थान पर नपा-तुला हुआ होना चाहिए। इसी बात को और स्पष्ट करते हुए पोकॉक (Pocock) नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है:—'Every single part of the story must be relevant and to the point There must be no padding out, no word spinning. Every epithet, every phrase, every sentence should bear in some way upon the plot, character or atmosphere, so that when we come to the end we feel sure that we could not have skipped a line without missing something essential.' अर्थात् 'कहानी का हर एक भाग प्रसंगानुकूल और उचित होना चाहिए। न तो उसमें भाव-दुरूहता हो, न शब्द-जाल। प्रत्येक शब्द, शब्द-समूह या वाक्य का सम्बन्ध वस्तु, चरित्र या वातावरण से होना आवश्यक है। जब हम कहानी पढ़ चुकें तो हमें ऐसा प्रतीत हो कि यदि हम एक भी पंक्ति छोड़ गए होते तो कहानी अधूरी रह जाती।' जिस प्रकार किसी छोटे-से पेच के गिर जाने से सारी मशीन ही फेल हो जाती है, उसी प्रकार कहानी की शैली में यदि कोई शब्द अनावश्यक और निरर्थक आ गया तो कहानी का सौंदर्य ही बिखर जायगा। कहानी की शब्दावली सुमधुर होनी चाहिए। उसमें से ऐसी रागिनी, ध्वनि और स्वर-लहरी निकलती रहे, जिससे पाठक पढ़ने में निमग्न रहें उसमें प्रत्येक चित्र भावात्मक हो, जो शीघ्र ही हृदय को स्पर्श कर ले। संक्षेप में, कहानीकार को भाषा की मार्मिकता की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। शैली-सम्बन्धी पाँचवीं बात यह है कि उसमें व्यंग्य और हास्य की

उचित मात्रा हो । हास्य के लिए केवल इतना ही ध्यान रखा जाय कि वह अश्लील न होने पाय, वह शिष्ट और सभ्य हो । हास्य का प्रयोग अवसर के उपयुक्त हो । गांभीर्य, करुणा अथवा शोक के समय यह चीज़ ठीक नहीं । अन्तिम बात यह भी है कि प्रकृति-वर्णन करते समय, जब लेखक बाह्य प्रकृति का वर्णन करने लगे तो उसे हृदयस्पर्शी और जीवन से सामजस्य स्थापित करने वाला वर्णन उपस्थित करना चाहिए । साथ ही वह भावों को रोचक और तीव्र बनाने में सहायक हो ।

कहानी के लिए ऐसा कोई नियम नहीं है कि वह अमुक शैली में ही लिखी जाय । फिर भी कहानी की निम्न शैलियाँ प्रधानतया प्रचलित हैं—

१. साधारण वर्णनात्मक शैली (Descriptive) सबसे आसान, सीधी और साधारण शैली यही है, जिसमे लेखक इतिहासकार की भाँति कथा कहता जाता है । वह पात्रो तथा घटनाओं की श्रृङ्खला तैयार करके उन्हें खिलाता है और स्वय कथानक के परदे की ओट में सारी बाते सुनाता रहता है । अधिकाश कहानियाँ इसी शैली में लिखी जाती हैं ।

२. आत्म-चरित-शैली (Autobiographical) इसके अनुसार लेखक प्रथम पुरुष मे अपनी कहानियाँ लिखता है और अपने को कहानो के किसी पात्र से सम्बद्ध कर देता है । यह स्वय 'मैं' के रूप मे कहानी मे खड़ा होता है और जीवन-चरित्र की भाँति सब-कुछ कहता जाता है । सुदर्शन की 'अंधेरी दुनिया' इसी शैली में लिखी गई है ।

३ संलाप-शैली (Conversational) इसके अनुसार कथानक और चरित्र का विकास वार्तालाप के द्वारा किया जाता है । इस शैली की कहानियों का आरम्भ दो पात्रों की बातचीत से होता है । कौशिक की 'ताई' नामक कहानी इसका उदाहरण है ।

४ पत्र-शैली (Epistolatory) इसके अनुसार लेखक सारी घटनाएं पत्रो के द्वारा प्रकाशित करता है । उसमें कहानी की सारी बातें पत्रों में या अवतरणों के रूप में पाई जाती हैं और वे उन्हीं पत्रों में आदि से लेकर अन्त तक जुडी हुई रहती है, जैसे सुदर्शन की 'बलिदान' कहानी ।

५. डायरी शैली (Diary) इसके अनुसार कहानी संस्मरण के रूप में लिखी जाती है । इस शैली में भावना का उद्रेक अपेक्षाकृत अधिक होता है ।

(५) उद्देश्यः—कहानी में लेखक जीवन के जिस लक्ष्य की ओर सकेत करता है अथवा जो आदर्श हमारे सम्मुख उपस्थित करता है, उसी को उद्देश्य

कहते है। यह तो हम बहुत पहले ही बता चुके हैं कि कहानी मे कल्पना का आरोप अधिक मात्रा मे होता है, लेकिन यहाँ कहानी के उद्देश्य पर विचार करते समय हमें यह न भूलना चाहिए कि उसमे जीवन के किसी सत्य अथवा आदर्श की व्यंजना होती है। हमें कहानियों मे यथार्थवाद और आदर्शवाद के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए, क्योंकि पाश्चात्य विचार-धारा का हमारे समालोचकों पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। न तो कहानी पूर्ण रूप से यथार्थवादी है और न पूर्ण रूप से आदर्शवादी ही। शरीर मे मंगलमय आत्मा का जो महत्त्व है, कहानी की स्थूल काया मे वही स्थान आदर्श का है। लज्जा-रहित यथार्थवाद से साहित्य का कोई सरोकार नहीं, क्योकि कला वास्तविकता को सँभालती-सँवारती है। जिस तरह शरीर मे आत्मा है, उसी प्रकार यथार्थ में आदर्श का मिश्रण है। इसलिए कहानी के उद्देश्य पर विचार करते समय यह याद रखना चाहिए कि उसके पात्र अथवा घटनाएं वस्तु-जगत् के भीतर ठीक उसी रूप में भले ही विद्यमान न हों, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनका कुछ आभास हमारे जीवन मे अवश्य विद्यमान रहता है। कहने का अभिप्राय यह है कि कहानी एक निश्चित उद्देश्य को लेकर चलती है और इस उद्देश्य की ओर संकेत करती हुई समाप्त हो जाती है। कहानी का उद्देश्य भले ही स्पष्ट रूप से न दिखाई दे अर्थात् जीवन की विस्तार पूर्वक विवेचना और व्याख्या भले ही न हो, परन्तु उसमे उसकी विशेष दशा का चित्रण अवश्य रहता है। मात्रा चाहे वह थोड़ी हो चाहे अधिक। कहानी के उद्देश्य के विषय मे मूल बात यही है और इसे हमे स्मरण रखना चाहिए। पाश्चात्य देशों में भी उद्देश्य को लेकर विद्वानों मे मानसिक युद्ध हो रहा है। मोपांसा की 'Chair wender and The minuet' दो विश्व-प्रसिद्ध कहानियों को लेकर सम्मति दी गई है कि उनमें उपदेश की आवश्यकता है। Ford M. Hueffer ने इसकी काट करते हुए कहा है–'The first duty of an artist is not to comment and predict not to moralise ? अर्थात् 'कलाकार का प्रधान कर्त्तव्य है घटनाएं वर्णन करना। क्या होगा? इसकी ओर भी निर्देश करना उसका कार्य नहीं, न उपदेशक बन बैठना ही उसे उचित है।' 'The art should show things as they are' (M. Arnold) इसी प्रकार Oscar Wilde का कहना है— 'Art is neither moral not immoral, it is simply non-moral ?' रूस मे टाल्सटाय उपदेश देते रहे—विवाद बना ही रहा। Bernard Shaw के गुरु Oscar Wilde ऑस्कर वाइल्ड की कहानी

'The devoted friend' से इस उद्देश्य की मीमांसा अच्छी तरह हो जाती है। कहानी का उद्देश्य जिस प्रकार 'पण्डुक' की समझ मे नहीं आया, वह तो उसे केवल मनोरंजन देती गई, ठीक उसी तरह उसका उद्देश्य होना चाहिए। 'Draw life to the life and your moral will draw itself' वाला मत ठीक है अर्थात् 'मनुष्य को मनुष्य के रूप मे अंकित करो, शिक्षा आप निकल आयगी।' भारतीय विचार धारा पर इन्हीं पाश्चात्य विद्वानों की छाप है।

साथ ही हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि कहानी केवल-मात्र कला के लिए ही नहीं है, उसका सम्बन्ध मानव-जीवन से भी है। कहानी कला और जीवन दोनों की बपौती है, एक की नहीं। कला के लिए इसलिए कि इसकी एक निश्चित सीमा है जिसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता और जीवन के लिए इसलिए कि किसी भी साहित्य के अंग का हमारे जीवन से घनिष्ठ सम्पर्क होता है। बिना जीवन के तत्त्वों के कहानी केवल सस्ते मनोरंजन की वस्तु रह जाती है। कहानी का उद्देश्य मनोरंजन के साथ मानव-जीवन की अनुभूतियों का हृदयस्पर्शी और मार्मिक चित्र उपस्थित करना भी है। अतएव लेखक को कहानी की कला और जीवन दोनों का पर्याप्त मात्रा मे सामंजस्य करते हुए कहानी की सृष्टि करनी चाहिए। वस्तुत ऐसी कहानियों से ही साहित्य की उन्नति हो सकती है।

साहित्यकारों के पास इन मोटी-मोटी बातों के अतिरिक्त और कोई विशेष बात नहीं है। एक महिला द्वारा कहानी का उद्देश्य पूछे जाने पर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उत्तर दिया—'कहानी लिखने का उद्देश्य कहानी लिखना है। मैं कहानी इसलिए लिखता हूँ कि कहानी लिखने की मेरी इच्छा होती है। किसी मतलब से कहानी नहीं लिखी जाती साहित्य विज्ञान नहीं, और न वह धर्म-शास्त्र ही है। यदि उसमे कुछ निर्धारित नियमों के अनुसार ही पात्रों के चरित्र अंकित किये जायं तो वह चित्र प्राण-हीन होगा। सम्भव है, वह नेत्र-रंजक हो, पर इसमें हम जीवित संसार का आदर्श न देख सकेंगे।' अत इन नियमों के अतिरिक्त लेखक को प्रतिभा, परिश्रम और चातुर्य ही काम में आता है। यह सामग्री तो उसके लिए साधन-मात्र है।

४

कहानी में क्या हो ?

'कहानी तो वह है, जो पाठकों के मन पर चोट करे; उस पर डंडे की चोट की तरह बैठ जाय।' इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कहानीकार को कहानी लिखते समय अनेक बाते ध्यान मे रखनी आवश्यक हैं। छोटी-मोटी बातों के लिए लेखक की प्रतिभा, तथा जगत् और जीवन-सम्बन्धी उसके गहरे अनुभव ही काम मे आते हैं। बात-बात के लिए साहित्यकार के पास कोई विशेष नियम नहीं हैं। साहित्य-जैसे गतिशील पदार्थ को नियमों मे बाँधना भी ठीक नहीं। जिस प्रकार हमारे दैनिक जीवन मे अनेक स्थानों पर हमारी प्रतिभा, हमारा परिश्रम तथा समयानुकूल सूझ ही काम देती है, उसी प्रकार लेखक को भी अपनी प्रतिभा और अनुभव के बल पर कहानियों की सृष्टि करनी चाहिए। यह बात निस्संदेह सत्य है कि जिस लेखक की प्रतिभा जितनी ही तीव्र होगी—अनुभव जितने ही परिपक्व होंगे, उसकी कहानी का मूल्य भी उतना ही अधिक होगा। फिर भी कहानी मे जिन-जिन बातों का होना आवश्यक समझा गया है, वे इस प्रकार हैं। इनको ध्यान मे रखने से हम सुन्दर कहानी लिख सकते है—

(१) मौलिकता.—कहानी मे मौलिकता का होना नितान्त आवश्यक है। मौलिकता से अभिप्राय एक विशेष काव्य-उत्पादन-शक्ति से है। कहानी के सभी अंग—कथानक, पात्र, कथोपकथन आदि सब-के-सब—तो मौलिक होने से रहे, लेकिन विचारों को इस रूप मे रख देना कि उसकी शैली नवीन जान पड़े, मौलिक बनने का सबसे सरल उपाय है। वस्तुतः कहानी की मौलिकता उसकी शैली पर ही निर्भर है। कथानक तथा विचार तो प्रायः कहानियों मे एक-से ही हुआ करते हैं, जिन्हे हम पढ़ते चले आ रहे है। इसलिए कहानीकार को अपनी शैली की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। मौलिकता के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक साधारण वस्तु का वर्णन करते समय हम जीवन के यथार्थ स्वरूप को अंकित करना न भूले। प्रेमचन्दजी हिंदी-साहित्य मे मौलिक कहानीकार इसलिए समझे जाते हैं कि उन्होंने एक नवीन शैली दी है। मौलिक बनने के लिए लेखक को सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का रखना आवश्यक है। वही कहानी पाठकों के हृदय पर गहरा प्रभाव डाल सकेगी, जिसमे लेखक

की अंतर्दृष्टि मानवी-प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपो की ओर गई हो। जीवन और जगत् मे इतनी अमूल्य भाव-राशियाँ छिपी पड़ी हैं कि जिन लेखकों की बुद्धि सजग और दृष्टि आलोचनात्मक होती है, वे ही उन्हें ढूँढ़ सकते हैं। जिनकी दृष्टि उस स्थल पर पहुँच जाती है, जहाँ सामान्य व्यक्ति की पहुँच नहीं होती और जो उन भाव-राशियों का अपनी कुशाग्र बुद्धि से संकलन करते रहते हैं, वे निस्संदेह सुन्दर कहानियों की सृष्टि कर सकते हैं। विश्व-विख्यात कहानीकार मोपासा ने मौलिक बनने के सरल मार्ग का निर्देशन करते हुए कहा है कि वस्तुओं का वर्णन करते समय हमे उन्हे बारम्बार ध्यानपूर्वक देखना चाहिए। इस सूक्ष्म निरीक्षण से ही हमें उन वस्तुओं में वह नवीनता दिखाई दे सकती है, जिसे किसी ने देखा अथवा पढ़ा नहीं है। ससार की प्रत्येक वस्तु में कोई-न-कोई रहस्य अवश्य छिपा रहता है, लेकिन वह अपनी ही आँखों से दिखाई दे सकता है—'Everything which one deserves to express must be looked at with sufficient attention, and during a sufficiently long time, to discover in it some aspect which no one has yet seen or described In every thing there is still some plot unexplored, because we are accustomed only to use our eyes with the recollection of what others before us have thought on the subject which we contemplate, The smallest object contains something unknown, find it

(२) *घटनाओं की बारीकी और उन पर विश्वास*—कहानी को ऐसी घटनाओं से सर्वथा दूर रहना चाहिए, जिन पर उसके पाठक विश्वास न कर सकें। कहानी की घटनाओं पर स्वाभाविक रीति से विश्वास होने पर उसकी लोकप्रियता बढ़ती है, और ऐसी कहानी हमारा मनोरंजन करती हुई हमें जीवन-दान भी दे सकती है। जैसे, यदि कोई कहानीकार अपनी कहानी में किसी युवक और युवती के परस्पर विशेष सम्पर्क का उल्लेख किये बिना केवल प्रथम मिलन में ही विवाह करा देता है, तो वह अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जायगा। ऐसी अनहोनी घटना पर हमें विश्वास कदापि नहीं हो सकेगा। इस प्रकार की घटनाओं का उल्लेख करते रहने से मानव-जीवन पर से हमारी आस्था उठ जाती है। कहानीकार का ध्यान सदैव ऐसी घटनाओं का उल्लेख करते समय अथवा चरित्र-चित्रण करते समय उसकी बारीकियों और पेचीदगियों की

ओर जाना आवश्यक है। संक्षेप मे, कहानी का जो परिणाम या तत्त्व निकले, वह सर्वमान्य हो और उसमे कुछ बारीकी अवश्य हो। प्रेमचन्द ने भी लिखा है—'उपन्यासों की भाँति कहानियाँ भी कुछ घटना-प्रधान होती हैं, कुछ चरित्र-प्रधान। चरित्र-प्रधान कहानी का पद ऊँचा समझा जाता है। कहानी मे बहुत विस्तृत विश्लेषण की गुञ्जाइश नहीं होती। यहाँ हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्यों को चित्रित करना नहीं, वरन् उनके चरित्र का एक अंग दिखाना होता है। यह परम आवश्यक है कि हमारी कहानी से जो परिणाम या तत्त्व निकलें, वे सर्वमान्य हों और उनमे कुछ बारीकी हो'' जब हमारे चरित्र इतने सजीव और आकर्षक होते हैं कि पाठक उनको अपने स्थान पर समझ लेता है, तभी उस कहानी में आनन्द प्राप्त होता है। अगर लेखक अपने पात्रों के प्रति पाठक मे यह सहानुभूति उत्पन्न न कर सका तो वह अपने उद्देश्य मे असफल है।'

(३) *व्यक्तित्व*:—वस्तुओं का वर्णन करते समय सूक्ष्म निरीक्षण के साथ हमे सदैव इस बात के लिए सचेष्ट रहना चाहिए कि कहानी केवल घटनाओं की सूची-मात्र ही न रह जाय और उसमें कहानीकार के व्यक्तित्व का पता ही न लग सके। साधारण घटनाओं के वर्णन-मात्र से कहानी का काम नहीं चल सकता। कहानी तब तक कहानी नहीं कही जायगी, जब तक कि उसमे लेखक के व्यक्तित्व की छाप लगी हुई नहीं होगी। कहानी मे उसका निजत्व उसी प्रकार प्रतिबिम्बित होना चाहिए जिस प्रकार मुकुर मे व्यक्ति का मुख। कहानी का प्रत्येक शब्द और प्रत्येक वाक्य लेखक के मुँह का शब्द और वाक्य है, किसी घटना-विशेष अथवा पात्र का नहीं। अतएव कहानीकार को इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना आवश्यक है कि उसकी कहानी मे उसके निजी सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, विरह-मिलन आदि मनोभावों के उद्गारों का, गांभीर्य का तथा जीवन सम्बन्धी विचारों का समावेश कहाँ तक हो सका है, उसने अपने ऐसे विचारों के प्रकाशन के लिए उसमे कोई स्थिति उत्पन्न की है अथवा नहीं और अन्त मे, वह अपने व्यक्तिगत मनोभावों को साधारणीकरण का रूप दे सका है अथवा नहीं।

(४) *सरसता*:—कहानी को सरस और सुबोध होना आवश्यक है। कहानी मे जहाँ नीरसता आने लगती है, चतुर और कुशल कहानीकार उसमें कार्य-व्यापार की सृष्टि करके पाठकों का ध्यान पात्रों के क्रिया-कलाप की ओर आकर्षित कर देते हैं। कहानी की सबसे बड़ी विशेषता, जैसा कि कहा जा चुका है, उसकी सरलता और सुबोधता है। यदि इसका ध्यान नहीं रखा गया तो कहानी

अपने उद्देश्य से गिर जायगी। इसके लिए कहानीकार को अपनी भाषा पर विशेष ध्यान देना चाहिए। वह क्लिष्ट न होने पाय, अन्यथा भाषा भावों को नष्ट करके सारा मनोरंजन मिट्टी में मिला देगी। भाषा के सम्बन्ध में हमारी नीति यह होनी चाहिए कि उसके एक-एक शब्द और एक-एक वाक्य का विशेष महत्त्व हो। वह तीव्रता और ताज़गी उत्पन्न करे और उसमे तनिक-सा भी अंश ऐसा न हो, जिसे पढ़ने वाला अनावश्यक कह सके।

(५) *विषय की जानकारी*:—कहानीकार के लिए अपने विषय की जानकारी होनी भी नितान्त आवश्यक है। जिस विषय का हमें कोई ज्ञान नहीं, जिस वस्तु की हमें कोई प्रत्यक्ष अनुभव नहीं, उसके विषय में लिखने से पाठकों के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ता है। एक कहानी के खराब होने से हज़ारों लोग खराब हो जाते हैं, क्योंकि कहानी में लिखी हुई बातों का उन पर प्रभाव पड़ता है। सत्यता और स्वाभाविकता कहानी के आवश्यक गुण हैं। कहानी मे कल्पना-शक्ति से यह अभिप्राय नहीं कि हम कुछ ऐसी मन-गढ़न्त घटनाओं का उल्लेख करने लग जायं, जिनके द्वारा सत्य का यथार्थ स्वरूप ही पाठकों के सामने न आ सके। कहानी मे सत्य प्रधान रूप से रहता है, कल्पना का स्थान गौण होता है। कहानियों मे ऐसा वर्णन सर्वथा हानिकारक है जो ज्ञान और प्रत्यक्ष अनुभव से दूर हो। लेखक को स्वयं अपने विषय की जानकारी रखनी चाहिए, अन्यथा वह अपने साथ-साथ और लोगों को भी अन्ध कूप में गिरा देगा।

(६) *प्रिय विषय*:—विषय की जानकारी के साथ-ही-साथ कहानी में सदैव ऐसा विषय रहना चाहिए, जो सबको प्रिय हो। आजकल हिन्दी मे कुछ ऐसी कहानियाँ लिखी जा रही हैं, जिन्हे पढने को मन नहीं करता। इसका प्रधान कारण यही है कि उनके लेखकों को अपने विषय की कोई पहचान तक नहीं कि वे पाठकों को प्रिय होगी अथवा नहीं। प्रिय विषय के लिए केवल इतना ही कहा जा सकना है कि उससे हमारे हृदय मे घृणा उत्पन्न न होकर अनुराग और उत्सुकता की जागृति होनी चाहिए। घृणा उत्पन्न करने वाले विषयों से कहानी का सौंदर्य नष्ट हो जाता है। अतएव लेखक को अपने प्रिय विषय के लिए सदैव सावधान रहना चाहिए।

(७) *हृदय की प्रधानता*—'The stories that touch the heart are most popular' अर्थात् 'हृदय को स्पर्श करने वाली कहानियाँ ही सबसे अधिक लोकप्रिय होती हैं।' कहानी केवल मानसिक तृप्ति का ही साधन नहीं, वह हमारे हृदय पर भी एक गहरा प्रभाव डालने वाली होनी चाहिए। जो

कहानियाँ केवल मानसिक तृप्ति के उद्देश्य से लिखी जाती है, उनमें हृदय की गहराई नहीं होती और इसलिए वे हमारे उद्देश्य से दूर जा पड़ती हैं। हृदय को प्रधानता देने वाली कहानियाँ प्रभाव स्थापित करने के साथ-साथ हमारा मनोरंजन भी करती रहती हैं।

(८) *जो कुछ हो, एक हो*:—कहानीकार को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसका तथ्य एक, और केवल एक ही हो, विविध कुछ भी न हो। कहानी मे केवल एक ही तथ्यता होती है, एक ही घटना होती है, आत्मा की केवल एक ही झाँकी प्रदर्शित की जाती है और अन्त मे, केवल एक ही मनोवैज्ञानिक सत्य देखने को मिलता है। जो कहानी विविध तथ्यों, घटनाओं और सत्यों की व्यंजना करती है, उसे हम कहानी नहीं कह सकते।

(९) *अनुभूति*:—कहानी मे व्याख्या की मात्रा कम रहती है, उसमे तो समवेदना का आधिक्य ही वांछनीय है। अब कहानी का मूल्य उसकी घटना से आँकना ठीक नहीं। कहानियों मे पात्रों की मनोवृत्तियाँ ऐसी होनी आवश्यक हैं जो स्वयं घटनाओं की सृष्टि करें। आधुनिक कहानियों में घटनाओं का कोई स्वतन्त्र मूल्य नहीं है। हमे इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि घटनाएं पात्रों की मनोगति से स्वयं उद्भूत हों, वे स्वयं प्रधानता ग्रहण न कर लें और न लेखक इसके लिए कोई प्रयास ही करे। कारण यह है कि जब तक कहानी मे अनुभूति नहीं होती, तब तक उसका कोई प्रभाव पाठकों पर नहीं पड़ सकता।

कहानियों का वर्गीकरण

साहित्य के किसी अंग का वर्गीकरण एक शुष्क व्यापार है, परन्तु किसी अंग की यथार्थ विवेचना विना वर्गीकरण किये कदापि नहीं हो सकती। हिन्दी-कहानीकारों ने कहानी-साहित्य को जो विविध सामग्री दी है उसके विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह वर्गीकरण विशेष लाभदायक सिद्ध होगा। आज हमारे सामने कहानियों का इतना व्यापक स्वरूप आ रहा है कि उसका वर्गीकरण करना एक दुस्तर कार्य है, क्योंकि प्रथम तो वर्गीकरण करना ही एक शुष्क व्यापार है, द्वितीय वर्गीकरण कर देने के उपरान्त भी वहुत-से भेद एक दूसरे के इतने सन्निकट पहुँच जाते हैं कि पाठक भ्रम में पड़ जाता है। फिर भी यदि सावधानी से काम लिया जाय तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक कहानी में किसी विशेष तत्त्व की प्रधानता होती है और उसी तत्त्व के आधार पर उसका वर्गीकरण कर दिया जाय तो वह अधिक मान्य और न्याय-सगत होता है। प्रस्तुत अध्याय मे इसी दृष्टि से विचार किया गया है। इस प्रकार हिन्दी-कहानियों को हम नौ भागों में विभाजित कर सकते हैं। लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं कि कहानियों के केवल इतने ही भेद होते हैं, और कोई दूसरे भेद हो ही नहीं सकते। जो-जो भेद हमे देखने को मिलते हैं, वे इस प्रकार हैं:—

(१) *चरित्र-प्रधान*:—जिस कहानी में पात्र अथवा चरित्र के अन्य तत्त्वों, जैसे कार्य, घटना आदि की अधिक प्रधानता होती है, उसे चरित्र-प्रधान कहानी कहते हैं। प्राय चरित्र-प्रधान कहानियों में लेखक का ध्यान एक-मात्र सुन्दर चरित्राङ्कन पर होता है। चरित्र-प्रधान कहानियों के अन्तर्गत भी हमे अनेक उप-भेद देखने को मिलते हैं। प्रमुख रूप से ये चार भेद हैं। प्रथम, प्रकार की चरित्र-प्रधान कहानियाँ वे हैं जिनमें लेखक किसी विशेष चरित्र को विविध घटनाओं और कार्यों के वीच छोड़कर उसके किसी प्रधान गुण की व्यंजना करता है। घटनाएं और कार्य उसके सुन्दर चरित्र-निर्माण में सहायक होते हैं और इसी उद्देश्य से उनकी सृष्टि होती है। प्रेमचन्द की 'दफ्तरी' नामक कहानी ऐसी ही है। द्वितीय प्रकार की चरित्र-प्रधान कहानियाँ वे हैं,

जिनमे चरित्र के किसी विशेष पक्ष का चित्रण बड़ी ही खूबी के साथ किया जाता है। यह विशेष पक्ष ही उस चरित्र के जीवन का आदर्श होता है। कहानी की सफलता केवल मात्र इसी पक्ष की सुन्दर व्यंजना पर निर्भर होती है। गुलेरी की 'उसने कहा था', प्रेमचन्द की 'बूढ़ी काकी' और प्रसाद की 'भिखारिन' इस दृष्टि से उच्च कोटि की कहानियाँ है। इनमे चरित्र प्रायः विशेष प्रकार के होते हैं, क्योंकि इनकी सृष्टि केवल एक विशिष्ट गुण अथवा अवगुण को ध्यान मे रखकर ही की जाती है। तृतीय प्रकार की चरित्र-प्रधान कहानियाँ वे है, जिनमे किसी प्रधान चरित्र के स्वभाव मे आगे चलकर कोई आकस्मिक परिवर्तन दिखलाया जाता है। इससे कहानी की प्रभावोत्पादकता बढ़ती है और इसके लिए इस प्रकार का परिवर्तन सबसे बड़ा हथियार है। कौशिक की 'ताई', और प्रेमचन्द की 'आत्माराम', 'दीक्षा', 'शंखनाद' आदि कहानियाँ ऐसी ही हैं। चतुर्थ प्रकार की चरित्र-प्रधान कहानियाँ वे हैं जो सुन्दर और प्रभावशाली होते हुए भी मनोवैज्ञानिक होती है और जहाँ पर किसी विशेष स्थिति मे पात्र का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण किया जाता है। ऐसी कहानियों मे कथानक बहुत ही थोड़ा तथा घटनाओं और कार्यों की ओर संकेत-मात्र होता है—प्रमुख पात्र के आदर्श सामने लाये जाते हैं अथवा चरित्र मे आकस्मिक परिवर्तन दिखाया जाता है। संक्षेप मे, आदर्श गुण-अवगुणों का मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित करना अथवा पात्र के परिवर्तित रूप का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उपस्थित करना ही लेखक का प्रधान उद्देश्य होता है। जैनेन्द्रकुमार की 'जाह्नवी', भगवतीप्रसाद वाजपेयी की 'मिठाईवाला', विनोद-शंकर व्यास की 'अपराध' नामक कहानियाँ इसी श्रेणी में आती है।

(२) *घटना-प्रधान* :—जिस कहानी में घटनाएं और प्रसंग शेष तत्त्वों, जैसे चरित्र-कार्य आदि से अधिक मात्रा मे होते हैं, उन्हे घटना-प्रधान कहानी कहते है। ऐसी कहानियाँ साधारण होने के नाते निम्न कोटि की समझी जाती है। इस प्रकार की कहानियों में घटनाओं की प्रधानता रहती है। कहानी-साहित्य की प्रारम्भिक अवस्था में ऐसी बहुत-सी कहानियाँ लिखी गई हैं, जिनमे चरित्रों के विकास की ओर ध्यान न देकर घटनाओं को रोचक, कुतूहलवर्धक बनाकर पाठकों को मनोरंजन प्रदान करने की चेष्टा की गई है। कुछ जासूसी कहानियाँ भी ऐसी श्रेणी मे आती हैं। कौशिक की 'पावन-पतित' कहानी ऐसी ही है। ज्वालादत्त शर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि कहानीकारों की कहानियाँ भी इसी वर्ग की हैं। दैवी घटनाओं और अतिप्राकृत प्रसंगों का वर्णन इनमें

प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। ऐसी कहानियों से पाठक की जिज्ञासा-वृत्ति तो अवश्य शान्त हो जाती है, लेकिन उनमे कला और चरित्र का सौन्दर्य नाम मात्र का होता है।

(३) *कार्य-प्रधान* —जिस कहानी मे कार्य पर, चरित्र और घटनाओं की अपेक्षा अधिक जोर दिया जाता है और केवल-मात्र कार्य की ही प्रधानता होती है, उसे कार्य-प्रधान कहानी कहते है। कहानी मे कार्य और घटना दो पृथक् पृथक् वस्तुएं हैं, उन्हे एक ही समझ लेना ठीक नहीं। इस प्रकार की कहानियों में भी चरित्र का कोई विशेष महत्त्व नहीं होता, पात्रों के कार्य ही महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं। प्राय समस्त जासूसी कहानियाँ इस श्रेणी के अन्तर्गत आ जाती हैं। इसका कारण यह है कि लेखक जासूसों के चरित्र की अवहेलना करके उनकी विस्मयकारी निपुणताओं में ही तन्मय हो जाता है। कुछ हास्यप्रद कहानियाँ, जो कार्यों पर जोर देती हुई अतिनाटकीय प्रसंगों को लेकर चलती हैं, इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। ऐसी कहानियों में प्रधानत साहसिक, रहस्यपूर्ण, विचित्र तथा अद्भुत कार्य होते रहते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि गोपालराम गहमरी तथा गंगाप्रसाद (जी० पी०) श्री वास्तव इस विद्या मे प्रवीण हैं।

(४) *वातावरण-प्रधानः*—जिस कहानी में लेखक का प्रधान उद्देश्य किसी भावना तथा अनुभूति से ओत-प्रोत होकर किसी सुन्दर वातावरण की सृष्टि करना होता है, उसे वातावरण-प्रधान कहानी कहते हैं। वातावरण-प्रधान कहानी के लिए आगे चलकर एक उचित परिपार्श्व की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की कहानियों मे उस बाह्य वातावरण तथा परिपाश्र्व के साथ मानव-जीवन की किसी एक मुख्य भावना की प्रधानता होनी आवश्यक है। उसी मुख्य भावना को लेकर बाह्य वातावरण तथा परिपाश्र्व के सहारे कहानी का विकास होता है। कला की दृष्टि से इन कहानियों का स्थान ऊँचा है, क्योंकि यहाँ लेखक को अपनी कला-निपुणता के प्रदर्शन के लिए अच्छा अवसर हाथ लग जाता है। लेखक कवित्वपूर्ण, लाक्षणिक सौंदर्य से परिपूर्ण यथार्थवादी, आदर्शवादी और भावनात्मकता मे से किसी भी वातावरण का चित्रण कर सकता है। उसे कहानी की व्यंजना में कला की कतर-ब्योंत की भी पूर्ण स्वतन्त्रता है। जयशंकर 'प्रसाद' की 'आकाश-दीप' और प्रेमचन्द की 'शतरंज के खिलाडी' इसके उत्कृष्ट उदाहरण है। सुदर्शन की कुछ कहानियाँ भी अच्छी हैं।

(५) *प्रभाव-प्रधानः*—जिस कहानी का उद्देश्य किसी प्रभाव की सृष्टि करना होता है, जिसमे घटनाओं और प्रसंगों, चरित्रों तथा कार्यों के द्वारा किसी प्रभाव की सृष्टि की जाती है, उसे प्रभाव-प्रधान कहानी कहते हैं। संगीत मे जिस प्रकार गाने का कोई महत्त्व न होकर सुनने वालों पर उसका प्रभाव देखा जाता है, उसी प्रकार इस तरह की कहानियो में कहानी का प्रभाव ही सर्वस्व होता है। इनमे घटना, चरित्र, कथानक आदि तत्त्वों का बिलकुल ध्यान नहीं रखा जाता। कहानी का कोई महत्त्वपूर्ण भाग किसी प्रभाव विशेष की सृष्टि करके पाठकों के मस्तिष्क मे एक स्थायी भाव छोड़ देता है। इस तरह की कहानियों मे ध्यान देने योग्य बात उनका कलात्मक रूप है। ये कहानियाँ अभी कुछ ही वर्षों से लिखी जाने लगी हैं, इसलिए इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की 'क ख ग' और मोहनलाल महतो 'वियोगी' की 'कवि' नामक कहानियाँ इस दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर और प्रभावशाली है। पुनः इन कहानियों को भी हम तीन भागों मे विभाजित कर सकते हैं—प्रथम, जहाँ कला के रूप का ध्यान रखते हुए लेखक किसी चिरन्तन सत्य की व्यंजना करने मे तल्लीन रहता है। ये कहानियाँ पुराण-कथा अथवा रूपक-कथा से मेल खाती हैं। यह बात अवश्य है कि पुराण-कथा का रूप देते समय इनमे कहीं-कहीं अस्वाभाविक और अप्राकृतिक बाते भी आ जाती हैं, लेकिन देवी-देवताओं के द्वारा हम पर सत्य की अमिट छाप पड़ती है। तथा उसके प्रभाव मे भी वृद्धि होती है। सुदर्शन की 'एथेंस का सत्यार्थी,' 'कमल की बेटी' और 'संसार की सबसे बड़ी कहानी' तथा पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की 'देश-भक्त' नामक कहानियाँ ऐसी ही है। द्वितीय प्रकार की कहानियाँ वे है जिनमे लेखक एक विशेष प्रभाव के द्वारा पाठकों के मन पर किसी सामयिक सत्य की छाप छोड़ता है। ऐसी कहानियों मे लेखक अपनी ओर से कुछ भी नहीं घटाता-बढ़ाता वरन् यथार्थ चित्र ज्यों-का-त्यों रख देता है। बस, इसी के द्वारा सामयिक सत्य की व्यंजना होती है। दैनिक जीवन के भावपूर्ण, सुन्दर और सुरुचिपूर्ण नमूने छाँटकर रख दिए जाते हैं। सहानुभूति उत्पन्न करना इन कहानियों का लक्ष्य होता है। इनमे रूप और शैली दोनों का भावपूर्ण और उत्कृष्ट होना आवश्यक है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की 'काम-काज,' अज्ञेय की 'रोज़' आदि कहानियाँ इसके उदाहरण हैं। तृतीय प्रकार की कहानियाँ वे हैं जहाँ किसी सामयिक सत्य को व्यंग्य के रूप मे लिखा जाता है। यह सत्य सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक कोई भी हो सकता है। भगवतीचरण शर्मा की 'प्रेजेण्ट्स', 'प्रायश्चित्त', 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी'

ऐसी ही कहानियाँ हैं। चतुर्थ प्रकार की कहानियाँ वे है, जहाँ लेखक कल्पना के सहारे कोई आभ्यांतरिक (Subjective) दृष्टिकोण उपस्थित करता है। ऐसी कल्पनापूर्ण कहानी में उसके कला-रूप का एक विशेष महत्त्व है। ससार के अचेतन पदार्थ ऐसी कहानियों मे बडे मजे से कहानी सुनाते है—उन्हे एक मानव के रूप में व्यक्त किया जाता है। कमलाकात वर्मा की 'खँडहर,', 'तकली' 'पगडडी' आदि इसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं।

(६) *हास्य-प्रधान:*—वह कहानी, जो किसी सभ्य और शिष्ट हास्य की सृष्टि करती है, हास्य-प्रधान कहानी कहलाती है। ऐसी कहानियों का उद्देश्य पाठक को केवल हँसाना होता है। हास्य-प्रधान कहानियाँ हिन्दी में बहुत कम लिखी गई हैं और उनमें से भी अधिकांश कहानियों में ऊँचे दरजे का हास्य नहीं दिखाई देता। कहानी-साहित्य मे ऐसी कहानियों का स्थान विशेष महत्त्व का है, पर दु ख और दारिद्र्य से पूर्ण भारतवर्ष में यहाँ के निवासियों को रोने से ही कहाँ फुरसत है, जो चद मिनटों के लिए बैठकर हँसें। अभी तक जी० पी० श्रीवास्तव, बद्रीनाथ भट्ट, अन्नपूर्णानन्द, बेढब और प्रेमचन्द ने ही इस वर्ग की कहानियों में विशेष रूप से ख्याति प्राप्त की है।

(७) *ऐतिहासिक:*—वह कहानी, जिनमें इतिहास की तरह घटनाओं की क्रमबद्धता की ओर ध्यान दिया जाता है, ऐतिहासिक कहानी के नाम से पुकारी जाती हैं। ऐसी कहानियों में कथानक की प्रभावोत्पादकता के लिए कल्पना का पुट अधिक होता है। ऐतिहासिक कहानियों के लिए इतिहास के ही नायक तथा नायिका का होना आवश्यक है। इनमे से अधिकाश का शीर्षक तो इन्हीं के नाम पर रख दिया जाता है। अत शीर्षक देखने-मात्र से ही ऐतिहासिक कहानी का परिचय मिल जाता है। ऐतिहासिक उपन्यासों की तरह ऐतिहासिक कहानियाँ भी हिन्दी-साहित्य में कम लिखी गई हैं। प्रसाद की 'ममता', सुदर्शन की 'न्याय-मंत्री,' प्रेमचन्द की 'वज्रपात,' 'रानी सारंधा,' और चतुरसेन शास्त्री की 'भिक्षुराज' इसके उदाहरण हैं। वृन्दावनलाल वर्मा ऐसी कहानियाँ बहुत सुन्दर लिखते हैं।

(८) *प्राकृतवादी:*—प्राकृतवादी कहानी वह है, जिसमे लेखक लज्जा और घृणा से युक्त मानव-जीवन की कोई घटना लेकर उसे कलात्मक सौंदर्य के साथ चित्रित करने का प्रयत्न करता है। ऐसी कहानियों का मुख्य उद्देश्य सामाजिक सुधार होता है। निस्संदेह ये कहानियाँ सुन्दर होती हैं और इनमें सत्य की मात्रा भी अधिक रहती है। चरित्र-चित्रण और शैली की दृष्टि से भी

इन कहानियों का विशेष महत्त्व है, परन्तु भद्दे और कुरुचिपूर्ण कथानक होने के कारण ये पाठकों को अच्छी नहीं लगतीं। जनता में ये कहानियाँ अच्छी भावना उत्पन्न नहीं करतीं, क्योंकि लेखक समाज-सुधारक का बाना पहनकर नग्न यथार्थ को ही लक्ष्य करके कहानी लिखने बैठता है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास और कहानियाँ ऐसी ही हैं।

(६) *प्रतीकवादी* :—वह कहानी, जिसमें अमानव वस्तु को मानव का रूप देकर आगे बढ़ाया जाता है, प्रतीकवादी कहानी कहलाती है। ऐसी कहानियों में विविध वस्तुएं भिन्न-भिन्न भावनाओं की प्रतीक होती हैं। हिन्दी साहित्य में ऐसी कहानियाँ बहुत ही कम लिखी गई हैं। जयशंकर 'प्रसाद' की 'कला' और राय कृष्णदास की 'कला और कृत्रिमता' नामक कहानियाँ इसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं।

६

कहानी-साहित्य का विकास

(१) उत्पत्ति —'नदी जैसे जल-स्रोत की धारा है, मनुष्य वैसे ही कहानी का प्रवाह ।'—रवीन्द्रनाथ टैगोर की इस परिभाषा के अनुसार यह जीवन और जगत् स्वयं ही एक कहानी है । ऐसा कौन अभागा होगा, जो कहानी सुनना और पढना पसन्द न करता हो ? सरल से लेकर गम्भीर प्रकृति वाले प्राय सभी लोग कहानी द्वारा मन-बहलाव करते देखे गए हैं, सभी को कहानी प्रिय जान पड़ती है। ऐसा क्यों होता है ? इसका सीधा-सादा उत्तर यही है कि मानव-जीवन ही कुछ ऐसा है कि उसमे 'आगे क्या हुआ' की प्रवृत्ति न तो कभी लुप्त हुई और न हो सकती है । मनुष्य के हृदय में यह वृत्ति संस्कार रूप से विद्यमान है, इसलिए उसकी तृप्ति के लिए वह सदैव कहानी का आश्रय लेता है। अतएव जब से मनुष्य इस सृष्टि में आया, तभी से उसमें कहानी कहने तथा सुनने की प्रवृत्ति भी आई। शैशव में दादी, माँ या नानी के मुँह की परी-कहानियाँ, वृद्धों के पुराणेतिहासिक आख्यान, सखा-सहेलियों से सुनी गई साहस-प्रवास कथाएं, स्कूल-कालेजों मे पढ़ी गई प्रेम-कथाएं जवानी की जासूसी-तिलिस्मी और एय्यारी की कहानियाँ, रंगमंच और चलचित्र देखने का नशा, प्रवास मे स्टाल से खरीदे गए 'माया', 'मनोहर कहानियाँ' आदि की कहानियाँ, और नहीं तो कम-से-कम तट, नाव, चौपाल आदि पर बैठे मनगढ़न्त किस्से सुनना-सुनाना ये सभी तो मानो चुपचाप इस बात की सूचना देते है कि कहानी मनुष्य-मात्र का सहस्रों वर्षों से एक प्रिय व्यवसाय रहा है। ये कहानियाँ अनन्त काल से कही जा रही हैं, कही जायंगी—न तो कहने वाला अघायगा और न सुनने वाला ही ! इन कहानियों का न तो कोई आदि है और न अंत ही, यह एक चिरन्तन सत्य है । जीवन और जगत् में पल-पल नित नई कहानियाँ बनती चली जा रही हैं।

कहानियों की उत्पत्ति सर्वप्रथम कहाँ हुई और किस रूप में हुई, इस बात का निर्णय करना जरा टेढ़ी खीर है, क्योंकि जैसा कहा जा चुका है कहानी का अस्तित्व अनन्त काल से है, आज से नहीं। यह बात दूसरी है कि उसके रूप और शैली में तत्कालीन गतिविधियों से कुछ परिवर्तन आ गया है, लेकिन

इससे उसकी उत्पत्ति तथा अस्तित्व पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता। कुछ विद्वानों का मत है कि मिस्र देश मे कहानी रूपी लता सर्वप्रथम लहलहाई। आधुनिक कहानियों का सादृश्य अधिकांश में वहाँ की सुप्रसिद्ध कहानी 'अनपू और बाटा' (Anpu & Bata) में देखा जा सकता है, जो वहाँ के पंचम राजवंश के समय में लिखी गई थी। उसमे दो युवक एक ही बालिका से प्रेम करते है और उनमें से एक के साथ उस बालिका का विवाह हो जाता है। दूसरे प्रेमी के मनोभाव एवं कार्य को लेकर इस गल्प की रचना हुई है। कुछ विद्वान् कहानी को तमसा के किनारे उर्वर भूमि की उपज मानते हैं। कुछ भी हो, यह बात निर्विवाद रूप से स्वीकार की जाती है कि संसार के प्रायः सभी देशों मे और सब कालों में कहानी के तत्त्व मौजूद थे। कहानी की उत्पत्ति वस्तुतः मानव-सृष्टि मे उसकी भाषण-शक्ति से आरम्भ होती है। अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे मनुष्य अन्य प्राणियों से जीवन-जगत् के अनुभवों को अवकाश के क्षणों में सुनाने के लिए एक स्वाभाविक रुचि रखता था। मनुष्य का यह आत्मानुभव कहानी की उत्पत्ति का मूल कारण हुआ और श्रोताओं का मनोरंजन इसका प्रधान उद्देश्य। लेखन-कला के अभावों मे यह साहित्य सर्वप्रथम पद्य मे ही लिखा जाता रहा, लेकिन कालांतर मे, उसकी पूर्ति होते ही पद्य के साथ व्यावहारिक कार्यों के लिए गद्य का भी आविर्भाव हुआ। कल्पना का प्रयोग करके मनुष्य ने अपने आत्मानुभावों को लिपिबद्ध किया, जो सभ्यता और संस्कृति के साथ विकसित होते गए। कहानी का यह विकसित रूप हमे प्रत्येक साहित्य मे देखने को मिलता है, जिसका आदिम स्वरूप मौलिक ही था, जिसे दन्तकथाओं के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। क्या घर मे और क्या बाहर इन दन्तकथाओं का एक बहुत बड़ा महत्त्व था। बूढ़ी दादी और नानियाँ घर मे बच्चों की कौतूहल-वृत्ति की शांति के लिए कहानियाँ सुनाती थीं तो बाहर कहानियों को सुनते-सुनते ही श्रांत-क्लान्त बटोही लम्बी राते और दुस्तर मार्ग सहज ही में काट देते थे। संक्षेप में, कहानियाँ बालक, युवा और वृद्ध सबके हृदय में समान रूप से रस-संचार करती हुई उनका मनोरंजन करती थीं। इस प्रकार यदि क्रम-विकास के अनन्त काल पर दृष्टि डाली जाय तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कहानी की उत्पत्ति अनंत काल से हुई है, लेकिन यह भारतवर्ष का ही सौभाग्य था कि लिपिबद्ध होकर साहित्यिक रूप में कहानी का निर्माण सर्वप्रथम उसके द्वारा हुआ। अस्तु,

(२) *काल-विभाजन*—हिन्दी के विद्वानों की सम्मति है कि आधुनिक कलापूर्ण कहानियों का इतिहास उसके विगत ३०-३५ वर्षों का ही इतिहास है। यह बात अवश्य है कि आज कहानी ने अपने निश्चित लक्ष्य और प्रभाव के द्वारा अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली है किन्तु प्राचीन कथा-साहित्य उतना उपेक्षणीय नहीं जितना कि वे समझे बैठे है—उसमे कहानी के तत्त्व अवश्य ही देखने को मिलते हैं । प्राचीन कथा-साहित्य को आधुनिक कहानियो की पृष्ठ-भूमि के लिए पढ़ना नितान्त आवश्यक हो जाता है । अतएव हिन्दी-कहानी-साहित्य का विकास प्रस्तुत करते समय उनका उल्लेख उतना ही आवश्यक है, जितना कि आधुनिक कहानियों का। इसी के द्वारा हम उस विकास को अच्छी तरह समझ सकते हैं। हिन्दी-कहानी-साहित्य के इसी विकास को हृदयंगम करने के लिए हमारे सम्मुख जो कठिनाई उपस्थित होती है, वह यह है कि साहित्यक उन्नति और क्रमिक विकास को दृष्टि-पथ मे रखते हुए इसका विभाजन किस रूप मे किया जाय ? वैसे तो इसके बीच सीधी-सीधी रेखाएं खींचना एक दुस्तर कार्य है, लेकिन फिर भी सुविधा के लिए हम ऐसा कर सकते हैं। इस विभाजन के अंतगत काल-विशेष की विभिन्न प्रवृत्तियों के साथ-साथ प्रमुख कहानीकारों की विवेचना करना अधिक न्याय-सगत होगा।

(३) *प्राचीन काल*—(सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर सन् ६४५ ई० तक) साहित्यिक दृष्टि से यह समय वैदिक संस्कृत, लौकिक सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश का है । भारतवर्ष मे कथा-साहित्य के विकास का यही प्रथम युग है। वास्तव में उपनिषदों की रूपक-कथाओं, महाभारत के उपाख्यानों तथा जातक-कथाओं से ही हमारे इस साहित्य का सूत्रपात होता है । ऋग्वेद, उपनिषद्, महाभारत, पंचतन्त्र, जातक कथाए, गुणाढ्य की बृहत्कथा, सुवन्धु की वासवदत्ता, दण्डी के दशकुमार और बाण-भट्ट की कादम्बरी तथा हर्ष चरित्र में कहानी के तत्त्व देखे जा सकते हैं। ऋग्वेद की स्तुतियों में कहानी के अकुर पाये जाते हैं। वे ही पुराणों में उर्वशी और पुरुरवा आदि आख्यानकों के रूप में पाये जाते हैं । ऋग्वेद में मानव-स्वभाव की विशेषताए और उनके गुण अमानव स्वभाव मे प्रकट किये गए हैं। मानव और अमानव के पारस्परिक सम्बन्ध की झॉकी उपनिषदों और विशेषत. छादोग्य में देखने को मिलती है। शतपथ ब्राह्मण, छादोग्योपनिषद्, कठोपनिषद् और तैत्तिरीयोपनिषद् में महर्षियों के विचार-विमर्श के समय अनेक आख्यानों का प्रसग आता है, जिनमें कहानी के बीज विद्यमान हैं।

महाभारत मे कौरव-पाण्डवों की कथा मुख्य है। पंचतंत्र की कथाओं मे शेर, चूहे, हरिण, भेड़िये आदि की कथाओं को लेकर कौरव-पाण्डवों की कथा की सादृश्यता दिखाई गई है। बाद मे जातक-कथाओं मे आकर कहानी का रूप कुछ-कुछ विकसित होने लगता है। इनमे पशु-पक्षियों को कहानी के पात्रों की तरह लाकर कथाओं मे रोचकता और चमत्कार लाने का प्रयत्न किया गया है। बौद्ध-भिक्षुओं ने इन जातक-कथाओं का प्रचार धर्म के उद्देश्य से सुदूर देशों मे भी किया। ईसप की कहानियाँ (Aesop's Fables), फारस और अरब के ओडासियस और 'सिन्दबाद सेलर'(Sindbad the sailor) आदि विदेशी कहानियों के जातक-कथाओं से मिलने-जुलने का यही कारण है। कहानी-साहित्य मे जातक-कथाओं का विशेष महत्त्व हैं। यद्यपि इन विभिन्न कथाओं में आज की कहानियों के समान कोई विशेषता नहीं है, तथापि ऐतिहासिक और उस समय की प्रवृत्ति की दृष्टि से वे उल्लेखनीय है। गुणाढ्य की बृहत्कथा, सुबन्धु की वासवदत्ता, दण्डी के दशकुमार तथा बाण की कादम्बरी और हर्ष-चरित्र मे भाषा का आडम्बर, अद्भुत शब्द-जाल, विस्तृत वर्णन और अवान्तर कथाओं की भरमार है, लेकिन चरित्र-चित्रण और कथोपककथन का रूप इनमे स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। आख्यायिकाएं प्रथम पुरुष में लिखी गई हैं और उनमे जीवन की नाना स्थितियों का वर्णनात्मक ढंग से प्रतिपादन हुआ है। आगे हमें इन्हीं का विकसित कलात्मक रूप देखने को मिलता है।

शुद्ध आलोचनात्मक दृष्टि से इन प्राचीन संस्कृत-कहानियों को देखने से ज्ञात होगा कि इनका ऐतिहासिक महत्त्व ही अधिक है। इन समस्त कहानियों का उद्देश्य मनोरंजन करना ही नहीं था, क्योंकि इन सबमे तो कहानी के रूप मे जीवन के किसी गम्भीर तत्त्व की आलोचना करके नीति और धर्म की शिक्षा दिलाई गई है। यही उनका एक-मात्र उद्देश्य होता था। लेकिन इतना होते हुए भी राज-सभाओं मे बैठकर कुछ लोग कथाओं के द्वारा मनोरञ्जन करते थे, जैसा कि 'मेघदूत' से स्पष्ट है। राजा उदयन की कथा, विक्रमादित्य की कथा, भर्तृहरि, मुञ्ज और राजा भोज की कथाएं इसी प्रकार की हैं। किन्तु इन मौखिक कथाओं के अतिरिक्त सस्कृत साहित्य मे मनोरञ्जन के लिए लिखी गई कहानियों का बहुत अभाव है। इस दिशा मे तो हम बृहत्कथा, कादम्बरी और दशकुमारचरित का नाम ही अधिक-से-अधिक ले सकते है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक काल की सरल और साधु जनता उपदेशपूर्ण कहानियाँ ही सुना करती थी और ऐसी ही कहानियाँ उस समय मे लिखी जाती थीं। इन

कहानियों मे हमे कल्पना-शक्ति का विचित्र प्रयोग देखने को मिलता है, जिसके द्वारा उस समय के लोगों ने नाना देवी-देवताओं की अवतारणा करके उनके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की कहानियाँ कही हैं। इस प्रकार की कहानियों में आज के वैज्ञानिक तथा बुद्धिवादी युग के किसी पाठक को अस्वाभाविकता तथा अतिरंजना दिखाई देना स्वाभाविक ही है।

(४) *माध्यमिक काल* (पूर्वार्द्ध):—(सन् ६४५ से सन् १५७२ ई० तक) साहित्यिक दृष्टि से यह समय राजस्थानी और ब्रजभाषा से लगाकर हिन्दी-खड़ी बोली गद्य की सर्वप्रथम रचना गंग कवि कृत 'चद छंद वरनन की महिमा' (सन् १५७२ ई०) तक है। सन् ६४५ ई० से सन् १३४५ ई० तक साहित्यिक क्रियाशीलता का केन्द्र राजस्थान ही था और साहित्य मे राजस्थानी भाषा की प्रधानता थी, किन्तु उसके अनन्तर ब्रजभाषा ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस काल के साहित्य पर विहंगम दृष्टि डालने से विदित हो जायगा कि गद्य अपनी लडखड़ाती हुई अवस्था मे चल रहा था। राजनीतिक दृष्टि से, भारतवर्ष अलग-अलग राज्यों मे बंटा हुआ था। इन राज्यों के अधिपति क्षत्रिय-नरेशों ने अपनी कीर्ति का स्तुति-पाठ कराने तथा उसे देश-देशान्तरों तक पहुँचाने के लिए अपने राज्य-दरबार में अनेक कवियों को आश्रय दिया था। इन कवियों ने क्षत्रिय-नरेशों के वक्षःस्थल मे शौर्य, पराक्रम और प्रताप का एक अनन्त सिन्धु लहराता हुआ देखा, जिसकी चपल-तरंगों मे वे थोड़े समय के लिए इतने विस्मय-विमुग्ध हो गए कि सब-कुछ भूलकर केवल उन्हीं लोगों का ओजस्विनी डिंगल भाषा मे कीर्तन करने लग गए। ऐसी दशा मे सम्भव है उन्होंने कुछ झूठी प्रशंसा भी अपने काव्य में कर दी हो, किन्तु इस सत्य से भी मुँह नहीं मोड़ा जा सकता कि उन राज्याश्रित कवियों ने अपनी वीरोल्लासमयी रचनाओं के द्वारा जहाँ अपने जीविकोपार्जन का प्रश्न हल किया है, वहाँ साथ-ही-साथ साहित्य में एक सुन्दर वीर-काव्य की भी सृष्टि की है। इस काल में युद्धों की अधिकता के कारण इसी प्रकार के काव्य की प्रचुरता है, इसीलिए पद्य के एकाधिपत्य के कारण गद्य का प्रस्फुटन अधिक नहीं हो पाया। ऐसी अवस्था में कहानी का कलात्मक विकास नहीं के बराबर हुआ है। इन विभिन्न गतिविधियों के रहते हुए भी राजस्थानी-साहित्य की लोक-प्रिय गद्य-रचनाओं के अन्तर्गत कथा-साहित्य की वह सुनहरी जंजीर नहीं टूटने पाई, जो हमें वैदिक काल से ही देखने को मिलती है। सामान्य बोल-चाल की भाषा मे यह लोक-साहित्य वीर-साहित्य-रचनाओं की भाँति मौखिक

रूप मे ही था। ऐसी कहानियों को राजस्थान मे 'ख्यातें' और 'वातें' कहते हैं। इनमे धार्मिक, नैतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक आदि अनेक विषयों का उद्घाटन चलती हुई भाषा मे बड़ी रोचकतापूर्वक किया गया है। आज भी ये कहानियाँ हमारा ध्यान आकर्षित कर लेती हैं। खेद का विषय है कि अभी तक हमारे कथा-साहित्य का बहुत बड़ा भाग राजस्थान मे अन्धकार मे पड़ा हुआ है। यदि खोज की जाय तो अब भी बहुत-से अप्राप्य ग्रंथो का पता लगाया जा सकता है। राजस्थान, मध्यप्रान्त, मध्यभारत, बिहार, पजाब आदि प्रान्तो मे जब तक इन प्राचीन ग्रंथों का पता नहीं लगाया जाता, तब तक कहानी-साहित्य का सम्पूर्ण एवं यथार्थ इतिहास प्रस्तुत करने मे हम पूर्णतया सफल नहीं हो सकते। इधर एक-दो वर्ष से हमारे विश्वविद्यालय के कुछ विद्यार्थी-अन्वेषक इस दिशा में बड़ी तेजी और तत्परता से जुटे हुए है। आशा है उनकी दृष्टि इस ओर अवश्य जायगी। इतना तो प्राप्य सामग्री के आधार पर कहा ही जा सकता है कि यह लोक-साहित्य बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है।

प्राचीन काल की तरह इस समय भी अनेक दन्त-कथाएं जनता मे प्रचलित हैं। तत्कालीन लोक-रुचि इस समय की कहानियों मे भी देखी जा सकती है। आल्हा-ऊदल, पृथ्वीराज तथा अन्य शूरवीरों को लेकर आश्रयदाता कवियों ने पद्य के साथ-ही-साथ गद्य के अन्तर्गत अनेक सुन्दर कहानियों की सृष्टि करके क्षत्रियत्व के चिर-प्रतिष्ठित स्थायी गुणों को बनाये रखने तथा उनकी वृद्धि के लिए भरसक प्रयत्न किया है। इन कहानियों का प्रमुख उद्देश्य राजा-महाराजाओं की प्रशंसा करना तथा उपदेश देना ही है। इनमे प्रख्यात नरेशों की वीरता, प्रेम, न्याय, विद्या और वैराग्य आदि गुणों का आवश्यकता से अधिक वर्णन किया गया है।

धन-धान्य से सम्पन्न भारतवर्ष को लूटने तथा अपनी सल्तनत कायम करने की नीयत से यद्यपि मध्य काल (पूर्वार्द्ध) मे मुसलमानी शासकों के आक्रमण बीच बीच मे होते रहे, किन्तु शूरवीर क्षत्रिय-नरेशों के आगे उनकी एक न चली। लेकिन आगे चलकर क्षत्रिय-जाति ज्यों-ज्यों पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, ऐंठ, आलस्य और विलासिता की ओर प्रवृत्त हुई, त्यों-त्यों एक ओर तो लड़ने का प्रकृत उत्साह मंद होने लगा तथा दूसरी ओर विदेशी राज्य के चिह्न स्पष्टतया दिखाई देने लग गए। ऐसी विषम परिस्थिति मे स्वतन्त्रता का सदैव के लिए चला जाना निश्चित ही था। सन् १३४५ ई० के समय मे भारतवर्ष मे मुसलमानी साम्राज्य की पूर्ण रूप से स्थापना हो गई और क्षत्रिय-वंश अपनी

चिर-संचित कीर्ति को खो बैठा।

देश में मुसलमानी साम्राज्य की स्थापना हो जाने के साथ-साथ पद्य-साहित्य में भक्ति-युग की लहर आई और इसी प्रकार कथा-साहित्य के ऊपर भी उसका प्रभाव पड़ा, बल्कि यों कहना चाहिए कि यह प्रभाव अच्छे रूप में ही पड़ा। मुसलमान भारत में एक नवीन सभ्यता और संस्कृति लाये थे और साथ-ही-साथ अपने देश के किस्से-कहानी भी लाये थे। इधर भारत मे कथा-साहित्य की प्राचीन परम्परा विद्यमान थी ही। ज्यों-ज्यों मुसलमान देहातों मे बसते गए त्यों-त्यों दोनों सभ्यताओं और संस्कृतियों का आदान-प्रदान चलता रहा, जिसके परिणाम स्वरूप एक नवीन संस्कृति का अभ्युदय हुआ। जैसा कि कहा जा चुका है कथा-साहित्य जनता की वस्तु है, इसलिए मुसलमानों के आने का इस क्षेत्र पर अभूतपूर्व प्रभाव पडा। अरब के मुसलमान अपने साथ में सहस्र-रजनी चरित्र (Arabian Nights) और फारस के मुसलमान लैला-मजनूँ तथा शीरीं-फ़रहाद-जैसी प्रेमपूर्ण कथाए लाये थे। भारतीय जनता तो उपनिषदों की रूपक-कथाओं, महाभारत के उपाख्यानों तथा जातक-कथाओं से ही मन-बहलाव कर लेती थी, परन्तु जब मुसलमानों के द्वारा उन्होंने अपने पडोसी देशों की कहानियों को सुना तो उन्हें बड़ा मज़ा आया। मुसलमानों की इन कहानियों में उन्हे एक विशेष रस दिखाई दिया। इस प्रकार धीरे-धीरे उनकी रुचि बदलती गई और कहानी की परम्परा में भी परिवर्तन उपस्थित होता गया।

अब हमें यह देखना चाहिए कि मुसलमानी कहानियों का प्रभाव भारतीय कहानियों पर किस रूप मे पड़ा और उसमें कौन-कौन-सी विशेषताएं आ गईं। यह तो बतलाया जा चुका है कि मुसलमानों के आने के पूर्व ही भारतवासी आलसी और विलासी हो गए थे। इधर जब से मुसलमान आए तब से यह प्रवृत्ति और जोर पकड़ने लगी। मुसलमान स्वय विलासी थे और लैला-मजनूँ तथा शीरीं-फरहाद-जैसी कहानियों को दिलचस्पी के साथ सुना करते थे। उनके देश में ऐसी प्रेमपूर्ण कहानियों की प्रधानता थी। वैसे तो भारत में भी प्रेम-पूर्ण कहानियों का अभाव नहीं था, लेकिन उनमे वह विलासी रूप नहीं था जो मुसलमानों की कहानियों मे है। भारत का प्रेम सदैव आदर्शोन्मुख रहा है और मुसलमानों का विलासोन्मुख, इसीलिए एक में प्रेम का विशुद्ध रूप देखने को मिलता है और दूसरे में अश्लील रूप। इस प्रकार दोनों जातियों के लोगों ने जब विचारों का आदान-प्रदान किया, तो उससे प्रेम की एक ऐसी

नई धारा फूट निकली, जिसमें विशुद्ध और अश्लील दोनों प्रकार का प्रेम होता था। आरम्भ में तो लोगों का ध्यान विशुद्ध प्रेम की ओर ही अधिक रहा, लेकिन ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों उसमें लौकिक विषय-भोग-जन्य अश्लील प्रेम को भी स्थान मिलने लगा। यह तब हुआ जब कि हिन्दू-जाति पर विलासिता का पूर्ण रंग चढ़ चुका था। प्रेम की इस प्रधानता के अतिरिक्त मुसलमानों के द्वारा हास्य और विनोद की प्रवृत्ति भी कथा-साहित्य में आई। यदि दुखी भारत को हँसना नसीब हुआ तो वह मुसलमानों के कारण ही, क्योंकि मुसलमानों के सम्बन्ध में यह बात प्रसिद्ध है कि वे स्वभाव से ही बड़े मजाकी और विनोदी होते हैं। इन विदेशी लोगों से प्रभावित होकर ही भारतीय कथा-साहित्य में एक दूसरे ढंग के अतिप्राकृत प्रसंगों (Supernatural elements) की अवतारणा होने लगी, जिनमें देवी-देवताओं की चर्चा न होकर कथा को विशेष दिलचस्प बनाने के लिए ही इन प्रसंगों को लाया जाता था। पहले नीति और धर्म की शिक्षा के सम्बन्ध में देवी-देवताओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ाया जाता था, लेकिन अब साधारण किस्से-कहानी में बिना उस धार्मिक भावना के केवल-मात्र चमत्कार तथा आकर्षण उत्पन्न करने के लिए इनका समावेश होने लगा। और अन्त में, मुसलमानों के द्वारा भारतीय कथा-साहित्य की शैली पर भी कुछ प्रभाव पड़ा, जिससे उसमें एक विशेष प्रकार का लोच आने लगा। किस्से-कहानियों को इस चलती शैली ने विशेष लोकप्रिय बना दिया। इन्हीं समस्त विचार-धाराओं का प्रभाव हमारे भारतीय कथा-साहित्य पर पड़ा है। इसलिए उस समय में जो कहानियाँ हिन्दू तथा मुसलमान-लेखकों के द्वारा लिखी गईं, उनमें प्रमुख रूप से ये समस्त विशेषताएं आ गई हैं। जिन मुसलमान-लेखकों के द्वारा हिन्दी-साहित्य की सेवा हुई, उनमें कुतुबन, मंझन और जायसी के नाम चिर-स्मरणीय हैं। उन्होंने अपने-अपने काव्यों में दोनों जातियों की संस्कृतियों का समन्वयात्मक रूप प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए जायसी-कृत 'पदमावत' में रतनसेन और पदमावती के लौकिक प्रेम के साथ-ही-साथ आध्यात्मिक संकेत भी मिलता जाता है। कुतुबन-कृत 'मृगावती' और मंझन-कृत 'मधु-मालती' के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। हास्य और विनोद तथा अतिप्राकृत प्रसंगों से तो ये प्रेमाख्यानक भरे पड़े हैं। इतना होते हुए भी हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि उन्होंने सर्वत्र भारतीय वातावरण के अनुरूप केवल पारलौकिक और विशुद्ध प्रेम को ही अपनाया है। कहीं-कहीं वे अपनी आदत के अनुसार और

अपने देश के अनुरूप वासना-जन्य अश्लील प्रेम से भी नहीं बच पाए हैं। जिस वासना-जनित भोग और अश्लील प्रेम की कहानियाँ हमें इस समय देखने को मिलती हैं, उनमें से कुछ ये हैं—छबीली भटियारिन, तोता-मैना, गुलबकावली, सारंगा सदावृक्ष, किस्सा साढे तीन यार आदि । हास्य और विनोद की परम्परा का एक सुन्दर रूप उन कहानियों में देखने को मिलता है, जो जनता के बीच अकबर और बीरबल की कहानियों के नाम से प्रचलित है। सक्षेप में, सन् १५७२ ई० तक, अर्थात् गंग कवि की गद्य-रचना 'चंद-छंद बरनन की महिमा' तक हमें कहानी का यही रूप देखने को मिलता है।

(५) माध्यमिक काल (उत्तरार्द्ध) (सन् १५७२ ई० से सन् १६०० ई० तक)—कहानी-साहित्य के यात्रा-पथ पर जब हम और आगे बढ़ते हैं, तो हमें विगत काल की तरह हिन्दू और मुसलमान इन दोनों जातियों की संस्कृतियों से ओत-प्रोत रचनाएं दिखाई देती हैं। साहित्यिक दृष्टि से इस काल की विशेषता यही है कि खड़ी बोली को विशेष प्रोत्साहन मिलने लगा और गद्य में भी रचनाएं होने लगीं। हिन्दू-सस्कृति का प्रतिपादन करने वाली कहानियों मे अधिकाश भक्त कवियों के द्वारा लिखी गई है, जिनमे गोकुलनाथ का नाम सगर्व लिया जा सकता है। भारतीय नभोमण्डल मे खड़ी बोली की कहानियों का सूत्रपात इनके समय से ही होता है । उनके द्वारा लिखी गई 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में (सन् १५७२ ई०) वैष्णव धर्म के महत्त्व पर ही अधिक ज़ोर दिया गया है। इस कथा का रूप जीवन-चरित्र के समान लगता है, कहानी की और कोई विशेषता हमें लक्षित नहीं होती । कहानी-साहित्य की इसी परम्परा मे जटमल रचित 'गोरा बादल की कथा,' (सन् १६४३ ई०), लल्लूलाल कृत 'प्रेम सागर' (सन् १८०३ ई०), सदल मिश्र-कृत 'नासिकेतोपाख्यान' (सन् १८०३ ई०) और इशाअल्ला खॉ की 'रानी केतकी की कहानी' का नाम गिनाया जाता है । गिनाने के लिए तो ठीक है, लेकिन कहानी के कुछ आदर्शों की यथार्थ पूर्ति तो केवल एक लेखक इशाअल्ला खॉ की 'रानी केतकी की कहानी' (सन् १७६८-१८०३ ई० के बीच) से ही होती है । शेष कथाएं महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। जटमल, लल्लूलाल और सदल मिश्र की कथाए ऐतिहासिक या धार्मिक हैं। जटमल-रचित 'गोरा बादल की कथा' अभी तक विद्वानों के बीच विवाद का विषय बनी हुई है । जटमल की कथा पहले पद्य मे थी, आगे चलकर इसी काल मे इसका गद्य मे अनुवाद हुआ । इसलिए अन्धानुकरण करते हुए हम इसे कहानी के अन्तर्गत कैसे मान ले, यह एक विचारने की बात है। फिर यह

जटमल द्वारा लिखी गई अथवा और किसी दूसरे के द्वारा। इस बात का भी निर्णय नहीं हो पाया है। इसी प्रकार लल्लूलाल और सदल मिश्र की कथाओं को भी कहानी-साहित्य के अन्तर्गत मान लेना समीचीन नही प्रतीत होता। बात वास्तव मे यह है कि ये दोनों अध्यापक फोर्ट विलियम कॉलेज के अन्दर अंग्रेज अफसर गिल क्राइस्ट की अध्यक्षता मे कार्य कर रहे थे। मुसलमानों के बाद जब भारतवर्ष में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना होने लगी तो स्थायी राज्य की स्थापना के लिए उन्हे भारतवासियों के रीति-रिवाज तथा उनकी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य हो गया था। इसी उद्देश्य को लेकर फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई थी और इसी प्रयोजन के लिए इन दोनों भारतीय अध्यापकों को यहाँ लगाया गया था। लल्लूलाल ने भागवत के दशम स्कंध की कथा को लेकर 'प्रेमसागर' लिखा था, जिसका मुख्य आधार चतुर्भुजदास कृत दशम स्कंध का पद्यानुवाद था, जो पहले ब्रजभाषा मे लिखा गया था। इसी प्रकार अंग्रेजों की पक्षपातपूर्ण नीति के अनुरूप सदल मिश्र की 'चन्द्रावती अथवा नासिकेतोपाख्यान' नामक रचना है, जो केवल भाषा का स्वरूप स्थिर करने के लिए लिखी गई थी। ये स्वतंत्र रूप से लिखी जाने वाली कहानियाँ नहीं हैं, संस्कृत के रूपान्तर-मात्र हैं, केवल भाषा के प्रयोग के लिए इनका महत्त्व है। हमारी तुच्छ सम्मति मे इसके परे और कुछ भी नहीं।

हाँ, सैयद इंशाअल्ला खॉ की 'उदयभान चरित' या 'रानी केतकी की कहानी' अलबत्ता कहानी की कोटि में आ सकती है, जिसे हिन्दी-साहित्य के बहुत-से विद्वानों ने भी प्रथम कहानी माना है। इंशाअल्ला खॉ फोर्ट विलियम कॉलेज के बाहर स्वतन्त्र रूप से कार्य कर रहे थे, इसलिए उन्हें किसी दूसरे की नीति के अनुसार नहीं चलना पड़ा। 'रानी केतकी की कहानी' मे ध्यानपूर्वक देखने से विदित होगा कि उसमे कहानी-कला की एक विकसित परम्परा के दर्शन होते हैं। इसे हम मुस्लिम संस्कृति से प्रभावित अंतिम कहानी कह सकते हैं। मुसलमानी प्रेमाख्यानकों की तरह इसमें प्रेम का वही स्वरूप देखने को मिलता है। अस्वाभाविक और अतिमानुषिक प्रसंगों से तो सारी कहानी ही भरी पड़ी है और अन्त मे, इसकी भाषा-शैली तो हास्य-विनोद की फुलझड़ियाँ छोड़ती हुई चलती है। आधुनिक कहानी के आकार-प्रकार की दृष्टि से कहानी का मूल्यांकन न कीजिये, देखिये उसकी भाषा-शैली। वह कथा-साहित्य के लिए कितनी उपयुक्त बन पड़ी है। खॉ साहब मौजी आदमी थे, किस्से-कहानियाँ मनोविनोद के लिए ही लिखा-पढ़ा करते थे, इसीलिए उनकी

भाषा मे इतनी चपलता और रोचकता है। मुहावरों और लोकोक्तियों ने तो उसमें चार चाँद लगा दिए हैं। मैं व्यक्तिगत रूप से और सब बातों को छोड़कर भाषा और शैली की दृष्टि से इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की सर्व प्रथम कहानी मानने के पक्ष मे हूँ। अन्य बातों को अभी से यहाँ ढूँढ़ना वृथा है।

इसी काल के अन्तर्गत राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की 'राजा भोज का सपना' और भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र की 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' नामक कहानियाँ आती हैं। 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' को 'राजा भोज का सपना' से कहानी मानना अधिक न्यायसंगत है, क्योंकि 'राजा भोज का सपना' केवल धार्मिक उपदेश का रूपान्तर-मात्र है। 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' किसी सीमा तक कहानी की सीमा मे घसीटी जा सकती है, क्योंकि इसमे भारतेंदु जी ने हास्य रस के द्वारा पाठकों के हृदय को गुदगुदाने का प्रयत्न किया है। आगे की कहानियों में हास्य-रस के आयोजन के लिए यह एक अच्छा उदाहरण है।

आधुनिक कहानियों के रूप और शैली को देखते हुए अब तक की समस्त कहानियाँ 'प्राचीन कहानियाँ' और आगे की कहानियाँ 'आधुनिक कहानियाँ' के नाम से पुकारी जा सकती हैं। जहाँ तक उद्देश्य का सम्बन्ध है, प्राचीन कहानियाँ उपदेश-प्रधान और मध्यकाल की कहानियाँ मनोरंजन-प्रधान अधिक है। भारतेंदु-युग (सन् १८५०-१९०० ई०) के समय अंग्रेजी राज्य की पूर्ण रूप से स्थापना हो जाने के पश्चात् हम प्रथम बार पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के सम्पर्क में आये। भारतेंदु-युग न तो प्राचीन का मोह छोड़ सका और न उसने आधुनिकता को ही गले लगाया। इसीलिए न तो वह पुराना है और न नया। ऐसी दशा में आधुनिक कहानी का, जो पाश्चात्य साहित्य की देन है, जन्म नहीं हो सका। जनता मनोरजन और साहित्यिकता प्रदान करने वाली कहानियों की प्रतीक्षा करने लग गई थी, जिसकी पूर्ति आगे चलकर द्विवेदी-युग में हुई, क्योंकि उस समय हमने पाश्चात्य और भारतीय संस्कृतियों का सामञ्जस्य करना सीख लिया था।

(६) *आधुनिक काल* (सन १९०० ई० से आज तक) (क). *प्रथम उत्थान* (सन् १९००–१९२५)—आधुनिक काल आधुनिक कहानियों (Short stories) के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है। आधुनिकता की वायु मे पली कहानियों का सूत्रपात, जिसमे कल्पना-शक्ति के सहारे कम-से-कम पात्रों और घटनाओं की सहायता से कथानक, चरित्र, वातावरण, प्रभाव आदि की सृष्टि हुई, हिंदी

के मासिक और साप्ताहिक पत्रों के द्वारा द्विवेदी-युग (सन् १६००–१६२५ ई०) मे ही हो सका। इस युग तक आते-आते हमने अंग्रेजी संस्कृति से सामञ्जस्य स्थापित कर लिया था, जिसके परिणाम-स्वरूप कला की गोद से एक नवीन बालक का जन्म हुआ। आधुनिक कहानी वैज्ञानिक और आलोचनात्मक युग की ही देन है, इसमें कोई सन्देह नहीं। यांत्रिक युग के कारण जीवन में कार्य-व्यस्तता एवं जटिलता की अभूतपूर्व वृद्धि के लिए यह नितान्त आवश्यक हो गया था। इसलिए आकार-प्रकार मे अन्तर होते हुए भी आधुनिक कहानी प्राचीन कहानी का एक विकसित कलात्मक रूप ही समझना चाहिए। फिर इसके रूप तथा शैली के लिए हमे पाश्चात्य कहानियों का आभार मानना ही पड़ेगा, क्योंकि वहाँ ऐसी कहानियों का आरम्भ सन् १८५० ई० के पूर्व ही हो गया था। भारतेन्दु-युग के लेखक भाषा-सम्बन्धी तथा विदेशी संस्कृति-सम्बन्धी झञ्झटों मे उलझे हुए थे। इनके दूर होते ही द्विवेदी-युग के लेखकों ने अपना ध्यान इस ओर आकर्षित किया। इस प्रकार संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि आधुनिक कलापूर्ण कहानियों का विकास केवल ३५–४० वर्ष पुराना ही है, यद्यपि इसका सम्बन्ध-सूत्र अत्यन्त प्राचीन है। अस्तु,

हिन्दी-साहित्य मे आधुनिक कहानियाँ सन् १६०० ई० से लिखी जाने लगीं और इसका एक-मात्र श्रेय 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' नामक पत्र-पत्रिकाओं को है। अतः हम कह सकते हैं कि सन् १६०० ई० मे 'सरस्वती' रूपी वीणा के बजने पर ही आधुनिक कहानी रूपी झन्कार सुनाई दी। मौलिक कहानियों के इस आदि-काल मे सर्व प्रथम अनुवादों की ही धूम रही। सन् १६००–१६१० ई० तक एक प्रकार से प्रयोगात्मक युग ही रहा, जिसमें लेखक माँ सरस्वती के मंदिर में कहानी के भिन्न-भिन्न प्रस्ताव भेजने मे लगे हुए थे और उसमें से कौन-सा पास होगा, इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। विश्व-विख्यात नाटक-कार शेक्सपियर के नाटक 'सिम्बलीन' (Cymbeline), 'एथेन्सवासी टाइमन' (Teimon of Athens), 'पैरिक्लीज' (Pericles), 'कौतुकमय मिलन' (Comedy of errors) आदि के अनुवाद सन् १६०० ई० से 'सरस्वती' मे कहानी-रूप में प्रस्तुत किये जाने लगे। साथ ही संस्कृत-नाटकों का भी कहानी-रूप मे अनुवाद किया गया, जिनमे 'रत्नावली', 'मालविकाग्निमित्र', 'कादम्बरी' आदि के नाम उल्लेखनीय है। इसी वर्ष किशोरीलाल गोस्वामी की हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी 'इन्दुमती' सरस्वती मे प्रकाशित हुई, लेकिन इस पर शेक्स-पियर के 'टेम्पेस्ट' (Tempest) की छाप होने के कारण हम इसे मौलिक नहीं

कह सकते, क्योंकि इसमे ही केवल भारतीय वातावरण उपस्थित किया गया है, अन्य बातें प्राय मिलती-जुलती हैं। इसे प्रथम कहानी मानने से अभिप्राय यह है कि इसमें पात्र के जीवन की एक विशेष घटना की नाटकीय अभिव्यंजना की गई है । सभी तत्त्व तो एक कहानी में मिल नहीं सकते, इसलिए अपनी-अपनी रुचि के अनुसार जिस-जिस कहानी मे सबसे पहले अपना तत्त्व दिखलाई दिया, वही उसके लिए प्रथम कहानी बन गई। गोस्वामी जी के अनन्तर जम्बु की 'न्याय' (१६०६), विद्यानाथ शर्मा की 'विद्या-बहार' (१६०६) और मैथिलीशरण गुप्त की 'निन्यानवे का फेर' (१६१०) आदि कहानियॉ 'सरस्वती' में प्रकाशित हुईं, लेकिन इन समस्त कहानियों मे उपदेश की मात्रा अधिक है, टेकनीक की कम । फिर ये प्राचीन हितोपदेश तथा ईसप की कहानियों से मिलती-जुलती हैं, इसलिए वह आनन्द प्राप्त नहीं होता। उधर 'सुदर्शन' पत्र में भी इन दस वर्षों के भीतर कोई विशेष कार्य नहीं हुआ, इसी प्रकार की कहानियाँ रहीं। उसमें माधवप्रसाद मिश्र के द्वारा जो कहानियॉ लिखीं गई थीं, वे प्राचीन आख्यायिकाओं की शैली पर हैं । इस प्रकार ये समस्त लेखक अनूदित, रूपान्तरित और मौलिक कहानियों के द्वारा अपना-अपना मार्ग ढूँढने मे लगे हुए थे। विदेशी कहानियों का रूपान्तर दूसरी ओर गिरजाकुमार घोप (पार्वती-नन्दन), श्रीमती वंग महिला, स्वामी सत्यदेव, उदयनारायण वाजपेयी, विश्वम्भरनाथ जिज्जा आदि के द्वारा प्रस्तुत किया गया। वृन्दावनलाल वर्मा ने 'राखीबंद भाई' (१६०६) और मैथिलीशरण गुप्त ने 'नकली किला' (१६०६) नामक कहानियॉ लिखीं, परन्तु उनमें कोई नवीनता नहीं थी, क्योंकि वे प्रेमाख्यानक अंग्रेजी कथाओं के आधार पर लिखी गई हैं। सन् १६००–१० ई० की उल्लेखनीय कहानी केवल बग महिला की 'दुलाई वाली' (सरस्वती १६०७) है, जिसे बहुत-से लोग हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी मानते हैं। इस कहानी को सर्व प्रथम कहानी मानने से यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि इसमें जीवन की एक तुच्छ घटना को लेकर यथार्थवादी चित्रण उपस्थित किया गया है, जिससे कहानी मे प्रभावोत्पादकता आ गई है। इसके अनन्तर हिंदी-साहित्याकाश में 'इन्दु' का उदय हुआ, जिसमें जयशंकर 'प्रसाद' की प्रथम कहानी 'ग्राम'(१६११) और गगाप्रसाद श्रीवास्तव की प्रथम कहानी 'पिकनिक' हास्य-रस प्रधान प्रकाशित हुई । चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की प्रथम कहानी 'सुखमय जीवन' (१६११) 'भारत-मित्र' में अलग प्रकाशित हुई । इस प्रकार 'दुलाई वाली' के बाद सौभाग्य से हमे ये तीन लेखक मिल गए, जो अधिक महत्त्वपूर्ण है। सन्

१६१२ ई० मे प्रसाद की 'रसिया बालम' ने कल्पना-शक्ति के द्वारा प्राचीन प्रेमाख्यानक आख्यायिकाओं को लेकर एक आदर्शवादी चित्र उपस्थित करना आरम्भ किया। फिर तो मौलिक कहानियों का आरम्भ बड़ी तेजी से होने लगा। कुछ दिनों तक दैवी घटनाओं और संयोगों के आधार पर कहानियाँ लिखी जाती रहीं, जैसे ज्वालादत्त शर्मा की 'विधवा' तथा 'तस्कर' और विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'रक्षा-बन्धन' आदि। लेकिन आगे चलकर सन् १६१६ ई० मे प्रेमचन्द जी की सर्व प्रथम कहानी 'पंच-परमेश्वर' के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से यह धारा मन्द पड़ गई। प्रेमचन्द जी की 'आत्माराम' कहानी भी मनोवैज्ञानिक विशेषताओं से पूर्ण है। उसमे 'महादेव' की मानसिक अवस्थाओं का सुन्दर चित्रण किया गया है। हिन्दी-कहानियों के इस आरम्भ मे सुदर्शन जी का भी बहुत बड़ा हाथ रहा। उन्होंने 'कमल की बेटी' की सृष्टि करके सुन्दर कलात्मक कहानियों की नींव डाली, जिनमे जीवन के किसी सत्य की व्यंजना पुराणों और रूपक-कथाओं को लेकर की जाती थी। 'संसार की सबसे बड़ी कहानी' भी इस दृष्टि से एक सबल रचना है। इस प्रकार हम देखेंगे कि द्विवेदी-युग के इन आरम्भिक वर्षों में तरह-तरह की कहानियाँ लिखी गईं। उस समय साहित्य और जीवन दोनों पर पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका था। इधर यांत्रिक युग मे मनुष्यों के दैनिक जीवन मे कर्म-व्यस्तता और जटिलता की जो अभिवृद्धि हुई, उसी के परिणाम-स्वरूप ऐसी कहानियों का सूत्रपात हुआ। मानव-जीवन मशीनों की तरह इधर-उधर भागने लग गया था, इसलिए ऐसी कहानियों का लिखा जाना एक प्रकार से स्वाभाविक ही था, जिनके पढ़ने में कम-से-कम समय लगता था, मनोरंजन भी हो जाता था, और साथ ही मस्तिष्क तथा हृदय को एक प्रकार की सान्त्वना भी मिल जाती थी। हिन्दी-पाठकों की इस माँग को द्विवेदी-युग के इन लेखकों ने पूरा करके कहानी को एक पृथक् रूप दिया।

जहाँ तक कहानी के रूप और शैली का सम्बन्ध है, इन कहानियों ने प्राचीन कहानियों की काया ही पलट दी। यह सच है हिन्दी-साहित्य की इन आरम्भिक कहानियों में दैवी-घटनाओं और संयोगों का ही अधिक आश्रय लिया गया है, परन्तु धीरे-धीरे इनमे मानव-जीवन से सम्बन्धित अनेक भाव का भी समावेश होने लगा। इस नवीन अनुसंधान से कहानियों को एक विशेष गति मिली। इसी प्रकार विशेष परिस्थितियों के अंतर्गत जब पात्रों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण होने लगा तो उसके द्वारा भी इन कहानियों

में एक विशेष सौंदर्य आ गया। वह दिन भी दूर नहीं रहा जब प्रभावशाली वातावरण की सृष्टि करके कहानीकार अपनी मुख्य भावना को ही केन्द्र-बिन्दु बनाकर अपनी समूची शक्ति उसी पर लगाने लग गया था। कहने का अभिप्राय यह है कि इन कहानियों के आरम्भ हो जाने के बाद उनका विकास बड़ी द्रुत गति से होने लगा। प्राय: सभी प्रकार की कहानियाँ लिखी जाने लगीं और उनमें नई-नई शैलियों का जन्म होने लगा। इस प्रकार द्विवेदी-युग के अंत तक आते-आते तो आधुनिक कहानियों ने पर्याप्त उन्नति कर ली और प्रत्येक लेखक ने अनेक कहानियाँ लिख डालीं। जिन प्रमुख कहानीकारों के द्वारा यह कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न किया गया, उनमें सर्व श्रीचतुरसेन शास्त्री, प्रेमचन्द, गुलेरी, प्रसाद, विश्वम्भरनाथ जिज्जा, कौशिक, राधिकारमणप्रसादसिंह, चण्डीप्रसाद हृदयेश, सुदर्शन, गोविंदवल्लभ पन्त, ज्वालादत्त शर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, गोपालराम गहमरी, गंगाप्रसाद श्रीवास्तव, वृन्दावनलाल वर्मा, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', रायकृष्णदास आदि के नाम सगर्व लिये जा सकते हैं। इन सबके द्वारा विशेष-विशेष प्रकार की कहानियाँ लिखी गईं, जो कला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। इन में से प्रमुख-प्रमुख कहानीकारों का सामान्य साहित्यिक परिचय आगे दिया जायगा, क्योंकि इनकी कहानी-कला जितनी विकास मे अपना उज्ज्वल रूप लेकर आई है, उतनी आरम्भ मे नहीं।

(ख) *द्वितीय उत्थान* (सन् १९२५-'३७)—द्विवेदी-युग मे कहानी के कला-रूप और उसकी विभिन्न शैलियों का जन्म हो चुका था, प्रसाद-युग (सन् १९२५-१९३७ ई०) में आकर कहानी-साहित्य का विकास बड़े वेग से होने लगा। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस युग में कहानी-साहित्य ने एक क्रांति उत्पन्न कर दी। विगत युगों की अपेक्षा इसमे कहानी-साहित्य का इतना विकास हुआ कि धीरे-धीरे एक से एक सुन्दर कहानियों का पहाड़ लग गया। द्विवेदी-युग तो इसकी समानता में एक छोटी शिला की तरह दिखाई देता है। कहने का अभिप्राय यह है कि आधुनिक कहानियों की दृष्टि से यह युग विशेष महत्त्व का है। इस प्रकार मौलिक और उच्चकोटि की कलापूर्ण कहानियों की दृष्टि से यह युग 'स्वर्ण-युग' के नाम से अभिहित किया जा सकता है।

प्रेमचंद—सर्व प्रथम हमारे दृष्टि-पथ पर मुन्शी प्रेमचन्द आते हैं। हिन्दी-संसार में आपकी कहानियाँ जितनी लोकप्रिय हुई हैं, उतनी और किसी लेखक की नहीं। उर्दू से हिन्दी मे आकर उन्होंने हिन्दी-कहानी-साहित्य को लगभग

तीन-सौ कहानियाँ दी हैं, जिनके अनेकों संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इन संग्रहों के मुख्य-मुख्य नाम ये हैं—'सप्त-सरोज', 'नव-निधि', 'प्रेम-पचीसी', 'प्रेम-पूर्णिमा', 'प्रेम-द्वादशी', 'प्रेम-तीर्थ', 'प्रेम-पीयूष', 'प्रेम-कुञ्ज', 'प्रेम-चतुर्थी', 'पंच-प्रसून', 'सप्त-सुमन', 'कफन', 'प्रेम-प्रतिमा', 'प्रेरणा', 'प्रेम-प्रमोद', 'प्रेम-सरोवर', 'कुत्ते की कहानी', 'जंगल की कहानी', 'अग्नि-समाधि', 'प्रेम-पंचमी', और 'प्रेम-गंगा'। सरस्वती प्रेस बनारस ने इन समस्त कहानियों को 'मान-सरोवर' के ६ भागों मे विभाजित करके समेटने का अच्छा प्रयत्न किया है। प्रेमचन्द की इन कहानियों की संख्या इतनी अधिक है कि शैली और भाव की दृष्टि से उनका वर्गीकरण करना एक दुस्तर कार्य है। उन्होंने प्रायः सभी प्रकार की कहानियाँ लिखी हैं और लिखने की प्रायः सभी पद्धतियों को ग्रहण किया है। अतः किसी विशेष कहानी को ध्यान में न रखते हुए हम उनकी समष्टिवत् विवेचना करने का प्रयत्न करेंगे। उनके ये गुण-दोष किसी भी कहानी पर आरोपित किये जा सकते हैं। अस्तु,

समग्रतः (as a whole) विचार करने पर ज्ञात होगा कि उनकी कहानियाँ कहानी-कला की विशेषताओं से अलंकृत हैं। प्रेमचन्द इतना विपुल कहानी-साहित्य कदापि नहीं लिख पाते, यदि उनके पीछे कोई प्रबल प्रेरणा नहीं होती। प्रतिभा, अद्भुत चातुर्य, कहानी-लेखन-कला की दक्षता आदि के होते हुए भी यदि उन पर बाह्य एवं आन्तरिक प्रभाव न पड़ते तो इन कला-पूर्ण कहानियों की सृष्टि नहीं हो सकती थी। प्रेमचन्द की जीवनी स्वयं ही एक कहानी है और तत्कालीन गतिविधियाँ उसकी प्रमुख घटनाएं। जिन-जिन विचार-धाराओं का उनकी कहानियों पर प्रभाव पड़ा है, उनमे से मुख्य-मुख्य ये हैं—आर्य समाज के सुधारों का प्रभाव, गाँधी जी के सत्याग्रह और असहयोग आंदोलनों से जन-समाज में उत्पन्न नव-चेतना का जागरण, माडरेटों की सुधार-प्रवृत्ति का प्रभाव तथा साम्यवाद का प्रभाव। प्रेमचन्द की कहानियों का सीधा सम्बन्ध उनके व्यक्तित्व से है। उनका जीवन तथा जगत् के प्रति वही दृष्टिकोण है, जो उनका उपन्यासों में है। सारांशतः वे अपने ग्राम, समाज, राष्ट्र तथा आदर्श के क्षेत्र से बाहर नहीं निकल सके। अपनी प्रतिभा और चातुय के द्वारा प्रेमचन्द ने इन कहानियों का ढाँचा (Structure) पश्चिम से ग्रहण किया, परन्तु फिर भी उन्होंने उनमें भारतीय सभ्यता और संस्कृति का रंग भरकर उन्हें एक ऐसा सुन्दर कला-रूप दिया है कि उनकी मौलिकता पर किसी को कोई सन्देह ही नहीं हो सकता।

प्रेमचंद का अभ्युदय हिन्दी-कहानी-साहित्य के प्रांगण में उस ऊषा-काल में हुआ था जब कहानी रूपी बाल-रवि का मंद-मंद प्रकाश क्षितिज-पट पर दिखाई ही देने लगा था। तिलस्मी-जासूसी-अय्यारी तथा अनहोनी घटनाओं, भूत-प्रेत की गप्पों, प्रेम-वियोग के आख्यानों और उपदेश-धर्म की कथाओं ने उस बाल-रवि को कुछ बाहर अवश्य निकाला, प्रसाद की भाव-प्रधान तथा कवित्वपूर्ण कहानियों ने उसमें लालिमा अवश्य भर दी और गुलेरी तथा सुदर्शन की घटना-प्रधान कहानियों ने उसे साहित्य-गगन की ओर अग्रसर होने के लिए अवश्य लालायित किया, किन्तु किसी ने उसमें तेज भरकर दिवस के मध्याह्न तक नहीं पहुँचाया। अभिप्राय यह कि अब तक की सब कहानियों मे घटनाओं तथा भावों का समुचित सामञ्जस्य स्थापित नहीं हो पाया था। फिर तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों को लेकर सूक्ष्म चित्र उपस्थित करने मे ये लेखक प्राय: असमर्थ थे। प्रेमचन्द की महत्ता इसी मे है कि वे ऐसे समय में हिन्दी के एक प्रथम मौलिक कहानीकार के रूप में हमारे सम्मुख आते है। उन्होंने सर्व प्रथम हिन्दी-कहानियों को बाह्य घटनाओं से मुक्त करके उनमें आन्तरिक भावनाओं का सन्निवेश किया। उन्होंने ही मानव-जीवन के अन्त रहस्यों के उद्‌घाटन द्वारा समाज की प्रत्येक समस्या को अपनी कहानियों का विषय बनाया। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि उनकी आरम्भिक कहानियाँ उतनी उच्चकोटि की नहीं हैं, जितनी कि आगे चलकर लिखी जाने वाली कहानियाँ। पिछली श्रेणी की कहानियाँ, जिन्हें हम घटना-प्रधान ही कहेंगे, सभी दृष्टियों से बड़ी ही सीधी-सादी प्रतीत होती हैं। विषय-सामग्री तो दोनों में समान है, लेकिन घटना-प्रधान कहानियों में प्रेमचंद सबसे पहले पात्रों का परिचय देते हैं, फिर उस बात को लाकर उपस्थित करते हैं जो कहानी के पूर्व उत्तर किसी एक पक्ष की प्रतिस्पर्द्धी होती है। इसके अनन्तर वह घटना आती है जो कहानी को गति और उत्तेजना देकर उसे चरम सीमा (Climax) की ओर अग्रसर करती है। आगे चलकर कोई वेगमय भाव आता है, फिर उस वेगमय भाव का दमन होता है और अंत में, उसकी समाप्ति होती है। इन कहानियों की प्रक्रिया (Process) इन्हीं अवस्थाओं (Stages) में से होकर प्रवाहित होती है। कथानक का विकास सीधे ढंग से होने तथा होने वाली घटना का पूर्वाभास हो जाने के कारण उनमें उत्सुकता का नूतन आवेग लक्षित नहीं होता। प्रेमचन्द का यथार्थ स्वरूप तो उनकी आगे की चरित्र-प्रधान, वातावरण-प्रधान, ऐतिहासिक आदि दूसरे

प्रकार की कहानियों मे अन्तर्निहित है। यहाँ उन्होंने मनोरंजक विषय-सामग्री को चुनने, एकत्रित करने और उसे सजाने मे अद्वितीय कुशलता का परिचय दिया है। आकर्षक घटनाओं का संकलन और उनका सुसम्बद्ध आयोजन वस्तुत. इन कलापूर्ण कहानियों की प्रमुख विशेषता है। यहाँ आकर उन्होने मानव-जीवन के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मे कमाल कर दिखाया है। पात्रों को विविध परिस्थितियों और प्रसंगों मे डालकर उनके गुण-विशेष की बड़ी ही सुन्दर और भव्य व्यंजना की गई है। कहीं-कहीं प्रधान पात्र के चरित्र मे अचानक परिवर्तन दिखाकर कहानी को अत्यन्त प्रभावशाली बनाने की आयोजना की गई है। प्रेमचन्द ने यद्यपि जीवन और जगत् का साधारण पहलू ही लिया है, लेकिन आगे की चरित्र-प्रधान कहानियों के लिए यह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। वातावरण-प्रधान कहानियों मे उन्होंने उचित परिपार्श्व (Setting) पर महत्त्व देते हुए एक ही मुख्य भावना का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। पूर्ववर्ती कहानियों की तरह उनका ध्यान रोमांस और भावुकता की ओर नहीं है। वे ठोस सत्य की ओर ही अधिक देखते हैं, इसीलिए उनमे उत्तेजना और अवास्तविकता के दर्शन नहीं होते। उनकी दृष्टि पृथ्वी की ओर ही अधिक रही है, आकाश की ओर कम। फिर भी यथार्थ को वे किसी आदर्श की ओर ही ले जाते हैं, इसीलिए उन्हें 'आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी लेखक' कहा गया है। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कहानियों के द्वारा इस कथन की सटीक व्याख्या होती है। वहाँ उन्होंने ऊँचे दरजे का प्रेम दिखाया है और साथ ही उसे स्थानीय रंग द्वारा चित्रित भी किया है। चरित्र-प्रधान कहानियों का उत्कृष्ट उदाहरण 'दफ्तरी', 'गृह-दाह', 'लांछन', 'तावान', 'घास वाली', 'नेउर', 'तगादा', 'आत्माराम', 'शंखनाद', 'गुल्लीडण्डा', 'ईश्वरीय न्याय', 'पशु से मनुष्य', 'पंच परमेश्वर', 'इस्तीफा', 'दीक्षा', 'नशा', 'बड़े घर की बेटी' आदि कहानियों में, वातावरण - प्रधान कहानियों का उत्कृष्ट उदाहरण 'शतरंज के खिलाड़ी', 'बूढ़ी काकी', 'लोकमत का सम्मान', 'विध्वंस', 'अग्नि-समाधि' आदि कहानियों मे और ऐतिहासिक कहानियां का उत्कृष्ट उदाहरण 'वज्रपात', 'दिल की रानी', 'रानी सारधा' आदि कहानियों में देखा जा सकता है।

प्रेमचन्द ने सर्व प्रथम हिन्दी-पाठकों का ध्यान उच्च वर्ग की ओर से हटाकर मध्य और विशेषतया निम्न वर्ग के लोगों की नित्य-प्रति की समस्याओं की ओर आकर्षित किया। प्रेमचन्द रूस के प्रसिद्ध लेखक गोर्की की तरह दलित मानवता के सुख-दुःख का यथार्थ अनुभव प्राप्त करके अपनी वास्तविक

सहृदयतापूर्ण तथा संवेदनामूलक अनुभूति को अपनी क्रियात्मक कहानियों में अत्यंत सुन्दर, स्वाभाविक और मौलिक रूप से कलात्मक परिपूर्णता के साथ व्यक्त करते हैं। 'क़फ़न', 'अलग्योझा', 'सद्‌गति', 'घर-जमाई', 'सवा सेर गेहूँ', 'ईदगाह','घास वाली', 'बाबा जी का भोग','बेटी का धन', 'बलिदान', 'मंदिर', 'उपदेश', 'मुक्तिमार्ग', 'विध्वस', 'अग्नि समाधि', सुजान भगत आदि कहानियों द्वारा इस कथन की पुष्टि होती है। इनमें उनके जीवन का यही मूल मंत्र प्रतिध्वनित होता रहता है। यहाँ हम स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य मे ग्रामीण कृषकों के हृदय को अच्छी तरह पहचानने वाला यदि कोई कहानीकार है, तो वह है प्रेमचन्द।

सामाजिक तथा कौटुम्बिक समस्या-मूलक कहानियों की ओर प्रेमचन्द का ध्यान विशेष रूप से गया है। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि वे पहले के कहानीकारों की तरह समस्याओं से अनभिज्ञ न होकर उन्हें अच्छी तरह पहचानते हैं, पहचानते ही नहीं उनको दूर करने के सरल उपाय भी जानते हैं। यहाँ हमें स्पष्ट रूप से उनका सुधारवादी दृष्टिकोण लक्षित होता है। जिससे उनकी कहानी-कला को ठेस भी पहुँचती है। प्रेमचन्द वस्तु का वर्णन करते-करते इतने तन्मय हो जाते हैं कि उन्हें अपने सामने और कुछ नहीं दिखाई देता। वे यह भी भूल जाते हैं कि मैं कहानी लिखने जा रहा हूँ, जिस पर कुछ प्रतिबन्ध भी लगे होते हैं। यहाँ प्रेमचन्द पहले सुधारवादी हैं, फिर कहानीकार। ऐसे समय उनकी लेखनी कुछ अधिक ही कहने के लिए ललचाती रहती है, जो एक दृष्टि से स्वाभाविक भी है। उनकी 'मुक्ति-धन', 'ब्रह्म का स्वाँग', 'रामलीला', 'खुदाई फौजदार', 'सचाई का उपहार', 'चमत्कार' तथा 'जीवन का शाप' आदि कहानियों में ऐसा ही हुआ है।

प्रेमचन्द की इन समस्त कहानियों की विषय-सामग्री को देखकर हठात् यह कहना पडता है कि उन्होंने दैनिक जीवन की प्रत्येक समस्या पर सीधे-सादे ढंग से अपने विचार व्यक्त किये हैं, हर क्षेत्र को अपना विषय बनाया है। कहीं-कहीं, जहाँ उन्होंने इन कहानियों का सीधा सम्बन्ध अपने व्यक्तित्व से रखा है वहाँ कला में कुछ दोष अवश्य आ गए हैं। अन्य स्थानों पर समय और परिस्थितियों को देखते हुए वे एक सफल कहानीकार हैं।

चरित्र-चित्रण की प्राय: समस्त प्रणालियों का प्रेमचन्द ने प्रयोग किया है। इन प्रणालियों के अतिरिक्त शरत् बाबू की तरह कार्यों द्वारा भी पात्रों की सुन्दर आत्माभिव्यक्ति कराई गई है। मानव-स्वभाव का बड़ा मार्मिक और सुन्दर

चित्रण उपस्थित किया गया है, लेकिन सिद्धान्तों के फेर मे पात्रों को एक आदर्श भूमि पर प्रतिष्ठित करने की ओर ही उनका ध्यान अधिक गया है। वर्ण-व्यवस्था को छोड़कर आर्थिक दृष्टि से उनके पात्र उच्च, मध्य और निम्न इन तीन श्रेणियों मे से किसी एक श्रेणी मे बिठाये जा सकते हैं। इनमे से कोई पात्र अपनी वर्गगत सामूहिक विशेषताओं को लेकर ही हमारे सम्मुख आता है। साथ ही कहानी का ढाँचा (Structure) पश्चिम से लेने के कारण भारतीय सभ्यता और संस्कृति का ध्यान रखने पर भी उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं (Individual characteristics) की ओर भी आवश्यक ध्यान गया है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि वे वैयक्तिक विशेषताओं मे पैठते हुए भी परिस्थितियों के अनुसार उसका उत्थान-पतन दिखाते चलते है। मनुष्य के भावों तथा विचारों मे किस तरह छोटी-छोटी गुत्थियाँ पड़ती और सुलझती रहती है—इसका चित्रण भी उन्होंने अद्भुत क्षमता से किया है। प्रेमचन्द का मानव-स्वभाव पर पूर्ण अधिकार था। इसीलिए व्यक्ति तथा समूह का वे यथा-तथ्य चित्र अंकित कर सके हैं। पात्रों का विकास शनैः-शनैः हुआ है, अन्त में चलकर पात्र जो कार्य करता है, उसके लिए धीरे-धीरे वे एक अच्छी भूमि तैयार कर लेते हैं और साथ ही कारण भी स्पष्ट कर देते हैं। उपन्यासों की तरह यहाँ पात्रों के चरित्र-चित्रण मे हमे दोष नहीं दिखाई देता।

प्रेमचन्द की कहानियों मे पात्रों के कथोपकथन से उनकी चारित्रिक विशेषता प्रकट होती है। उनका कथोपकथन बहुत स्वाभाविक है और पात्रों के अनुसार भाषा मे भी परिवर्तन उपस्थित कराया गया है, जिससे उनकी सजीवता मे वृद्धि ही हुई है। मनुष्यों की बात छोड़िये, 'दो बैलों की कथा', 'स्वत्व-रक्षा', 'अधिकार-चिन्ता', 'पूस की रात' आदि कहानियों में तो प्रेमचन्द ने पशुओं के भी मूक सम्भाषण को अपनाया है, उनकी विविध दशाओं का सफलता से चित्रण किया है। भाषा को बलवती बनाने के उद्देश्य से प्रेमचन्द ने साधारण-से-साधारण संलाप मे भी किसी प्रकार की असाहित्यिकता नहीं आने दी है। पात्रों की भाषा मे उनका स्वरूप प्रायः सभी कहानियों में एक-सा लक्षित होता है। यहाँ तो हमे केवल यही स्मरण रखना चाहिए कि उन्होंने विभिन्न वर्गों की भाषा की ओर ही अधिक ध्यान दिया है, लेकिन जहाँ पात्र-विशेष के द्वारा उस भाषा का। ठेठ प्रयोग कराया गया है, वहाँ उनका दोष ही माना जायगा, क्योंकि कहानी के पाठकों के लिए यह सम्भव नहीं कि वे सभी तरह की भाषाओं के पूर्ण पंडित हों ही।

प्रेमचन्द की सबसे बड़ी मौलिकता उनकी भाषा और शैली ही है। वह सरल, सुन्दर, चुस्त और हृदयग्राही है तथा उस पर उनकी अपनी छाप है, इसीलिए कुछ लोगों ने उसे 'प्रेमचन्दी भाषा' के नाम से पुकारा है। इस प्रकार की भाषा से कहानी मे एक विशेष सौंदर्य की उत्पत्ति होती है और लेखक भी लोक-प्रिय हो जाता है। उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता मुहाविरों और लोकोक्तियों का प्रयोग है। इन्होंने उसमें चार चाँद लगा दिए हैं। सामान्य रूप से उनकी कहानियों की भाषा का रूप हिन्दुस्तानी है, किन्तु ध्यानपूर्वक देखने से विदित होगा कि उसका स्वरूप सर्वत्र एक-सा नहीं है। वर्णन के समय अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग कम हुआ है। प्रवाह, चित्रोपमता, उपमा-रूपक आदि की सुन्दर आयोजना यहीं होती है। भावना और अनुभूति उनकी वर्णन-शैली की प्रमुख विशेषता हैं। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण एवं परिस्थिति-चित्रण करते समय उन्होंने समास-पद्धति का विशेष अनुसरण किया है। यहाँ लेखक को वाक्यों की लघुता अपेक्षित हुई है। यहाँ आकर भाषा मानसिक द्वन्द्व के कारण दब जाती है, मन की उथल-पुथल में विश्लेषणात्मक पद्धति अपनाई गई है। प्रकृति-वर्णन की भाषा में तो उन्होंने कमाल कर दिया है। पात्रों की भावनाओं का प्रकृति पर आरोपण करके उसका सजीव चित्र खींच देना इससे सुन्दर और कहाँ मिलेगा? स्थूल प्रकृति का वर्णन भी खूब सजा हुआ है, उनमे भावों की लड़ियाँ गूँथकर रख दो गई हैं। यहाँ उन्होंने अपने लिए कोमल पदावली का ही चयन किया है। इस प्रकार संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द की भाषा-शैली यद्यपि हिन्दुस्तानी है, किन्तु फिर भी वह मँजी हुई, प्रौढ़, परिष्कृत, संस्कृत पदावली से शुभ्र, उर्दू से चंचल, मुहाविरों और लोकोक्तियों से चमत्कारपूर्ण तथा ओज, माधुर्य और प्रसाद गुणों से युक्त है।

प्रेमचन्द की कहानियों से हम मनोरंजन और साहित्यिकता दोनों ले सकते हैं। इनसे भी अधिक उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से परिचय प्राप्त कर सकते हैं। प्रेमचन्द ने अपनी समस्त कहानियाँ एक निश्चित उद्देश्य को लेकर लिखी हैं और उस उद्देश्य को बार-बार सुनते-सुनते हमारे कान थक गए हैं, मन शिथिल पड़ गया है, फिर भी उनकी कही हुई बातें जीवन के लिए कितनी उपयोगी हैं। उनकी समस्त कहानियाँ हिन्दू-मुस्लिम-एकता, अनमेल विवाह, वेश्योद्धार, ग्राम-सुधार, आर्थिक शोषण, छुआछूत, आभूषण-प्रेम, विधवा-विवाह,

पुलिस के हथकण्डे, मुकद्दमेबाजी, सगठन, राष्ट्र-प्रेम आदि समस्याओं को लेकर लिखी गई है। प्रत्येक कहानी मे इनमे से एक-न-एक समस्या अवश्य मिलेगी। साथ ही प्रेमचन्द ने समस्याओं को हल करने के उपाय भी बतलाये है। धीरे-धीरे ये समस्याएं सुलझती चली जा रही है। आज की इस स्वतन्त्रता मे हमारे इस कहानीकार-नेता का कितना बड़ा हाथ है, इसका अन्दाजा तो वे ही लगा सकते हैं, जिन्होंने उनकी राजनीतिक क्षेत्र की कहानियों का अवलोकन किया है। पथ-प्रदर्शक प्रेमचन्द के बतलाये हुए मार्ग पर अभी हमे चलना शेष है, क्योंकि स्वतन्त्रता तो आ गई है, किन्तु आर्थिक स्वतन्त्रता अभी नहीं आई है। यदि प्रेमचन्द आज हमारे बीच होते तो सम्भव है जीवन का यह अव्यवस्थित रूप न होता। प्रेमचन्द की कहानियों का मूल्य सामाजिक दृष्टि से बहुत अधिक है। सामाजिक समस्याए भले ही सुलझती जायं, उन्होंने कला का भी सम्यक् ध्यान रखा है, इसलिए यह कहानी-साहित्य चिरन्तन है। ससार में मनुष्य के रूप मे आकर देहातों मे बसे गरीबों की सेवा करो, जमींदारी का नाश करो, पूँजीपतियो को गले न लगाओ, सामाजिक कुरीतियाँ हटाओ, देश और राष्ट्र की सेवा के लिए तत्पर रहो.. आदि प्रेमचन्द की कहानियों में चुपके-चुपके कुछ ऐसा ही सन्देश सुनाई देता है। एक शब्द मे, प्रेमचन्द की कहानियों का सार 'पैसा' है, यही उसकी उपयोगिता है और है उसी मे उसकी कला!

यदि मुझसे कोई यह प्रश्न करे कि प्रेमचन्द की कलापूर्ण कहानियाँ कौन-कौन-सी है तो स्पष्ट शब्दों मे इसका उत्तर मैं दूंगा—'राजा हरदौल', 'रानी सारंधा', 'मंदिर और मसजिद', 'एक्ट्रेस', 'अग्नि-समाधि', 'विनोद', 'आत्मा-राम', 'सुजान भगत', 'बूढ़ी काकी', 'दुर्गा का मंदिर', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'पंच परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी, 'विध्वंस', 'विक्रमादित्य की कटार', 'कामना-तरु', 'डिग्री के रुपए', 'सौत', 'ईश्वरीय न्याय', 'नमक का दारोगा', 'सती'. 'लाञ्छन', 'मंत्र', 'घर-जमाई', 'घास वाली', 'खुचड', 'जुलूस', 'पूस की रात' आदि। सग्रह-कर्ताओ के लिए ये समस्त कहानियाँ ध्यान देने योग्य हैं। अस्तु,

सुदर्शन—प्रेमचन्द के बाद हिन्दी-कहानी-साहित्य मे जिन-जिन लेखकों ने भाग लिया, उनमे बाबू बद्रीनाथ (सुदर्शन) का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है। आप हर बात मे प्रेमचन्द के ही अनुयायी है। उर्दू-क्षेत्र से हिन्दी मे आकर आपने सन् १९२० ई० से कहानियाँ लिखना आरम्भ किया। अँग्रेजी-साहित्य

का अच्छा अध्ययन होने के कारण आपकी कहानियों की टेकनीक विशेष ढंग की है। लोकप्रियता में प्रेमचन्द से आप भी किसी प्रकार पीछे रहने वाले नहीं हैं। 'सुदर्शन-सुधा', 'तीर्थ-यात्रा', 'सुप्रभात', 'पनघट', 'प्रमोद', 'नगीने', 'नवनिधि', 'चार कहानियाँ' आदि आपके कहानी-संग्रह इस बात के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

सुदर्शन की कहानियों की विषय-सामग्री अधिकांशतः सामाजिक क्षेत्र से ली गई है और इसमें उन्हें अपूर्व सफलता भी मिली है। कहानी के सम्बन्ध में आपका मत स्पष्ट है—'हमें ऐसी कहानियाँ चाहिएं, जिनका प्रभाव राष्ट्र और समाज पर अमिट हो और यह तभी हो सकता है, जब हमारे समाज और राष्ट्र की बातें ही कहानी में हों।' इसी तथ्य को अपने जीवन का चरम-बिन्दु मानकर आपने 'कला के लिए कला' वाले सिद्धान्त का खण्डन करते हुए सुन्दर कलापूर्ण कहानियों की सृष्टि की है। सुदर्शन की कहानियाँ बड़े शान्त और गम्भीर प्रवाह के साथ उत्तरोत्तर आगे अग्रसर होती रहती हैं। कथा के केन्द्रीय स्थल को लेखक पाठकों की दृष्टि से बहुत दूर तक अलग रखकर उन्हें अपने पीछे-पीछे चलाता रहता है। उनका यह गुण हमारे हृदय में 'आगे क्या होगा' की उत्सुकता जागृत करता रहता है। कहानी-साहित्य में यह कौशल विशेष महत्त्वपूर्ण है। एक दृश्य पर पाठकों की दृष्टि आकृष्ट करके अचानक दृश्य-परिवर्तन कर देने से हमारी आश्चर्य-वृत्ति की तुष्टि करना उन्हें खूब आता है। इस दृष्टि से वे प्रेमचन्द से आगे हैं, पीछे नहीं। प्रेमचन्द की तरह सुदर्शन भी इस संसार से बाहर के स्वर्ग के पीछे भूले-भटके नहीं फिरते, वरन् आस-पास की चलती-फिरती हुई दुनिया ही से अपने लिए कहानी की सामग्री ढूंढ़ निकालते हैं। इन कहानियों में उन्होंने वर्णनात्मक पद्धति का ही अनुशीलन किया है। घटनाओं की व्यंजकता और पाठकों की अनुभूति पर अधिक विश्वास न करके उन्होंने कुछ मार्मिक व्याख्या करना ही अच्छा समझा है। इतना होते हुए भी हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कहीं-कहीं प्रेमचन्द की तरह आपकी कहानी-कला को व्याघात पहुँचा है। हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि सुदर्शन आर्यसमाजी हैं, इसीलिए सुधारक की प्रवृत्ति उनकी कहानियों में स्पष्ट रूप से उतर आई है। जिन कहानियों में ऐसा हुआ है, वहाँ कहानी-कला की दृष्टि से कुछ दोष अवश्य आ गए हैं।

कहानी-साहित्य के विकास में सुदर्शन का यथार्थ मूल्यांकन तभी हो सकेगा जब हम उसकी उच्चादर्श, सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलनों से

प्रेरित होकर लिखी गई कहानियों को छोड़कर अपना ध्यान उन वातावरण-प्रधान कहानियों की ओर आकृष्ट करें, जिनमे उन्होंने कहानी-कला का पूर्णरूपेण ध्यान रखा है। यहाँ आकर हम उनके लाक्षणिक सौंदर्य से परिपूर्ण यथार्थवादी वातावरण पर मुग्ध हो जाते है। इस चित्रण मे उन्हे वातावरण तथा परिपार्श्व की अवतारणा में अभूतपूर्व सफलता मिली है। आधुनिक कहानियों मे विकास की एक सुन्दर कड़ी इन्हीं वातावरण-प्रधान कहानियों की है, जिनका मुख्य उद्देश्य मानव-चरित्र के सूक्ष्म अन्तः-रहस्यों का उद्‌घाटन करना ही है। विषय-सामग्री तो यहाँ नगण्य है, किन्तु एक भावना के चतुर्दिक् कथानक, चरित्र और वातावरण लिपटा पड़ा है। 'हार की जीत' इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कहीं-कहीं सामयिक सत्यों मे गहरा रंग भरने तथा उनकी चिरस्थायी छाप डालने के लिए उन्होंने मानव-जीवन और इतिहास के चिरन्तन सत्यों का भी आश्रय लिया है। इन सत्यों की व्यंजना उन्होंने पुराण-कथा के रूप मे की है। 'कमल की वेटी', 'संसार की सबसे बड़ी कहानी', 'एथेंस का सत्यार्थी' आदि में ऐसा ही किया गया है। इस प्रकार की कहानियों का सूत्रपात हिन्दी-साहित्य मे उन्होंने सर्वप्रथम किया, यह उनकी मौलिक देन है—इसमे कोई सन्देह नहीं।

वातावरण मानव-चरित्र और भावना को लेकर लिखी गई कहानियों मे तो पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए कोई अवकाश नहीं रह जाता, लेकिन सामाजिक, राजनीतिक तथा उच्चादर्शों के लिए लिखी गई कहानियों मे पात्रो का विकास सुन्दर रूप से दिखाया गया है। यहाँ प्रेमचन्द की तरह उनके पात्र यथार्थ से आदर्श की ओर ही अग्रसर होते हुए दृष्टिगत होते है। 'पाप-परिणाम' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। 'वलिदान' मे पत्र-शैली द्वारा कहानी के कथानक और पात्रों के चरित्र के क्रम-विकास का निर्वाह सफलतापूर्वक किया गया है। 'सुप्रभात' की समस्त कहानियाँ राजनीतिक आन्दोलनों और सामयिक भावनाओं को समझने में सहायता देती है। इनमे उनके पात्र आदर्शवादी है। सामाजिक कहानियों के सम्बन्ध में भी यही वात कही जा सकती है।

प्रेमचन्द की तरह सुदर्शन के संलाप भी सरल, सुन्दर और स्वाभाविक हैं। सुदर्शन का विशेष महत्त्व उनकी लघुता मे है। आपने भी पात्रों के अनुकूल ही अपने संलापों की भाषा का स्वरूप निर्धारित किया है, जिससे उनमे सौंदर्य आ गया है, क्योंकि वे अपनी एक सीमा के अन्दर ही रहे हैं। उर्दू-साहित्य का परिचय होने के कारण आपका एक वहुत सरल, व्यावहारिक

और स्वाभाविक भाषा पर अधिकार है। भाषा ऐसी नहीं है कि पाठकों को अधिक मुग्ध करके उनका ध्यान पात्रों की ओर से हटवा ले। वे तो अपने चलते रूप से ही हमें आकर्षित कर देते हैं। उनकी वर्णन-शक्ति अद्भुत है जिससे वर्ण्य-विषय में चित्रोपमता आ गई है। उनकी सरल, मनोरंजक तथा मुहाविरेदार भाषा ने कहानियों की शोभा बढ़ा दी है। संक्षेप में, जिस प्रकार हम प्रेमचन्द को उनकी कहानियों में बिना नाम के ही पहचान लेते हैं, ठीक वही अवस्था यहाँ भी है।

इसी प्रकार प्रेमचन्द और सुदर्शन की कहानियों के उद्देश्य में भी समानता है। दोनों ही कलाकार सुधारवादी हैं, क्योंकि दोनों ही समाज और राष्ट्र की समस्याओं को सुलझाने में लगे हुए दृष्टिगत होते हैं। सुदर्शन की कहानियों के द्वारा भी सुन्दर हल निकाले गए हैं। राष्ट्र और समाज ही वस्तुतः उनकी कहानियों का लक्ष्य है और वे एक सफल कहानीकार हैं।

जयशंकर 'प्रसाद'—इस युग के लेखकों में जयशंकर 'प्रसाद' का स्थान किसी लेखक से कम नहीं है। उनका क्षेत्र ही पृथक् है। कहानीकार 'प्रसाद' का रूप उनके अन्य रूपों से मिलकर उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय देता है। आधुनिक हिन्दी-कहानी-साहित्य के निर्माताओं में अपने ढंग की विशेष कहानियाँ लिखने में उनका नाम ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से सर्वप्रथम आता है। एक ऐसे समय में, जब हमारी कहानी की कोई निश्चित परम्परा नहीं थी, उसे साहित्यिक रूप नहीं मिल पाया था और उसका शैली-विषयक कोई आदर्श उपस्थित नहीं किया गया था। प्रसाद साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए और उन्होंने इन समस्त अभावों की पूर्ति की। अपने जीवन-काल में उन्होंने ६६ कहानियाँ लिखीं, जिनके पाँच कहानी-संग्रह 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाश-दीप', 'आँधी' और 'इन्द्र-जाल' प्रकाशित हो चुके हैं। 'ग्राम' उनके साहित्यिक जीवन-काल की सर्वप्रथम कहानी है तथा 'सालवती' अन्तिम। 'ग्राम' से लेकर 'सालवती' तक उनकी विचार-धारा का क्रमिक विकास हमें देखने को मिलता है।

प्रसाद की अधिकांश कहानियाँ भाव-प्रधान हैं, जिनमें कल्पना और भावना की प्रधानता रहती है। इनका सीधा सम्बन्ध लेखक के हृदय से है, मस्तिष्क से नहीं। इसीलिए इनमें विचारों की प्रधानता न होकर किसी भाव-विशेष पर ही विशेष बल दिया गया है। आरम्भ में ही लेखक के हृदय की भाव-धारा एक सरिता की तरह कल-कल करती हुई अपने मधुर संगीत के द्वारा

पाठकों के हृदय को सरसाती रहती है और यही भाव-संगीत कहानी के अन्त तक सुनाई देता रहता है। भावों के संचरण में प्रसाद सच्चे भावयोगी हैं। अध्ययन और अनुभव की सम्पन्नता के संयोग से भावनाओं की जिस कोमलता-कठोरता का प्रसाद ने उद्‌घाटन किया है, वह संसार-मार्ग पर चलने वाले श्रांत-क्लांत पथिकों के लिए मूक संदेश का काम देता है। मनोभावों के आंदोलन से हृदय को झकझोर देने में प्रसाद अद्वितीय है। प्रेमचन्द तथा सुदर्शन से उनका मूल भेद भी यहीं है। प्रेमचन्द तथा सुदर्शन राष्ट्र और समाज से आगे नहीं बढ़ सके, परन्तु प्रसाद ने हिन्दी-कहानियों मे जनसत्तात्मक भावों की सुन्दर स्थापना की है। वे मानवता के उद्‌बोधक हैं, राष्ट्र तथा समाज के चित्रकार नहीं। उनकी 'प्रसाद', 'सहयोग', 'गुदड़ी मे लाल', 'अघोरी का मोह', 'विराम-चिन्ह', 'ग्राम-गीत', 'व्रत भंग', 'विजया' आदि कहानियों मे वह विशेषता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इन कहानियों मे, जहाँ भाव अत्यन्त ही तीव्रतम हो गए हैं और लेखक के विचार अस्फुट तथा वाणी अटपटी होकर उन्हे पूर्ण रूप से अंकित नहीं कर पाई है, वहाँ हमे एक अज्ञात रहस्य की सुन्दर झाँकी देखने को मिलती है। रहस्यवादी कवि होने के नाते प्रसाद की कुछ कहानियाँ भी रहस्य-प्रधान हो गई हैं। 'पत्थर की पुकार', 'खँडहर की लिपि', 'प्रलय', 'उस पार-का योगी', 'ज्योतिष्मती', 'प्रतिध्वनि' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। इनमे अस्वाभाविकता के दोष ढूँढना अपनी तुच्छ मनोवृत्ति का परिचय देना है, क्योंकि जिन कहानियों की सृष्टि किसी रहस्य को लेकर होती है, उनमे कथानक की कड़ियाँ सुसम्बद्ध न होकर अस्वाभाविकता का दोष ले ही आती हैं। यहाँ प्रसाद की दृष्टि अन्तः सौंदर्य और कवित्त्व की ओर अधिक लगी हुई है। कहीं-कहीं प्रतीकों (Symbols) का सुन्दर विधान भी किया गया है। जहाँ इस ओर आद्यन्त ध्यान दिया गया है, वह एक सुन्दर प्रतीकवादी कहानी बन गई, उदाहरणार्थ 'कलावती की शिक्षा'। वातावरण-प्रधान कहानियाँ प्रसाद के हाथ मे आकर खिल उठी है, इसमे कोई सन्देह नहीं। कवित्त्वपूर्ण वातावरण, कवित्त्वपूर्ण भावना और नाटकीय तथा आदर्शवादी परिस्थितियों की सृष्टि करने मे प्रसाद निःसंदेह बेजोड़ है। प्रेमचन्द और सुदर्शन इस दृष्टि से इनके सामने फीके जान पड़ते है। प्रसाद की कला इन कहानियों में आकर पूर्ण रूप से कवित्त्वपूर्ण और स्वच्छन्दतावादी बन गई है। 'आकाश-दीप', 'समुद्र-सतरण', 'प्रणय-चिह्न' आदि उनकी कहानियाँ इसकी सर्वोत्तम उदाहरण हैं। प्रसादजी ने कुछ घटना-प्रधान कहानियाँ भी लिखी है,

जिन में:'मधुआ', 'बेडी', 'घीसू', 'नीरा', 'इन्द्र-जाल', 'सलीम', 'हिमालय का पथिक', 'वनजारा', और 'अपराधी' आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं। यद्यपि ये कहानियाँ उनकी प्रथम कहानी 'ग्राम' की भाँति साधारण कोटि के अन्तर्गत आती है, किन्तु यथार्थवादी चित्रण होने के कारण वे अपनी आदत के अनुसार प्रेमचंद को खूब पसन्द आई थीं। इनमें कौतूहलवर्द्धक घटनाओं के लिए अच्छा सामान तैयार किया गया है। कुछ में घटनाओं को लेकर एक चामत्कारिक रूप भी खड़ा किया गया है। इनके शीर्षक भी उन्होंने विलक्षण और नवीन ही रखे हैं। चरित्र-प्रधान कहानियों मे केवल दो-चार अर्थ-गर्भित वाक्यों के द्वारा ही चरित्र की विशेषताओं का दिग्दर्शन करा दिया है। पात्रों को विविध परिस्थितियों और प्रसगों मे डालकर उनका भव्य चरित्र-चित्रण किया गया है। यहाँ प्रेमचन्द की तरह उनका ध्यान मानव-जीवन के साधारण पहलू की ओर न जाकर असाधारण पहलू की ओर अधिक गया है। 'भिखारिन', 'देवदासी', 'वैरागी', 'चूडी वाली', 'विसाती', 'चित्र वाले पत्थर', 'परिवर्तन', 'सन्देह', 'आँधी', 'दासी', तथा 'पुरस्कार' आदि कहानियाँ इसी श्रेणी की है। अन्त में, ऐतिहासिक कहानियों में उनकी 'नूरी', 'सालवती', 'ममता' आदि कहानियाँ विशेष रूप से आती हैं। यहाँ उन्होंने अपने पात्रों को स्वर्ग की सैर कराई है। आरम्भिक कहानी 'रसिया बालम' की तरह इन कहानियों का कथानक प्राचीन खडकाव्य और फ़ारसी प्रेमाख्यान से सम्बन्धित होने पर भी प्रसाद ने कल्पना-शक्ति के द्वारा उसे आकर्षक और मनोरंजक वना दिया है। साथ ही उसकी नाटकीय ढग से अभिव्यजना भी हुई है। हिन्दी-कहानी-साहित्य में यह कार्य सर्व प्रथम प्रसाद के ही द्वारा हुआ, यह हमें नहीं भूल जाना चाहिए।

इन विभिन्न प्रकार की कहानियों को पढ़कर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'सालवती' कहानी के अतिरिक्त उनकी प्राय समस्त कहानियों मे कथा-भाग बहुत ही कम है। उनमे कल्पना-शक्ति के सहारे कम-से-कम घटनाओं और प्रसगों की सहायता से कथानक की सृष्टि की गई है जो आधुनिक कहानियों की प्रमुख विशेषता है। घटना-प्रधान कहानियों में भी, जहाँ अल्प घटनाओं का आश्रय लिया गया है, तारतम्यता बनी हुई है और वर्णन-प्रवाह विना किसी बाधा के अपने सुन्दर और स्वाभाविक रूप में आगे अग्रसर होता रहता है। उस प्रवाह में भाषा वडी सहायक सिद्ध हुई है। प्रत्येक घटना में शक्ति है, धरातल की ऊँचाई है। समस्या की अनुभूति में लेखक खो जाता

है, इसीलिए कहानी विशुद्ध रूप से अनुभूतिमय बन जाती है। सौंदर्य और करुणा के पुजारी प्रसाद ने अपनी कहानियों मे जिस सौंदर्य को अपनाया है, वह मानवगत यथार्थ सौंदर्य है, वे उसकी अनुभूति प्राप्त कर लेते है, फिर स्वभावानुसार इतिहास-पुराण आदि से, कुछ नहीं तो कल्पना-शक्ति से ही सामग्री और कथानक जुटा लेते हैं। उनका वह सौंदर्य आश्चर्यजनक नहीं प्रत्युत उत्तेजनाजनक है, जो करुणा से केंद्रित होने के कारण नव-स्फूर्ति और चेतनता प्रदान करता है।

उनकी समस्त कहानियों का आरम्भ सुन्दर ढंग से हुआ है। यद्यपि राधिकारमणप्रसादसिंह ने 'कानों मे कॅगना' कहानी द्वारा 'सलाप ढंग' का सूत्रपात किया, लेकिन उस शैली को अधिक पूर्ण और सफल बनाने का श्रेय हमारे प्रसाद जी को ही है। उन्हें इसमें एक सुविधा प्राप्त थी। सफल नाटककार होने के कारण इसमे उन्होंने नाटकीय सौंदर्य की अद्भुत वृद्धि की और संभाषण-कला तथा नाटकीय सौंदर्य के अपूर्व सामञ्जस्य का एक नवीन चमत्कार उत्पन्न किया। सबसे अधिक सफलता उन्हे इसी ढग मे मिली है। फिर कथानक की सुसंगति और उसके स्वाभाविक विकास की ओर भी उनकी बराबर दृष्टि गई है। उनकी कहानियों मे विकास केवल इतना ही है, जितना पात्र के जीवन की शक्तियों को लाने के लिए आवश्यक है। प्रसाद की रुचि विकास की ओर कम रही है, और पात्रों के सूक्ष्म अध्ययन की ओर अधिक, इसीलिए विकास का विस्तार पात्रों के चरित्र के विकास के साथ-साथ हुआ है। विकास के अन्तर्गत परिवर्तन की स्थितियों पर वे पूरा-पूरा ध्यान देते हैं, जिससे उत्सुकता बनी रहती है और दर्शकों की कौतूहल-वृत्ति की जागृति होती रहती है। परिवर्तन की स्थिति का सम्बन्ध कथानक के प्रस्थापना भाग ही से रहता है। परिवर्तन की इन विभिन्न स्थितियों को उत्पन्न करने से कहानी मे उत्तरोत्तर तीव्र स्थिति आती रहती है और इसके अनन्तर चरम सीमा का परिचय देकर वे इसकी सृष्टि कर देते हैं। बहुत-सी कहानियों मे चरम सीमा के साथ ही कहानी का अन्त हो जाता है, जिससे पाठकों को सोचने का अच्छा अवसर हाथ लग जाता है। प्रेमचन्द की तरह यहाँ कुछ और कहने की उनकी प्रवृत्ति नहीं है। इस प्रकार एक घटना के चित्र को सम्पूर्ण रूप से प्रस्तुत करके जहां मनोवैज्ञानिक ढंग से समाप्ति होनी चाहिए, प्रसाद वहीं उसका अन्त कर देते हैं

प्रसाद पूर्ण रूप से भावुक है, अपनी कहानियों मे वे घटनाएं अल्प होने के कारण चरित्र-चित्रण पर ही अधिक जोर देते हैं, किन्तु इसके लिए वे

केवल एक-दो पात्रों की ही सृष्टि करते हैं और अन्त तक उनके मनोभावों को चित्रित करते रहते हैं। मनुष्य के मनोविकार विशेष-विशेष परिस्थितियों में किस प्रकार अपना प्रकृत रूप बदलते रहते हैं, इसका वर्णन उनके पात्रों में अच्छा मिलेगा। यहाँ हमारा अभिप्राय मानव-चरित्र के असाधारण पहलू से है। पात्रों के विषय में अपनी ओर से अधिक कहने की प्रवृत्ति प्रसाद में नहीं है—उनके पात्र स्वयं ही अपने कार्यों के द्वारा हमें अपना परिचय दे डालते हैं। प्रसाद में यह विशेष बात है कि वे केवल दो-तीन पंक्तियों में ही कथा का तत्त्व समेट लेते हैं और थोड़ी रेखाओं से ही चरित्र की झाँकी दे देते हैं। हाँ, अन्तर्द्वन्द्व के समय भावों की भीषण आँधी के बीच उनके पात्र अपनी विचित्रता लिये अवश्य आते हैं। अन्तः संघर्ष पर टिकी हुई कहानियाँ इसी प्रकार की होती हैं। वातावरण-प्रधान कहानियों में उनका चित्रण बड़े गजब का होता है, जिसकी समानता हम किसी अन्य लेखक से नहीं कर सकते। इस चित्रण के अतिरिक्त उन्होंने पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए संकेतों, घटनाओं और वार्तालाप का भी आश्रय लिया है। नाटककार होने के नाते कहीं-कहीं छोटे-छोटे पात्र भी आये हैं, लेकिन प्रधान पात्र के सहायक रूप में ही। प्रसाद की कहानियों में पात्रों के चरित्र-चित्रण को देखते हुए अन्त में, यह बात तो हमें स्वीकार करनी ही पड़ेगी कि उन्हें पुरुष-पात्रों की अपेक्षा स्त्री-पात्रों के चरित्र-चित्रण में विशेष सफलता मिली है। स्त्री-पात्रों की प्रतिहिंसा का उन्होंने सटीक चित्रण उपस्थित किया है।

प्रसाद की कहानियों के कथोपकथन अर्थ-गांभीर्य से युक्त होते हैं। उनके कथोपकथनों में नाटककार के ओज और दर्प साकार हो उठते हैं तथा भावोद्रेक का तो चरम प्रौढ़ रूप हमें यहीं देखने को मिलता है। ये कथोपकथन कथानक के विकास और पात्रों के चरित्र-चित्रण में बड़े सहायक सिद्ध हुए हैं। भावुकता से ओत-प्रोत और हृदय के आवेगों से पूर्ण परिष्कृत ये संवाद सहज ही में हमारी जबान पर चढ़ जाते हैं। इनकी शैली अधिकतर मनोवैज्ञानिक है। इनमें उतार-चढ़ाव का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। भावात्मक कथोपकथनों में वाक्यों की लघुता की ओर ध्यान अधिक गया है, इनसे भावों की परिपक्वता तथा दृढ़ता का अनुपम परिचय प्राप्त होता है। साथ ही उनमें एक वाक्य तो दूर रहा, एक शब्द भी अनावश्यक नहीं है। सारे कथोपकथन प्रश्न-उत्तर के रूप में चलते रहते हैं, इसलिए उनमें शिथिलता कहीं भी नहीं आने पाई है। अन्त में, प्रसाद के इन संवादों के सम्बन्ध में एक बात और उल्लेख-

नीय है । वे अपने पात्रों के अनुकूल भाषा को गढ़ना ठीक नहीं समझते। उनका यही कहना है कि अपने देश की भाषा को ही अपनाना कल्याणकारी होता है। इतना होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि जहाँ उन्होंने पात्रों के द्वारा गंभीर काव्यमय भाषा का प्रयोग कराया है, जो यथार्थ में वे नहीं बोल सकते, ऐसे स्थानों पर कहानियों मे कृत्रिमता और अस्वाभाविकता अवश्य आ गई है। कहानी-कहानी है, निबन्ध नहीं।

प्रसाद की कहानियों की भाषा-शैली उनकी विषय-सामग्री के अनुकूल ही है। उसमे न तो उर्दू की शब्दावली ही देखने को मिलती है और न शैली ही। उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक किया है, परन्तु तो भी हम यह नहीं कह सकते कि संस्कृत की कठिन समासान्त-पदावली का ही उन्होंने प्रयोग किया है। सामान्य रूप से भाषा भाव के अनुरूप और विशुद्ध बन पड़ी है। विषय और काल के अनुसार स्थान-स्थान पर विशिष्ट वर्ग के विशेष-विशेष शब्दों के प्रयोग उन्हे अधिक मान्य हुए हैं। स्वाभाविकता की दृष्टि से पाठकों को ये सुन्दर प्रतीत होते है । भाषा मे मुहावरों का प्रयोग न होने पर भी भाव-धारा मे किसी प्रकार की कोई शिथिलता नहीं आने पाई है। जो लेखक विषय के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की ओर ही अधिक लगे रहते हैं, उन्हे इनकी आवश्यकता भी तो नहीं जान पड़ती। भाषा-सौष्ठव का एक परिमार्जित रूप हमें उनकी कहानियों मे मिलता है। इस सौष्ठव मे मनोहरता है तथा ओज, प्रसाद और माधुर्य गुण भी आ गए हैं । छोटी-छोटी कहानियों मे उनकी भाव-भंगिमा ही निराली है—शब्द-चयन, विषय-निर्वाचन, गठन तथा वाक्य-विन्यास सभी कुछ तो हमें निराला दृष्टिगत होता है। संक्षेपत. प्रसाद भाषा और शैली मे पूर्ण रूप से मौलिक हैं।

प्रसाद ने कोई निश्चित उद्देश्य लेकर कहानियाँ नहीं लिखीं। उनके हृदय-सागर पर जिन भाव-तरंगों ने नृत्य किया, उसी का संगीत उनकी कहानियों में सुनाई देता है । फिर भी इतना तो हम अवश्य कह सकते हैं कि इनकी कहानियाँ प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं, वे मानवीय हृदय की अनेक भावनाओं का सुन्दर विवरण देते हैं और सामयिक प्रगति का एक सुन्दर चित्र उपस्थित कर देते है। प्रेमचन्द अर्थ-कष्ट को सब समस्याओं का मूल कारण बतलाते हैं, इनकी कहानियों से विदित होता है कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता से ही सब समस्याएं हल हो सकती हैं और इसके लिए वे लौकिक से अलौकिक की ओर ले जाते है, जहाँ हमारा मन पल-भर

के लिए विश्राम लेना चाहता है। लेखक हमें समस्या के उस हल के पास ले जाकर छोड़ देता है, जहाँ केवल समस्या-ही-समस्या दिखाई देती है। हल रखते हुए भी समस्या को प्रधानता देने मे ही प्रसाद की मौलिकता है। इनकी अभिव्यंजना यथार्थ- वादी भले ही हो, पर उद्देश्य पूर्ण आदर्शवादी है। इस अदर्शवाद के प्रसाद नेता हैं और यही आदर्शवादी भावना उनकी कहानियों में चुपके-चुपके हमें संदेश देती रहती है। आधुनिक कहानियों मे इतने से उद्देश्य से अधिक और हमे चाहिए ही क्या ?

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक—हिन्दी-कहानी-साहित्य के विकास मे पंडित विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने आधुनिक हिन्दी कहानियाँ सन् १९१३ ई० से लिखना आरम्भ कर दिया था और केवल अल्प समय में ही एक विशेष ख्याति प्राप्त कर ली। उपन्यासों की अपेक्षा उन्हें इसी क्षेत्र में अधिक सफलता मिली थी। परिणामत आपका कहानी-साहित्य प्रेमचन्द से किसी प्रकार भी कम नहीं है। हिंदी-साहित्य को आपने लगभग तीन-सौ कहानियाँ प्रदान की हैं, जिनके 'चित्रशाला' (२ भाग), 'गल्प-मंदिर', प्रेम-प्रतिमा', 'मणि-माला' और 'कल्लोल' आदि कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

कौशिक जी की अधिकांश कहानियाँ घटना-प्रधान हैं, जो साधारण श्रेणी की हैं। इनमें प्रधान रूप से चरित्र-चित्रण पर जोर न देकर विविध परिस्थितियों से उत्पन्न उलझनों पर विशेष ज़ोर दिया गया है। इन कहानियों का कथानक दैनिक जीवन की साधारण घटनाओं से लिया गया है, जिनके प्रति उनकी पूर्ण सहानुभूति है। प्रेमचन्द की तरह आप भी यथार्थ से आदर्श की ओर उन्मुख होते रहते हैं। अपने साहित्यिक जीवन की इन प्रारम्भिक घटना-प्रधान कहानियों में उन्होंने भी सुधार की प्रवृत्ति अधिक दिखाई है। 'रक्षा-बन्धन', 'पावन-पतित' आदि कतिपय कहानियों द्वारा हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनमे दैवी घटनाओं और आकस्मिक सयोगों के द्वारा पाठकों की कौतूहल-वृत्ति तो अवश्य शान्त हो जाती है, किन्तु कला और चरित्र के सौन्दर्य की झाँकी नहीं दिखाई देती, जो आधुनिक कहानियों की प्रमुख विशेषता है। ये सब कहानियाँ सामाजिक क्षेत्र से अधिक सम्बन्ध रखती हैं, जिनके अन्तर्गत उन्होंने पारिवारिक गार्हस्थ्य जीवन के बडे ही सुन्दर और स्वाभाविक चित्र अंकित किए हैं। वास्तव मे इस क्षेत्र में आप बे-जोड़ हैं और इसी में उनकी मौलिकता है। उनकी कहानियों का एक सुन्दर विकास उन चरित्र-प्रधान कहानियों में दिखाई देता है, जहाँ उन्होंने प्रधान-

पात्र के चरित्र मे अचानक परिवर्तन उपस्थित कर दिया है। ऐसे समय उन्होंने विशेष प्रभाव-शैली और महत्त्वपूर्ण प्रसंगों को बड़ी होशियारी और सतर्कता के साथ चुना है। उनकी 'ताई' नामक कहानी से कौन पाठक परिचित नहीं है? यहाँ आकर उनकी कहानी-कला का चरम-विकास दिखलाई पड़ता है। कौशिकजी का यह एक बहुत ही उपयोगी हथियार है, जिसका प्रयोग सोच-समझकर किया गया है। शेष कहानियों मे विषय-सामग्री सामाजिक कुरीतियों तथा रूढ़ियों से सम्बन्धित है। इन सामाजिक क्षेत्र का स्पर्श करने वाली कहानियों मे परदा-प्रथा का विरोध, बाल-विवाह, शिक्षित युवतियों से घृणा, ग्रामीण-समस्याओं आदि का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया गया है। प्रेमचन्द और कौशिक इस क्षेत्र मे एक हो जाते है। इन समस्त कहानियों के सम्बन्ध मे एक बात और विचारणीय है। इनका आरम्भ अधिकांश मे प्रसाद की कहानियो की तरह संलाप-ढंग से हुआ है, जो रोचक तथा आकर्षक है। विकास और अन्त सीधे-सादे हैं। कौशिकजी सचमुच मे कहानियों का आरम्भ करने मे चतुर हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने कुछ हास्यपूर्ण कहानियाँ भी लिखी है, जैसे 'दुबे जी की चिट्ठी' आदि।

पात्रों के चरित्र-चित्रण के विषय मे कौशिक का मत स्पष्ट है—'नित्य जो चरित्र देखने को मिलते है, उन चरित्रो से भिन्न कोई ऐसा अनोखा चरित्र उपस्थित करना, जिसे देखकर विज्ञ पाठक फड़क उठे—उनके हृदय मे यह बात पैदा हो कि मनुष्य-चरित्र के सम्बन्ध में उन्हे कोई नई बात मालूम हुई, यही चरित्र-चित्रण की कला है।' कहना न होगा कि अपने इस सिद्धान्त मे उन्हें भरपूर सफलता मिली है। 'पगली' और 'ताई' मे इस भावना को मूर्तिमान कर दिया गया है। पात्र थोड़े हैं, घटनाओं के अनुसार उनकी चारित्रिक विशेषताएं सुन्दर रूप से दिखलाई गई हैं। कौशिक की कहानियों में कथोपकथन की योजना के द्वारा बडे कौशल से चरित्र-चित्रण किया गया है—पात्रों की मानसिक स्थितियो का अच्छा चित्रण हुआ है। मानसिक भावनाओं के विश्लेषण मे भी वे समर्थ है। प्रत्येक पात्र की कुछ-न-कुछ सलक्ष्य विशेषताए होती है, जिनका निर्वाह परिस्थितियों के अनुकूल होता रहता है। चरित्र-चित्रण और मानसिक विश्लेषण की दृष्टि से उनकी कहानियाँ हिन्दी-साहित्य मे एक विशेष महत्त्व रखती है।

कथोपकथन तथा भाषा-शैली मे कौशिक प्रेमचन्द के समीप है। कथोपकथन सरल, संक्षिप्त और स्वाभाविक हैं, उनमे पात्रों की अनुकूलता का

बराबर ध्यान रखा गया है। ये संलाप कथानक और चरित्र-विकास में सहायक हुए हैं। कहीं-कहीं सिद्धान्तों के फेर में पड़ने के कारण उनका अनावश्यक विस्तार भी हुआ है। यह उनके संलापों का दोष ही समझा जायगा। भाषा और शैली पर उनकी अपनी छाप है। प्रेमचन्द और सुदर्शन से सादृश्यता होने पर भी उनकी निजी विशिष्टताएं हैं। उनकी भाषा सुन्दर, सरल और व्यावहारिक है। वह भावों के लिए उपयुक्त बन पड़ी है। भाषा परिमार्जित है। उसमें हिंदी उर्दू दोनों प्रकार के शब्द पाये जाते हैं।

कौशिक जी की कहानियों का उद्देश्य प्रेमचन्द की तरह साफ-सुथरा है। उसके समझने में हमें अधिक देर तक विचार नहीं करना पड़ता। आरम्भ का पृष्ठ पढ़कर उसका अन्दाज़ा हम आसानी से लगा सकते हैं। जैसा कि कहा जा चुका है, उन्होंने हमारे सामाजिक क्षेत्र को स्पर्श किया है, इसलिए उनकी कहानियों का उद्देश्य सामाजिक कुरीतियों तथा रूढियों को हटाना ही है। यही सन्देश उन्होंने अपनी कहानियों में दिया है और इसके लिए उन्होंने यथार्थ जगत् से अपने पात्रों को लेकर उन्हें आदर्शवाद की ओर ढकेल दिया है। संक्षेप मे, अथवा यों कहिये कि कौशिक की कहानियों का प्रधान उद्देश्य 'सुधार' है। अस्तु,

बेचन शर्मा 'उग्र'—शैली की दृष्टि से पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' और चतुरसेन शास्त्री अपने समकालीन बहुत-से कहानी-लेखकों को पीछे छोड़ जाते हैं। भाषा-शैली की दृष्टि से उग्र पूर्ण रूप से मौलिक हैं और उस क्षेत्र में वे अपना सानी नहीं रखते। उनकी कहानियों को पढ़कर हमें बाध्य होकर यही कहना पड़ता है कि हिन्दी के वे एक प्रमुख शैलीकार हैं। 'उग्र' परम्परागत विचारों, रूढ़ियों और गतानुगतिकता के कट्टर शत्रु हैं। उनकी कहानियों के ऊपर राजनीतिक गतिविधियों का विशेष रूप से प्रभाव पड़ा है, स्वयं उन्होंने असहयोग आदोलन मे भाग लिया था। उन पर रूसी कहानियों का भी पर्याप्त मात्रा मे प्रभाव पड़ा है। उनकी विचार-धारा का मूल स्रोत वहीं से समझना चाहिए। स्वभाव से 'उग्र' उद्दण्ड है। उनमें प्रतिभा है और है कहने की एक विशेष पद्धति, जिससे वे श्रेष्ठ कलाकारों में प्रतिष्ठित किये जा सकते हैं। यद्यपि कुछ विशेष बातों को लेकर हिन्दी-कहानी-साहित्य में आपका काफी वाद-विवाद होता आया है, किन्तु फिर भी वे अपने विशेष मार्ग पर ही चल रहे हैं। 'चिनगारियाँ', 'इन्द्रधनुष', 'निर्लज्ज', 'रेशमी', 'दोजख की आग' आदि उनकी ऐसी कहानियों के संग्रह हैं।

'उग्र' ने अपने प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन-काल में अधिकांश राजनीतिक आंदोलन से संबन्ध रखने वाली कहानियाँ लिखी हैं। उच्च कलापूर्ण राजनीतिक कहानियों का सूत्रपात वास्तव मे उन्हीं के द्वारा होता है। उन्हें पीड़ित समाज के अंग-विशेष का चित्रण करने मे अपूर्व सफलता मिली है। इन कहानियों मे वे एक कट्टर यथार्थवादी लेखक के रूप मे आते हैं और आदर्शवाद की सर्वथा उपेक्षा करते हैं। राजनीतिक आन्दोलन में सम्मिलित नवयुवकों के स्वदेश-प्रेम, त्याग, साहस और जीवनोत्सर्ग का चित्रण करने का अच्छा अवसर हाथ लगा है। 'चिनगारियाँ' की कहानियों के द्वारा इस कथन की पुष्टि होती है। उनके हृदय की भीषण आग को प्रज्वलित होते देखकर ही यह संग्रह जब्त कर लिया गया था। आपकी कुछ कहानियाँ प्राकृतवादी (Naturalistic) ढंग की हैं, जो सामाजिक उद्देश्य को लेकर लिखी गई हैं। इनमें समाज के सुधार की प्रवृत्ति के साथ-ही-साथ मानवता की लज्जाप्रद और घृणास्पद बातें कलात्मक सौंदर्य के साथ चित्रित की गई है। कथानक प्रायः कुरुचिपूर्ण हैं, वे वेश्याओं, विधवाश्रमों की अवलाओं, भिखमंगों तथा गुण्डों को लेकर चले हैं, जिनका उन्होंने नग्न-स्वरूप उपस्थित किया है। समाज के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के बीच धर्म, समाज-सुधार, व्यापार-व्यवसाय, सरकारी काम, नई सभ्यता और संस्कृति आदि की ओट मे नित्य-प्रति होने वाले पाषंडपूर्ण पापाचारों की जीती-जागती तस्वीर देखनी हो तो इन सामाजिक कहानियों में देखिये। वास्तव में सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों को स्पर्श करने वाली उनकी कहानियाँ बड़ी ही चटकीली हैं। इन दोनों प्रकार की कहानियों के अतिरिक्त उन्होंने थोड़ी कलापूर्ण प्रभाव-प्रधान कहानियाँ भी लिखी हैं, जिनमें मानव-जीवन और सामयिक सत्यों की पुराण-कथा के रूप मे बड़ी ही भव्य व्यंजना हुई है। 'देश-भक्त' को ही देखिये, पुराण-कथा के रूप मे एक सुन्दर कहानी की सृष्टि हुई है। इससे उनकी कहानियों की कलात्मकता और व्यंजना-शक्ति में अपूर्व वृद्धि हुई है।

'उग्र' जी की उपरोक्त कहानियाँ पात्र और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उपेक्षणीय नहीं। उनके पात्रों की रूप-रेखा बिलकुल स्पष्ट है। चित्र अद्भुत, आकर्षक और सजीव हैं। वे पाठकों के हृदय को स्पंदित करना खूब जानते हैं, इसलिए उपयुक्त स्थल पर पात्रों के मनोभावों का भी चित्रण साथ-साथ करते चलते हैं। दृश्यों मे चिर-स्थायी प्रभाव है, एक बार के पढ़े हुए दृश्य फिर भुलाये नहीं जा सकते। जिन पात्रों को चरित्र-चित्रण के लिए चुना गया है,

उनकी मानसिक उथल-पुथल तथा भाव-धारा से आप पूर्णतया परिचित हैं। 'उसकी माँ' कहानी में पात्रों के मनोभावों का सूक्ष्म विश्लेषण इस कथन का साक्षी है। ऐसे अवसर पर वे श्लीलता-अश्लीलता को क्षण-भर के लिए भूल जाते हैं और प्रस्तुत चित्र मे इतने तन्मय हो जाते हैं कि फिर उन पर किसी बात का नियन्त्रण नहीं रह जाता। इसीलिए उनके पात्रों का चरित्र-चित्रण आवश्यकता से अधिक यथार्थ है। 'इन्द्र-धनुष' और 'दोज़ख की आग' के प्राय समस्त पात्र ऐसे ही हैं।

कथोपकथन और भाषा-शैली की दृष्टि से तो वे पूर्ण मौलिक है। कथोपकथन संक्षिप्त, सरल और स्पष्ट हैं। पात्रों के अनुकूल एक सीमित क्षेत्र में अन्य भाषाओं के शब्द स्वाभाविकता के लिए उन्होंने अपनाए हैं। सुधारवादी होने पर भी कहीं भी सलापों का अनावश्यक विस्तार उन्होंने नहीं किया है। सामान्य रूप से यहाँ उनकी भाषा सीधी-सादी, और हृदय की चुटकी लेने वाली होती है। उनकी सबसे बड़ी देन, जिसके कारण कहानी-साहित्य में उनका नाम लिया जाता है, भाषा-शैली है। उन्होंने एक नवीन भाषा-शैली का निर्माण किया, जिसकी समानता आज तक कोई नहीं कर सका है। उनके-जैसी सुन्दर आलंकारिक, जोरदार और प्रवाहपूर्ण कहानियाँ तथा गजब के वर्णन अन्य कहानियो मे ढूँढ़ने से भी नहीं मिलेंगे। उनकी भाषा-शैली की विशेषताओं को आप किसी भी कहानी मे देख सकते हैं। विस्तार-भय से यहाँ केवल अति आवश्यक प्रसंगों का ही उल्लेख किया जायगा। उनकी शैली की विशेषताएं इस प्रकार हैं —

१ उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी स्वाभाविकता है। इसके लिए उन्होंने व्यावहारिक रूप का ही ध्यान रखा है। प्रचलित देशज शब्द भी उन्हें मान्य हुए है। कृत्रिमता, व्यर्थ का पाण्डित्य-प्रदर्शन उनमें रत्ती-भर भी नहीं है। भावावेश में आकर चाहे जिस व्यक्ति के ऊपर वे लिखे, सर्वत्र उनका यही गुण लक्षित होता है। यथा—'लड़कपन के खो जाने पर उन्मत्त जवानी फूल-फूल कर हँस रही थी। बुढापे के पाने पर फूट-फूट कर रो रही थी। उस रोने मे दु:ख नहीं सुख था। सुख ही नहीं, स्वर्ग भी था। इसे पाने में सुख नहीं है, दु ख ही नहीं, नरक भी है। लड़कपन का खोना वाह ! वाह !! बुढ़ापे का पाना हाय ! हाय !!'

२. उनकी भाषा की भाव-भंगी, उमग, चचलता और मादकता, तथा वातावरण से ऊपर उठने की शक्ति ही निराली है। अलंकार-विधान उनकी दूसरी

विशेषता है। उपमान प्रस्तुत करते समय वे एक के बाद दूसरे उपमानों की झड़ी लगा देते हैं, जिससे भाषा मे चमत्कार आ गया है, जैसे 'मेरी एक माँ थी। मसजिद की तरह बूढ़ी, आम की तरह पकी, दया की तरह उदार, दुआ की तरह मददगार, प्रकृति की तरह करुणामयी, खुदा की तरह प्यारी और कुरान पाक की तरह पाक।'

३. साम्य-स्थापन की 'उग्र' मे अद्भुत क्षमता है। इसीलिए रूपकों मे चमत्कार तथा सादृश्य आदि की बहुत मनोहर योजना हो सकी है यथा—'रोज की बात है। तुम भी देखते हो, मैं भी देखता हूँ, दुनिया भी देखती है। सायंकाल अस्ताचल की छाती पर पतित- मूर्छित दिनमणि कैसा अप्रसन्न कैसा निर्जीव रहता है। वह गुलाबी लड़कपन नहीं, वह चमकती-दमकती गरम जवानी नहीं, वह ढलता हुआ कंपित करो वाला व्यथित बुढ़ापा नहीं। श्री नहीं, तेज नहीं, ताप नहीं, शक्ति नहीं। उस समय सूर्य को उसकी दिन-भर की घोर तपस्या, रसदान, प्रकाशदान का मूल्य मिलता है ?'

४ चमत्कार उत्पन्न करने के उद्देश्य ही से कर्ता, क्रिया, कर्म आदि के निर्दिष्ट स्थानों मे भी परिवर्तन देखने को मिलता है, जैसेः—'हमारे यहाँ बाकायदा आर्य समाज भवन हैं और है उसके मंत्री, सभापति।'

५. कुछ वाक्यों मे महत्त्वपूर्ण शब्दों को पाठकों का ध्यान आकर्षित करने के लिये दोहरा भी दिया जाता है, जैसे.—'ईश्वर की इच्छा, उसी रात को हमारे गाँव मे भयानक आँधी आई और आई अपने साथ 'आग की एक चिनगारी लेकर।'

६. छोटे-छोटे वाक्यों का शब्दो के रूप मे प्रयोग करना भी उनकी एक विशेषता हैः—'पुरुष, खाने-पीने-पहनने के दु ख के साथ "कोई साथी नही है" को भी दुःख समझता है।'

७. कहीं-कहीं भाषा मे उन्होने वक्रता के साथ अपने भावो की अभिव्यंजना की है, जिससे लाक्षणिकता आ गई है, जैसेः—'वह यौवन मे पदार्पण कर रहा था' के स्थान पर यह वाक्य—'वह बचपन के स्वर्ग से धकेल जरूर दिया गया था, पर अभी ड्यौढ़ी के भीतर ही था—बाहर नहीं।'

८. मूर्तिमत्ता ने उनकी भाषा के सौंदर्य को और भी बढ़ा दिया है, जैसे 'मनुष्य की विवशता ही भगवान् की जननी है।'

९. 'उग्र' भाषा की उस शुद्धता के विरोधी हैं, जहाँ प्रचलित विदेशी शब्दो को न अपनाकर स्वाभाविकता की हत्या कर दी जाती है। जैसे पात्र है,

वैसी ही उनकी भाषा। 'देश-भक्त' में विधाता ब्राह्मणी से कहते हैं—'देखती हो, देशभक्त के चरण-स्पर्श से अभागा कारागार अपने को स्वर्ग समझ रहा है, लोहे की जंजीरों–हथकडी-बेड़ियों–ने मानो पारस पा लिया है। संसार के हृदय मे प्रसन्नता का समुद्र उमड रहा है, वसुन्धरा फूली नहीं समाती! यह है मेरी कृति, यह है मेरी कृति, यह है मेरी विभूति—प्रिये गाओ, मंगल मनाओ, आज मेरी लेखनी धन्य हुई।' इस प्रकार संलाप मे पात्र के ऊपर उनकी भाषा का स्वरूप निर्भर करता है।
१० उग्र की स्वच्छन्द भावावेश की शैली में संस्कृति के रस-सिक्त शब्दों के प्रयोगों की प्रधानता है। यहाँ वाक्य भी लम्बे-लम्बे हैं, जैसे.—'विजयिनी संध्या के प्रचण्ड पराक्रम से पराजित, अपमानित और दु.खित चढकर रक्ताम्बरा पश्चिमा के लाल अञ्चल से अपने क्लात कलेवर को छिपाता अस्ताचल के घोर अंधकारमय गह्वर की ओर भागा चला जा रहा था।'

उद्देश्य की दृष्टि से उग्र एक सफल कहानीकार हैं और इसमे उनकी अपनी निजी विशेषता भी है। उन्होंने स्वप्न की अपेक्षा सत्य की ओर ही अपनी दृष्टि जमाये रखी है और जैसा जो-कुछ भी समाज मे तथा राजनीति मे देखा और अनुभव किया, उसका यथातथ्य चित्र अंकित कर दिया। यह बात दूसरी है कि वे इन विषयों में बहुत दूर तक चले गए हैं। मेरा अभिप्राय कठोर नग्नता से है। तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों को समझने मे उनकी कहानियाँ हमारी सहायता करती हैं और यही उन कहानियों का उद्देश्य है।

चतुरसेन शास्त्री—शैली के विचार से पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री में आसमान-जमीन का अन्तर होने पर भी शास्त्रीजी 'उग्र' के ही अनुयायी समझे गए थे। शास्त्रीजी ने भी यथार्थवाद के चक्कर में आकर अपनी बहुत-सी कहानियों को कुरुचिपूर्ण अवश्य बना दिया है, लेकिन यह तो मानना ही पडेगा कि वे एक उच्चकोटि के कहानी-लेखक हैं। कहानी-लेखक की अपूर्व प्रतिभा का उपयोग यदि उन्होंने किसी भिन्न रीति से किया होता तो यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि उनका स्थान हिंदी-कहानी-लेखकों में सर्वोच्च हो जाता एक कुशल उपन्यास तथा गद्य-काव्य-लेखक होने के कारण उन्हें छोटी-छोटी कलापूर्ण कहानियाँ लिखने में भरपूर सहायता मिली है। चतुरसेन शास्त्री भी हिंदी के एक पुराने कहानी-लेखक हैं। आपने सन् १६१४ ई० से ही लिखना आरम्भ कर दिया था और आज भी उसी तत्परता के साथ लिखने मे सलग्न

हैं। शैली की दृष्टि से आपका नाम भी सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखकों में गिना जाता है। 'रज-कण', 'अक्षत' आदि आपकी सुन्दर और सफल कहानियों के संग्रह हैं।

चतुरसेन शास्त्रीजी की कहानियाँ आकार में बहुत छोटी होती हैं, इसीलिए उन्हें पढ़ते समय पाठक का जी नहीं ऊबता। फिर उनके शीर्षक इतने चित्ताकर्षक होते हैं कि ये हमे उनकी ओर खींचकर पढ़ने के लिए मजबूर कर ही देते हैं। इनकी कहानियों का विकास बड़ा ही सुन्दर होता है। आरम्भ के बाद जितना उत्कृष्ट विकास इनकी कहानियों में हो पाया है, वैसा किसी अन्य लेखक की कहानियो मे नहीं, यह हमे सदैव याद रखना चाहिए। अपनी कहानियों के विकास मे वे कुतूहल-वर्धक घटनाओं के लिए इतना अच्छा सामान तैयार कर लेते है कि कहानो थोड़ी-थोड़ी देर बाद अपना पहलू बदलती रहती है। पाठक विस्मय-विमुग्ध होकर उस पर लट्टू हो जाता है और जब तक कहानी समाप्त नहीं कर लेता तब तक उसे चैन नहीं मिलती। 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। 'पान वाली' भी कोई कम सुन्दर नही है, यद्यपि पहली कहानी हिंदी मे बेजोड़ समझी जाती है।

शास्त्रीजी ने अनेक विषयों को लेकर अपनी कहानियाँ लिखी है। 'उग्र' की तरह कुछ कहानियाँ प्राकृतवादी (Naturalistic) ढंग की हैं जिनका मुख्य उद्देश्य समाज का सुधार करना ही है। इस प्रवृत्ति के कारण 'अक्षत' की अनेक कहानियों मे आपकी कहानो-कला को धक्का लगा है और उनमे 'रज-कण' का-सा अनिर्वचनीय आनन्द नहीं दिखाई देता। इस ढंग की कहानियों मे उनके कथानक वेश्याओं, गुण्डो आदि से ही लिये गए हैं। कला की दृष्टि से तो हमें यहाँ कुछ नही कहना, किन्तु जनता की भावना की दृष्टि से उनका मूल्य कुछ कम अवश्य हो जाता है। शास्त्रीजी का यथार्थ मूल्यांकन उनकी ऐतिहासिक कहानियो के द्वारा किया जा सकता है। यहाँ उन्होंने कमाल कर दिखाया है। कल्पित आदर्श का सन्निवेश करके वे पाश्चात्य कहानियो की रीति को हिंदी मे सर्व प्रथम लाए है। वीर-गाथाओं का विस्तृत एवं सूक्ष्म अध्ययन होने और तत्कालीन वातावरण से पूर्ण जानकारी होने के कारण वे बहुत ही सुन्दर कथानक की सृष्टि करने मे समर्थ हुए हैं। 'दे खुदा की राह पर', 'भिक्षुराज' आदि उनकी इस क्षेत्र की प्रतिनिधि कहानियाँ है।

चतुरसेन शास्त्री की महत्ता इसी बात में है कि वे छोटी-से-छोटी सामाजिक

तथा ऐतिहासिक घटना को, चाहे वह कैसी ही क्यों न हो, आकर्षक तथा मनोरंजक बना देते हैं। 'ककड़ी की कीमत' एक ऐसी ही कहानी है। उनके कथानक के सम्बन्ध में एक बात और भी विचारणीय है। ये स्वाभाविक आकस्मिक घटनाओं की इन कहानियों मे अवतारणा अवश्य करते हैं, किन्तु उनके द्वारा कहानी पर किसी भी प्रकार का प्रभाव नहीं पडता है। कुशल और प्रतिभा सम्पन्न लेखक ऐसे ही होते हैं।

शास्त्रीजी के पात्रों के चरित्र-चित्रण मे सजीवता और स्वाभाविकता है। घटनाओं के परिवर्तन के साथ-ही-साथ पात्रों मे जीवन का संचार हो उठता है। वे अपने पैरों पर खडे होकर स्वच्छंदता से घूम-फिर सकते हैं। उनमें पारस्परिक संघर्ष उत्पन्न करने का सुन्दर अवसर दिया गया है। चरित्र-चित्रण की इस कुशलता का प्रमुख कारण यही है कि लेखक ने स्वयं अपने मनोभावों को समझने की चेष्टा की है। मन की भावनाओं का सूक्ष्म विवेचन तथा विश्लेषण उनके पात्रों की विशेषता है। करुणा, हास्य, वीर एव शृङ्गार आदि भावों से सम्बन्ध रखने वाली भावनाए उनके सभी पात्रो मे उठती रहती हैं। वर्णन करने मे तो आप अपना सानी नहीं रखते। कहानियों मे जिस काल का जो वर्णन एक बार हमने पढ़ लिया है, उसे हम कदापि नहीं भूल सकते। यहाँ उनकी दृष्टि स्थूल और सूक्ष्म दोनों पदार्थों की ओर लगी रहती है। पाठक का मन इन वर्णनो को पढ़कर भूलने लग जाता है। लेखक की तन्मयता और मस्ती भी यहीं देखने को मिलती है। उनके पात्रों की भाषा व्यावहारिक और अकृत्रिम है। पांडित्य-प्रदर्शन के लोभ मे तो वे न तो कभी पड़े और न पड़ना ही चाहते थे। इसीलिए स्वाभाविक भाषा के कारण कहानियों में अनेक गुण आ गए है। भाषा पात्रों के अनुकूल ही बन पड़ी है, इसलिए उसमे सजीवता आ गई है। शैली के विचार से तो हमें उनमे अनेक विशेषताए लक्षित होती हैं, जिनमें प्रमुख ये हैं—

१ शास्त्रीजी के शब्दों के प्रयोग मे यह बात ध्यान देने योग्य है कि वे तत्सम शब्दों के साथ प्राय तद्भव शब्दों को भी रख देते हैं, जिससे उनकी शैली मे एक अनूठा माधुर्य आ गया है। जैसे, उछाह, लच्छन, हुलास आदि।

२. उनकी दूसरी विशेषता स्थानीय मुहावरों का प्रयोग है, जिससे भाषा की शक्ति बढ़ गई है तथा उसमे सौंदर्य भी आ गया है। कहानियों के लिए इस प्रकार के मुहावरों के प्रयोग से उनकी लोक-सत्ता का अच्छा प्रसार

होता है। जैसे, घूँसों से लड़ना, धमर कुटाई करना, धौल-धप्पा, लल्लो-चप्पो नहीं छोड़ना आदि।

३. उनकी भाषा में संकोच और व्यावहारिकता है, क्योंकि उन्होंने विभक्तियों का प्रयोग कम किया है और शब्द छोड़ दिए हैं। भाषा की उन्नति को देखकर ऐसा होना अपेक्षित ही है। जैसे, 'इस तरह चुपचाप आहे भरने से तो न चलेगा' 'धनी के सब साथी होते हैं' आदि। यहाँ पहले वाक्य में 'कर्ता' और दूसरे में 'विशेष्य' नहीं है, फिर भी हम उसका आनन्द लूट सकते हैं।

४ उनकी कहानियों के विषय के अनुसार भाषा का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहता है। यथा, किसी मुसलमानी राज्य की कहानी लिखते समय उनकी कहानी में उर्दू-फारसी के शब्द अधिक ही देखने को मिलेंगे।

५. भाषा का स्वरूप प्रायः समस्त कहानियों में जन-प्रचलित है। उसमें सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग देखने को मिलेगा।

६. पात्रों के मनोवेगों का वर्णन वैज्ञानिक ढग से किया गया है और साथ ही सूक्ष्म विषय का सम्यक् दृष्टि से प्रतिपादन किया गया है। वाक्यों की लघुता की ओर यहाँ ध्यान अधिक दिया गया है।

भाषा-शैली की इन समस्त विशेषताओं के कारण ही उनके चरित्र-चित्रण में अधिक सजीवता आ गई है, कथा में उत्सुकता बनी रहती है और कहानी के मौलिक हो जाने में कोई सन्देह ही नहीं रह जाता।

जहाँ तक इन कहानियों के उद्देश्य का सम्बध है, हम स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि उनमें सामाजिक सुधार की कोई-न-कोई भावना अवश्य विद्यमान रहती है। लेकिन इतना होते हुए भी पाठक उनके वर्णन-चातुर्य में इतना तल्लीन होता है कि उद्देश्य की ओर उसका ध्यान जाता ही नहीं। शास्त्रीजी तो उसकी सूक्ष्म झाँकी-मात्र देकर रह जाते हैं और सोचने-समझने का भार पाठकों पर ही छोड़ देते हैं।

राय कृष्णदास—फिर भाव-प्रधान कहानियाँ लिखने में पूर्ण पटु रायकृष्णदास हमारे सम्मुख आते हैं। कवि तथा गद्य-काव्य-लेखक होने के कारण उनकी कहानियों में भावनाओं का प्राबल्य स्वाभाविक ही है। इन समस्त कहानियों में एक विशेष प्रकार का चमत्कार पाया जाता है। कहानियों में गद्य-गीतों के समान समर्थ तथा सशक्त भाषा-शैली के प्रतिष्ठापक आप ही हैं। 'सुधांशु' और 'अनाख्या' नामक उनके कहानी-संग्रहों में उनकी ऐसी ही कहानियाँ देखने को प्राप्त होती हैं।

राय कृष्णदास की कहानियों की विषय-सामग्री अत्यन्त विस्तृत है। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि अनेक क्षेत्रों से आप अपनी कहानियों की सामग्री ले लेते हैं, लेकिन ऐतिहासिक तथा सामाजिक कहानियों में आपको विशेष सफलता मिली है। 'गहूला', 'नर राक्षस', 'भय का भूत', 'प्रसन्नता की प्राप्ति' आदि कहानियों से आपकी कलात्मकता का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। कहीं-कहीं जहाँ आपने अपनी कहानियों मे दर्शन का पुट अधिक दे दिया है, वहाँ वे दुरूह हो गई हैं और इसीलिए जन-साधारण से भी दूर जा पड़ी हैं। इनमें पात्रों की मानसिक स्थितियों का अच्छा चित्रण किया गया है, लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि वे इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाते, साथ-ही-साथ वाह्य रूप-रेखा पर भी प्रकाश डालते चलते हैं। आपके वर्णनों में चित्रोपमता रहती है। किसी भी दृश्य का वर्णन चित्र के समान आँखों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। प्राकृतिक दृश्यों के प्रति आपका विशेष अनुराग है। अतः अपनी कहानियो में जहाँ कहीं भी अवसर प्राप्त हुआ है, आपने उसका मनोहर चित्र अंकित किया है। इन प्राकृतिक वर्णनों मे वे प्रकृति के सुन्दर उपादानों का उपयोग प्राय. किया करते हैं। कहीं-कहीं एक ही दृश्य के लिए आलंकारिक ढग से उनके प्राकृतिक उपादान एकत्रित कर देते हैं। कथोपकथन संक्षिप्त, सरल और स्वाभाविक हैं। उनमें उन्होंने किसी प्रकार की दुरूहता नहीं आने दी है। इनकी भाषा पात्रों के अनुरूप अपने स्वरूप मे आवश्यक संशोधन आप-ही-आप कर देती है। कथोपकथन में कहीं-कहीं ग्रामीण भाषा का प्रयोग और कहीं-कहीं उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। यह उन्होंने कहानी की व्यापकता को दृष्टि पथ पर रखते हुए किया है। अन्य स्थानों पर उनकी भाषा-शैली की सबसे बड़ी खूबी यही है कि उसमे वे ठेठ परिचित शब्दों का संस्कृत की कोमल पदावली के साथ बहुत ही सुन्दर ढग से सामञ्जस्य स्थापित कर देते हैं। संस्कृत-पदावली का प्रयोग कहानी में होना आवश्यक है—आप इस कथन से सहमत नहीं। कहानियों में सौन्दर्य की वृद्धि के लिए ही उन्होंने संस्कृत की कोमल पदावली को अपनाया है। आपकी कहानियों मे उद्देश्य या संदेश उसी प्रकार छिपा रहता है, जैसे सीपी मे मोती। उन्होंने बड़ी ही हल्की आवाज से अपने मन की बात पाठकों के कानों तक पहुँचाई है, जिससे उनमें आधुनिक रूप आ गया है। भाव और भाषा की दृष्टि से आप 'प्रसाद', विनोदशंकर व्यास और गोविन्द वल्लभ पंत के समकक्ष ठहराये जा सकते हैं।

राजा राधिकारमणप्रसादसिंह—शैलीकार की दृष्टि से आधुनिक कहानीकारों में राधिकारमणप्रसादसिंह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कहानी लिखने की सबसे प्रथम और प्रचलित शैली साधारण वर्णनात्मक ऐतिहासिक शैली थी, जिसमे कहानीकार इतिहासकार के समान तटस्थ सा होकर एक अन्य पुरुष की भाँति कहानी का वर्णन करता था। राधिकारमणप्रसादसिंह ने अपनी प्रथम कहानी 'कानों मे कँगना' के द्वारा इस शैली का परिष्कार किया। बँगला की कहानियों से प्रभावित होकर आपने इसी शैली मे नाटकीय तत्त्व का बीजारोपण सर्व प्रथम किया। एक सफल नाटककार जिस प्रकार आरम्भ ही मे संघर्ष की ओर संकेत कर देता है, उसी प्रकार आप कहानी के आरम्भ ही में इस शैली के द्वारा अपना मूल तत्त्व स्पष्ट कर देते है। आगे चलकर इसी शैली का एक विकसित रूप कौशिक और प्रसाद की कहानियों मे देखने को मिलता है।

राधिकारमणप्रसादसिंह की कहानियाँ संख्या की दृष्टि से बहुत थोड़ी हैं। उनमें हमे कहानी-कला के गुण कम देखने को मिलेगे। कुछ कहानियाँ लम्बी भी हो गई है, इसलिए उन्हे पढ़ते-पढ़ते हम ऊब जाते हैं। जहाँ इस बात का ध्यान रखा गया है, वहाँ कहानियाँ सुन्दर बन पड़ी है। राजा साहब की कहानियों मे उच्च वर्गों से लेकर निम्न वर्गों तक के लोगों का चित्रण किया गया है और इसमे उन्हे समान रूप से सफलता मिली है। आधुनिक भौतिकवाद, अंधवाद, अनाचारवाद तथा अध्यात्मवाद आदि का सुन्दर दर्शन उनकी कहानियों मे किया जा सकता है। उनकी कहानियों के संवाद कुछ लम्बे अवश्य हो गए है, फिर भी उनकी भाषा सुन्दर है। जहाँ तक वर्णनो का प्रश्न है, वे अलंकृत हैं। उन्होंने 'आजकल की टकसाली कला के पहलू मे अपनी पुरानी धज भी कायम रखने की कोशिश की है।'

शिवपूजनसहाय—अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ मे बाबू शिवपूजनसहाय ने कुछ अद्वितीय कहानियाँ अवश्य लिखी थीं, जिनसे उन्होंने पाठको का ध्यान अपनी ओर आकर्षित तो किया, लेकिन आगे चलकर वे अपने इस क्रम को जारी नहीं रख सके। इसीलिए हमें केवल उनकी अल्प कहानियों को पढ़कर ही सन्तोष कर लेना पड़ता है। शैली की दृष्टि से आपका कोई सानी नहीं है, इस बात मे हिन्दी-संसार आपका लोहा मानता है। कहानियों की भाषा निबंधो की भाषा से भिन्न है। इनकी रुचि सजावट की ओर अधिक रहती है। कहानियो की भाषा बड़ी ही क्लिष्ट है। इस दुरूहता को लेकर आपकी समानता पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्म-कथा'

नामक उपन्यास की भाषा से की जा सकती है। इस भाषा मे हमे काव्य का-सा आनन्द आने लगता है। इन कहानियों का प्रमुख उद्देश्य परम्परागत रूढियों और विश्वासों का खण्डन करना है।

विनोदशकर व्यास—आधुनिक कहानी-लेखको मे, पंडित विनोदशकर व्यास का नाम सगर्व लिया जा सकता है। आप जयशंकर 'प्रसाद' के अनुयायी हैं। उन्हीं के ससर्ग से आप पठन-पाठन को ओर प्रवृत्त हुए तथा उन्हीं से प्रभावित होकर कहानी और उपन्यास को अपना विषय बनाया। इसलिए आप पर 'प्रसाद' का प्रभाव पडना अवश्यंभावी है। इस प्रभाव के अतिरिक्त आपमे एक विशेष प्रकार की कहानी लिखने की क्षमता है, जिनमे उनकी अपनी छाप है। 'तूलिका', 'भूली बात', 'मधुकरी २ भाग', 'नव पल्लव', 'उसकी कहानी', 'मणि-दीप' आदि उनकी कहानियों के अच्छे सग्रह हैं। 'भूली बात' सग्रह की कहानियॉ साहित्यिक दृष्टि से उच्चकोटि की हैं।

पडित व्यास की अधिकाश कहानियॉ भाव-प्रधान होती हैं, जिनमे हृदय की प्रधानता है, मस्तिष्क की अपेक्षाकृत कम। प्राय सभी कहानियॉ आवश्यकता से अधिक छोटी हैं, इसलिए इनके पढने मे अधिक समय नहीं लगता। यहॉ यह उल्लेख कर देना असगत न होगा कि हिन्दी-साहित्य मे आकार मे अत्यन्त छोटी होने पर भी आपकी कहानियॉ सभी गुणों से विभूषित हैं। इस दृष्टि से आपकी समानता किसी दूसरे से नहीं की जा सकती 'प्रसाद' की तरह आप भी इनमे कल्पना और भावना की उड़ानें भरते है, जिससे कहीं-कहीं कहानियॉ रहस्य-प्रधान भी हो गई हैं। विषय-सामग्री इन कहानियों में नगण्य है।

व्यासजी ने केवल एक-दो पात्रो से ही अपनी कहानियों मे काम चला दिया है। पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने मे आप पूर्ण रूप से सिद्धहस्त है। उनके पात्र सजीव हैं। वे यथार्थ से आदर्श की ओर ही उन्मुख होते रहते हैं। सलाप अति-सक्षिप्त और हृदय पर चोट करने वाले हैं। यहॉ उन्होने स्वाभाविकता का अधिक ध्यान रखा है। व्यासजी की भाषा-शैली की विशेषताए इनकी कहानियों मे भी उतर आई है। भाषा सरल, सीधी और मधुर है।

जहॉ तक उद्देश्य का प्रश्न है, हम कह सकते हैं कि इन्होंने किन्हीं सिद्धान्तों से प्रभावित होकर अपनी कहानियॉ नहीं लिखी है। न तो आपने इन कहानियों के द्वारा समाज-सुधार करने की ही चेष्टा की है और न पृथ्वी

पर स्वर्ग-लोक को ला बिठाया है। उनमे न यथार्थ का पूर्ण पोषण है और न आदर्श का। दैनिक जीवन की जिन-जिन मार्मिक घटनाओं का आपके हृदय-पटल पर प्रभाव पडता जाता है, उसी का सजीव चित्र खींचकर पाठकों के हृदय को द्रवीभूत कर देना आपकी कहानियो का उद्देश्य प्रतीत होता है। अतः हम कह सकते हैं इनकी कहानियाँ आधुनिक कहानियाँ होते हुए भी मानव-जीवन के छोटे छोटे, किन्तु अपने मे ही पूर्ण मार्मिक चित्र है। लेखक किसी भी वात का अनावश्यक वर्णन करता ही नहीं है। कहानी पढ़ते समय पाठक आँखे फाड़-फाड़कर देखता रहता है, किन्तु उसे कहीं भी उद्देश्य की झाँकी नही दिखाई देती। वक्तव्य विषय का पता लगाना जरा कठिन हो जाता है। कहानी कहाँ से उठकर कहाँ गिरेगी, इसका अन्दाज़ वहुत थोड़े पाठक ही लगा सकते है और इसी मे उनकी मौलिकता है। अतः हम निःसंकोच कह सकते हैं कि आपकी कहानियाँ साहित्यिक वर्ग के लिए जितनी आनन्ददायक हैं, उतनी अन्य वर्ग के लिए नहीं। व्यासजी अपने क्षेत्र मे मौलिक लेखक के रूप मे दृष्टिगत होते है। 'रूखा स्नेह', 'भूली वात', 'अपराध', 'हृदय की कसक', 'करुणा' आदि उन थोड़ी-सी कहानियों के नाम है, जिनमे उनके ये समस्त गुण देखे जा सकते हैं।

जैनेन्द्रकुमार—पंडित विनोदशंकर व्यास की ही तरह जैनेन्द्रकुमार आधुनिक कहानी-लेखकों मे हमारे सामने एक मौलिक लेखक के रूप मे आते हैं। आधुनिक कहानियों का विकास सर्व प्रथम प्रेमचन्द के द्वारा हुआ, जिन्होंने मनोविज्ञान की नींव डाली। फिर 'प्रसाद' तथा सुदर्शन ने उस नींव को सुरक्षित किया। आगे चलकर जैनेन्द्रकुमार ने अपने पूर्ववर्ती लेखकों के मानव-जीवन के साधारण पहलू को छोड़कर असाधारण परिस्थितियों मे चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना आरम्भ किया। इस दृष्टि से जैनेन्द्र ने प्रेमचन्द, प्रसाद और सुदर्शन के विकास-सूत्र को विस्तृत किया और उसमें 'आधुनिकता' का सन्निवेश किया। इसीलिए आपने हिन्दी-कहानी-क्षेत्र मे अपने लिए एक विशेष स्थान वना लिया है। 'वातायन', 'स्पर्द्धा', 'फाँसी', 'पाजेब', 'जय-संधि', 'एक रात', 'दो चिड़ियाँ' आदि आपके कहानी-सग्रह इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

साहित्यिक दुनिया मे स्वच्छंदता से विचरण करने तथा लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए जैनेन्द्र ने अपने लिए एक नवीन मार्ग का अनुसन्धान किया है, इसमे कोई सन्देह नहीं। जैनेन्द्र की समस्त

कहानियों पर 'आधुनिकता' का पर्याप्त मात्रा मे प्रभाव पडा है और इस आधुनिकता की प्रमुख विशेषताए हैं—आलोचनात्मक बुद्धि और वैज्ञानिक दृष्टिकोण। इन्हीं विशेषताओं के कारण आपकी कहानियों में व्यक्तित्व की स्थापना सुन्दर रूप से हो गई है। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के संस्पर्श से भारतीय विचार-धारा पर जो-जो प्रभाव पड़े हैं, उनका प्रतिबिम्ब आपकी कहानियों मे देखने को मिलेगा। साथ ही विषय-निर्धारण का जो मापदण्ड पश्चिम के देशों में रहा है, उसी से आप प्रेरणा भी लेते रहते हैं।

जैनेन्द्र की कहानियों की विषय-सामग्री इस भौतिक जगत् से सम्बन्ध रखती है। वे इसके लिए कहीं बाहर नहीं जाते। उन्हे अपना स्वरचित संसार ही अधिक प्यारा है। अपने घर में, गली में, शहर में तथा देश मे जिन-जिन भाव-विशेषों का प्रभाव उन पर पडता रहता है, उन्हीं को अपनी कहानियों का वे आधार बनाते हैं। विषय-सामग्री थोडी होने पर भी उनका चित्रण इतना मनोवैज्ञानिक होता है कि हमारा ध्यान कहानी पर से हटता ही नहीं। जैनेन्द्र आदर्शवादी अवश्य नहीं हैं, किन्तु कहानियों में जहाँ दार्शनिक ज्ञान का सूक्ष्म विश्लेषण करने लगते हैं, वहाँ कहानी-कला को धक्का अवश्य लग जाता है। पाठकों के लिए उनके इस ब्रह्म-ज्ञान का भार ढोना और वह भी कहानी के अन्त तक, सचमुच बडा कठिन हो जाता है। अपनी कहानियों में जैनेन्द्र को यह प्रवृत्ति अच्छी लगती है और दर्शन-ज्ञान की इस मोह-माया के कहीं-कहीं तो वे इतने वशीभूत हो जाते हैं कि कहानी शुष्क और नीरस हो जाती है, तथा जन-साधारण से दूर जा पड़ती है। जहाँ ऐसा नहीं हुआ है, वहाँ हमें उनका लोहा मानना ही पड़ेगा।

चरित्र-प्रधान कहानियाँ लिखने में जैनेन्द्र का स्थान बहुत ऊँचा है। जैसा कि संकेत किया जा चुका है इन पर अंग्रेजी कहानी-कला का विशेष प्रभाव पडा है। असाधारण परिस्थितियों में पात्रों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में वे एक अद्भुत और अद्वितीय लेखक हैं। जहाँ अन्य लेखक स्वाभाविकता की सीमा पर ही रहते है, वहाँ जैनेन्द्र अपने पात्र तथा परिस्थितियों मे बडी ही खूबी के साथ चीर-फाड करके उनकी चारित्रिक विशेषताओं का दिग्दर्शन करा देते हैं। कहानी पढ़ लेने के अनन्तर पाठक को यह ज्ञात होता है कि उसने एक कहानी ही नहीं पढ़ी है, एक भाव तथा घटित घटना से ही जानकारी प्राप्त नहीं की है वरन् वह देखा और पढ़ा है जो अब तक उसने देखा अथवा पढा नहीं था। वस्तुत: हम इसी निष्कर्ष पर

पहुँचते है कि मानव-जीवन के सम्बन्ध मे हमे 'कुछ और' मालूम हुआ है और इसी 'कुछ और', मे उनकी विशेपता तथा मौलिकता है। 'अपना अपना भाग्य', 'मास्टर जी', 'चलित-चित्त', 'जाह्नवी' आदि कहानियों में पात्रों की ये अनजानी मानसिक प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। इन्हीं चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन करना जैनेन्द्र की कहानियों का उद्देश्य समझना चाहिए।

संलाप तथा भापा-शैली में भी जैनेन्द्रजी हमारे सामने एक मौलिक लेखक के रूप मे आते हैं। पात्रों में मिश्रता, अजनवीपन तथा असाधारणता होने के कारण लेखक को भाषा-शैली मे वक्रता अपेक्षित हुई है। वे अपनी भाषा मे सीधे-सादे मार्ग का अवलम्बन नहीं करते। उनकी भाव-भंगी ही निराली है। उल्टी-सीधी भावों की कतर-व्योंत करती हुई जब उनकी भाषा चलती रहती है, तो उसमें अनेक स्थानों पर विरोधाभास के भी दर्शन होते हैं। ऐसा इसलिए हुआ है कि पात्रों के मनोभाव भी पल-पल में करवट वदलते रहते हैं। भापा सरल और व्यावहारिक है तथा वाक्य छोटे-छोटे। कहीं-कहीं केवल एक शब्द ही पूरे वाक्य के लिए रख दिया गया है, लेकिन फिर भी उसका भाव अच्छी तरह समझ मे आ जाता है। संलाप छोटे-छोटे और सरल हैं। उनके द्वारा पात्रों की चारित्रिक-विशेषताओं पर पूर्ण प्रकाश पड़ता रहता है। संक्षेप मे जैनेन्द्र भाषा, भाव, चरित्र आदि सभी स्थानों पर अपना एक विशेष मार्ग वनाते चलते हैं। यही उनकी विशेपता है, अद्वितीयता है, तथा मौलिकता है। आधुनिक लेखकों मे आपका नाम सदैव चिर-स्मरणीय रहेगा।

पं० ज्वालादत्त शर्मा—पंडित ज्वालादत्त शर्मा ने वहुत पहले से ही कहानी लिखना आरम्भ कर दिया था, इसलिए ऐतिहासिक दृष्टि से कहानी-साहित्य में उनका स्थान वहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि वे आरम्भ से लेकर अन्त तक लिखने का अभ्यास जारी रखते तो सम्भव था, कलापूर्ण कहानियों की सृष्टि करने मे अपने समकालीन वहुत-से लेखकों से आगे निकल जाते और उनका स्थान भी सर्वोच्च हो जाता, किन्तु थोड़े ही वर्षों के अनन्तर उन्होंने विश्राम ले लिया, इसलिए उनका स्थान वह नहीं रह गया, जो होना चाहिए था। इतना होते हुए भी निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होगा कि उन्होंने जो थोड़ी वहुत कहानियाँ लिखी हैं, उनका हिन्दी-जगत् ने विशेष रूप से आदर किया है। उनके द्वारा लिखी गई केवल दस-पन्द्रह कहानियाँ ही हमे उपलब्ध होती हैं, जिनमें एक-दो तो वहुत ही सुन्दर हैं।

उनके द्वारा प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन-काल में लिखी गई कहानियाँ घटना-प्रधान हैं, जो साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उदाहरण के लिए 'विधवा','तस्कर' आदि कहानियों को लीजिये, उनमे केवल तत्कालीन साहित्यिक अभिरुचि का ही प्रदर्शन अधिक किया गया है। उन प्रारंभिक कहानियों में कथानक का क्रमिक विकास दैवी घटनाओं और संयोगों के द्वारा ही हुआ करता था। मनोविज्ञान का आविष्कार उस समय तक नहीं हो पाया था, अतएव कहानियों को मनोरंजक बनाने के लिए कहानी-लेखकों ने अस्वाभाविक घटनाओं की अवतारणा करना हो अपना एक विशेष कौशल समझ रखा था। 'विधवा' और 'तस्कर' ये दोनों कहानियाँ आकस्मिक घटनाओं से परिपूर्ण हैं और पग-पग पर इन्हीं के सहारे करवट वदलती रहती हैं, इसलिए साहित्यिक दृष्टि से जहाँ तक कहानी की आत्मा और शैली का सम्बन्ध है, इनमें कोई नूतनता लक्षित नहीं होती। यहाँ तो लेखक का एक-मात्र ध्यान चरित्र को विविध परिस्थितियो मे डालकर एक मजेदार कहानी की सृष्टि करने की ओर अधिक लगा हुआ है। कला और चरित्र का सौंदर्य इनमे लेश मात्र भी नहीं है।

इनके बाद ज्वालादत्त शर्मा ने जो कहानियाँ लिखीं, उनमे 'भाग्य का चक्र' और 'अनाथ वालिका' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'भाग्य का चक्र' तो निर्दोष है। इन कहानियों को पढ़कर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आपको समाज का चित्र खींचने मे विशेष सफलता मिली है। कविता की तरह कहानियों मे भी यदि हमे विम्व-ग्रहण हो जाय, तो फिर उस कहानी की सफलता मे कोई सन्देह ही नहीं रह जाता। उनकी खूबी इसी बात मे है कि वे चाहे कैसा ही चित्र क्यों न हो, उसे यथा-तथ्य रूप मे अकित कर देते हैं। उस चित्र को देखकर हमारा हृदय द्रवीभूत हो जाता है और हम पात्रों का साथ देने के लिए तत्पर हो जाते हैं। करुण रस को जागृत करने के आप एक कुशल कलाकार हैं। भाषा इस भाव के अनुकूल वन पडी है, उसमे कोई दुरूहता नहीं, वह सीधे-सादे शब्दों को लेकर अपने लक्ष्य की ओर उन्मुख होती रहती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ज्वालादत्त शर्मा की एक-दो कहानियाँ उच्च कोटि की हैं। यदि इसी प्रकार वे लिखते रहते, तो अपने पीछे आने वाले कहानी-लेखकों को कदापि अपने आगे नहीं बढने दे सकते थे।

शिवनारायण द्विवेदी—पडित ज्वालादत्त शर्मा की तरह आपने भी केवल थोड़ी ही कहानियाँ लिखी हैं और उनमे केवल एक-दो ही महत्त्वपूर्ण हैं। अन्य कहानियों में कहानी-कला का कोई पूर्ति नहीं होती है। आप 'हिन्दी-

समाचार' का सम्पादन भी करते थे और यदा-कदा उसमें अपनी कहानियाँ भी प्रकाशित कराते थे। आपका कहानियों के लिखने का एक निश्चित उद्देश्य होता था और जहाँ उस उद्देश्य की पूर्ति होती, वहीं पर कहानी समाप्त हो जाती थी, चाहे कला की दृष्टि से उसमें कितने ही दोष क्यों न आ जाते हों। उनकी 'खानसामा' और 'नाटक' नामक कहानियाँ इस प्रकार के दोषों से रहित हैं। वास्तव में ये दोनों कहानियाँ लेखक की प्रतिभा और विद्वत्ता का अच्छा परिचय देती हैं। आपका क्षेत्र सामाजिक है और उसमें से आप अपने लिए बहुत ही स्वाभाविक घटनाओं को उठाते हैं। उनकी भाषा व्यावहारिक है, जो कहानी के लिए उपयुक्त ही है। शिवनारायण द्विवेदी की सबसे बड़ी सफलता इसी बात में है कि वे सीधे-सादे शब्दों में एक रोचक कहानी के रूप में अपने मन की बात कह देते हैं।

जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'—इस समय के लेखकों में पंडित जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' का नाम कभी नहीं भुलाया जा सकता, क्योंकि उनकी समस्त कहानियाँ इस प्रकार की हैं कि जिनमें करुण रस की अभिव्यक्ति एक मौलिक ढंग से हुई है। करुण रस को लेकर अन्यान्य लेखकों ने अपनी कहानियाँ न लिखी हों, सो बात नहीं है, पर आपकी कहानियों में जिस अबाध गति से यह धारा बहती है, उतनी अन्य लेखकों में नहीं। वस्तुतः इस प्रकार की कहानियाँ लिखने वाले लेखकों में आपका स्थान सर्वोत्तम है। आपने ऐसी कहानियाँ बहुत लिखी हैं, जिनका कि जनता में विशेष रूप से आदर हुआ है। 'किसलय', 'मालिका', 'मृदुदल', 'मधुमयी' आदि आपके कहानी-संग्रह इस सत्य के प्रत्यक्ष साक्षी हैं।

'द्विज' जी की कहानियों के भाव बड़े ही मार्मिक होते हैं। उन्हें पढ़ते ही हृदय के ऊपर प्रभाव पड़ जाता है। पाठक क्षण-भर के लिए अपनी पृथक् सत्ता से छूटकर उसमें इतना लीन हो जाता है कि फिर उसे वहाँ सुख-ही-सुख दृष्टिगत होने लगता है। भावों को जागृत करने वाला यह कलाकार उनकी अभिव्यंजना भी बड़े सुन्दर ढंग से करता है। 'द्विज' का भावों के ऊपर पूर्ण अधिकार है। उन्होंने अपने पात्रों को अच्छी तरह पहचाना है। इसके लिए उनके स्वयं के अनुभव तथा मनोभाव भी काम में आए हैं, इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता। भावों के साथ-ही-साथ आपकी भाषा भी मंजु और मनोहर है। उसमें खड़ी बोली का एक परिमार्जित रूप देखने को मिलता है। कवि होने के नाते इनकी कहानियों में हृदय की प्रधानता है, मस्तिष्क की नहीं। इसीलिए

केवल भाव और भाषा के बल पर आपने कहानी-साहित्य में अपना एक गौरवपूर्ण स्थान बना लिया है।

डॉ० धनीराम 'प्रेम'—इसी युग में डॉ० धनीराम 'प्रेम' ने भी कुछ सुन्दर कहानियाँ लिखीं, जो 'वल्लरी' मे सग्रह करके रख दी गई हैं। आधुनिक कहानी के आकार की दृष्टि से आपकी कहानियाँ कुछ लम्बी ही कही जायगी, लेकिन इतना होते हुए भी उनकी विषय-सामग्री इतनी मनोरजक है कि पढने वाला अघाता नहीं—उन्हे दिलचस्पी से पढ़ता रहता है। उनका आरम्भ, विकास और अन्त सुन्दर रूप से हुआ है, इसलिए पाठक इसे एक बार मे ही अथवा यों कहिए कि एक ही साँस मे पढकर छोडता है। यह आपकी कहानियों का विशेष गुण है। उनकी 'डोरा' कहानी हिन्दी-कहानी-साहित्य में विशेष ख्याति प्राप्त कर चुकी है। आपकी कहानियाँ विदेशी ढग पर लिखी हुई प्रतीत होती हैं, यही तो कारण है कि उनमें भारतीयता की झलक कम देखने को मिलती है। इस बात का उनकी कहानियों की भाषा पर भी प्रभाव पड़ा है। उसमे अन्यान्य भाषाओं के शब्द भी नि सकोच रख दिए गए है। सलाप छोटे-छोटे हैं और वे प्रश्नोत्तर के रूप मे चले हैं। पात्रों की भाषा उनके अनुसार सर्वथा उपयुक्त है। उन्होंने अपनी कहानियों के द्वारा विदेशी और भारतीय संस्कृतियों के समन्वय की चेष्टा की है। 'एकादशी' और 'चाँदनी' नामक उनके सग्रहों की कहानियाँ अपेक्षाकृत छोटी हैं। उनमें प्रेम की अभिव्यजना बहुत सुन्दर रूप से हुई है।

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी—हिन्दी-साहित्य के प्रसिद्ध मर्मज्ञ विद्वान् श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने कुछ कहानियाँ लिखकर अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। 'झलमला' आपकी सुन्दर कहानियों का संग्रह है। इस संग्रह की 'झलमला' नामक कहानी एक सफल रचना है। उसमे कहानी के समस्त गुण पाये जाते हैं। बख्शीजी की कहानियों की भाषा सरल, स्वच्छ और परिमार्जित होती है।

प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'—प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' ने कहानी-साहित्य के विकास में एक विशेष योग दिया है। सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली कहानियों के लिखने मे आप सिद्धहस्त हैं। आपकी निरीक्षण-शक्ति तीव्र है। समाज की समस्याओं के अन्तराल में प्रवेश करके आप अपने लिए कहानी के बीज बटोर ही लेते हैं, फिर भाव, कल्पना आदि से उसे सींचते रहते हैं। मार्मिक दृश्यो का चित्रण करने मे आपको भी विशेष सफलता

मिली है। छोटे-छोटे विषयों को उठाकर उन्हे हृदयग्राही बना डालने की आपमे एक अद्भुत क्षमता है। इस दृष्टि से आपकी तुलना पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी से की जा सकती है। आपके पात्रो के दु.ख-सुख मे हम भी हाथ बटाने को तत्पर हो जाते है, यह उस परिस्थिति की तीव्रता है, जिसे उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा प्रस्तुत किया है।

'मुक्त' की भाषा मँजी हुई और विषय सदैव हृदय को पुलकित करने वाले होते हैं। चित्रण स्वाभाविक और शैली सुन्दर! फिर कहानियों की सफलता मे शेष ही क्या रह जाता है? इसीलिए 'दो दिन की दुनिया', 'जल-धारा', आदि उनके कहानी-संग्रह हिन्दी के आलोचकों ने विशेष रूप से पसन्द किए हैं।

चंडीप्रसाद 'हृदयेश'—चंडीप्रसाद 'हृदयेश' का नाम भी चिर-स्मरणीय है, जिन्होंने कहानी-साहित्य को समृद्ध बनाने के लिए भरसक प्रयत्न किया है। चंडीप्रसाद 'हृदयेश' यद्यपि अधिक नहीं लिख सके, लेकिन उन्होंने जो कुछ लिखा है वह कला की दृष्टि से बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। 'नंदन-निकुञ्ज' और 'वनमाला' आपकी भावपूर्ण कहानियों के सुन्दर संग्रह हैं। 'विलासिनी' उसका प्रतिनिधित्व करती है। 'हृदयेश' की कहानियो के सम्बन्ध मे उल्लेखनीय बात यही है कि उन्होंने कृत्रिमता को छोड़कर अधिक-से-अधिक स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न किया है। घटना, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, दृश्य-वर्णन आदि प्रायः सभी स्थानों पर उन्होंने इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। उनकी कहानियों के विकास के सम्बन्ध मे हमे याद रखना चाहिए कि आधुनिक ढंग का चरित्र-चित्रण करते हुए भी उन्होंने भारतीय प्रणाली का विसर्जन नहीं किया है। पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों का समन्वय अपने सच्चे रूप में यहीं दृष्टिगत होता है।

'हृदयेश' एक आदर्शवादी लेखक है। उनकी कहानियो मे हमे सेवा, त्याग, बलिदान, आत्म-शुद्धि आदि पुनीत भावनाओं की ही प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। वर्णन-प्रणाली मे हृदयेश पूर्ण रूप से मौलिक है। उनकी अलंकृत भाषा-शैली को देखकर मन मुग्ध हो जाता है। उपमाओं, और उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगाकर वे बड़ा ही सरस वर्णन करते है। साथ ही कहीं-कहीं उनकी भाषा मे ऐसी दुरूहता भी आ गई है कि भाव को ग्रहण करने मे बाधा उपस्थित होती है। जहाँ ऐसा नहीं हुआ है वहाँ उनकी कहानियाँ कला की दृष्टि से सर्वथा दोष-रहित हैं।

गोविन्दवल्लभ पंत—राय कृष्णदास और विनोदशंकर व्यास ने जिस प्रकार जयशंकर 'प्रसाद' की भाव-प्रधान कहानियों का अनुशीलन किया है, ठीक वैसे ही गोविन्दवल्लभ पंत ने भी। भाव और भाषा के मनोरम समीकरण के लिए आप विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। पंतजी को पात्रों के प्रेम का चित्रण करने में अपूर्व सफलता मिली है। इन दोनों गुणों के अतिरिक्त आपको वातावरण उपस्थित करने में विशेष कुशल समझना चाहिए। असम्भव-से-असम्भव घटनाओं को भी आप वातावरण के द्वारा एक ऐसे रूप में प्रस्तुत करते हैं कि उनकी सत्यता पर कोई सन्देह ही नहीं रह जाता। कहानीकार की होशियारी इस बात में है कि वह अपने-आपको अस्वाभाविकता से बचाये रखे। इसका उन्होंने पूर्ण रूप से पालन किया है। उनकी 'प्रियदर्शी' कहानी इस कथन का अच्छा उदाहरण है। इस कहानी की सबसे बड़ी खूबी यही है कि यथार्थ वातावरण के कारण एक कल्पित कथा में भी हमारी सहज ही में प्रतीति हो जाती है। आधुनिक कहानी प्राचीन कहानी से इसी बात में विभिन्नता रखती है। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि पंतजी की कहानियों में कला और रोचकता दोनों हैं। वे एक अच्छे नाटककार तथा उपन्यासकार होने के साथ-साथ कुशल कहानीकार भी हैं।

सियारामशरण गुप्त—कवि और उपन्यासकार होने के साथ-ही-साथ सियारामशरण गुप्त एक अच्छे कहानीकार भी हैं। उनके 'मानुषी' नामक कहानी-संग्रह में अनेक सुन्दर कहानियाँ हैं। 'काकी' कहानी तो वास्तव में उनकी एक कलापूर्ण कहानी है। प्रेमचन्द की तरह आपकी कहानियों में भी देहात तथा समाज के भिन्न-भिन्न चित्र खींचे गए हैं, जो बड़े ही भावपूर्ण हैं। पात्रों के आंतरिक मनोभावों का चित्रण भी बड़ी खूबी के साथ किया गया है। उनके समस्त पात्रों में 'स्नेह' का गुण पाया जाता है। इसी स्नेह के कारण कभी पात्र का उत्थान दिखाया गया है तो कभी पतन। इन पात्रों की आत्माएं वस्तुतः उच्च हैं और वे सांसारिक धरातल से ऊपर उठते हुए प्रतीत होते हैं। इनका अंकन यद्यपि पूर्ण नहीं, फिर भी कहानी की लघु-सीमा को देखते हुए वे शक्ति-सम्पन्न हैं और अपने में ही पूर्ण हैं। साधारण ग्रामवासियों की अंध-भक्ति, विश्वास और भावनाओं का सुन्दर चित्र उपस्थित करना ही मानो इन कहानियों का उद्देश्य है।

श्रीनाथसिंह—प्रसिद्ध पत्रकार ठाकुर श्रीनाथसिंह ने उपन्यासों के साथ-साथ कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं। आप महात्मा गाँधी के सिद्धान्तों से विशेष प्रभा-

वित जान पड़ते है, इसलिए इन कहानियों मे ग्राम-सुधार की भावना दिखाई गई है। अछूतोद्धार, राज्य-कर्मचारियों की नृशंसता, स्त्रियों का उद्धार, सत्याग्रह की उत्कृष्टता और प्रभावोत्पादकता आपकी कहानियों के मुख्य विषय हैं। कथानकों में कहीं-कहीं दैवी घटनाओं और संयोगों का भी आश्रय लिया गया है। अति संक्षेप में, प्रचारात्मक होने तथा किन्हीं विशेष सिद्धान्तों से प्रेरित होकर लिखी होने के कारण उनकी कहानियों मे कलात्मक सौन्दर्य के दर्शन नहीं होते।

वृन्दावनलाल वर्मा—प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा ने अभी तक इनी-गिनी कहानियाॅ ही लिखी हैं, जो उनके 'कलाकार का दण्ड' नामक संग्रह मे देखी जा सकती हैं। वर्माजी को यद्यपि कहानी-साहित्य में अभी उल्लेखनीय ख्याति प्राप्त नहीं हुई है, लेकिन फिर भी उनकी कहानियों मे ऐतिहासिक उपन्यासों के समान कुछ विशेषताए आ ही गई हैं। वर्माजी की कहानियाॅ कल्पना और इतिहास के सामञ्जस्य कोलेकर चलती हैं। उनमे रोमांस् का अच्छा पुट दिया गया है। कथानक गढ़ने के लिए उनके पास अपूर्व कल्पना-शक्ति तो है ही, साथ ही युग-विशेष के आचार-विचार, रहन-सहन आदि का भी आपको अच्छा ज्ञान है, इसलिए कहानियाॅ विशेष हृदयग्राही हो गई हैं। वातावरण प्रस्तुत करने मे आपने कमाल कर दिया है। वर्णन सजीव और स्वाभाविक हैं। भाषा मधुर और धारावाहिक है। इधर आप बहुत कम कहानियाॅ लिखने लग गए हैं।

श्रीराम शर्मा—'विशाल-भारत' के यशस्वी सम्पादक श्रीराम शर्मा की कहानियों का एक संग्रह 'शब्द-चित्र' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। 'कलाकार ,का सत्य' भी सुन्दर है। शर्माजी की कहानियां मे हमे जीवन के व्यापक अनुभवों का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। भाषा शुद्ध और टकसाली है।

इस प्रकार कहानी-साहित्य के द्वितीय उत्थान (प्रसाद-युग) मे अनेक प्रतिभा सम्पन्न लेखकों के द्वारा आधुनिक कहानी का सन्तोषजनक विकास हुआ। आधुनिक कहानियों के इस अभूतपूर्व विकास ने एक साहित्यिक क्रांति उत्पन्न कर दी। कहानी-साहित्य का एक प्रमुख अंग ही नहीं बनी प्रत्युत उसके कला-रूप और शैली का जो विकास हुआ, वह साहित्य के इतिहास मे स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। अस्तु,

(ग) *तृतीय उत्थान* (सन् १६३७ई० से आज तक).—आधुनिक कहानी के इस तृतीय उत्थान (वर्तमान युग) मे कहानी-लेखकों को अपनी प्रतिभा और बुद्धि का उपयोग करने मे जितनी सुविधा और अवकाश मिला, उतना और कभी नहीं । प्रथम उत्थान, (द्विवेदी युग) मे पाश्चात्य सभ्यता और सस्कृति के संस्पर्श तथा नवीन आवश्यकताओं के कारण कहानी का नवजात शिशु कला के आँगन मे घुटनो के बल चलकर खेलने लग गया था । द्वितीय उत्थान (प्रसाद युग) मे उसमे अपूर्व शक्ति का संचार हुआ तथा तृतीय उत्थान, (वर्तमान युग मे) आकर वह स्वच्छदता के साथ इधर-उधर विचरण करने लग गया । कहने का अभिप्राय यह है कि इस युग मे आकर कहानियाँ अत्यधिक लोकप्रिय हुई और उनका आश्चर्यजनक विकास हुआ । पढने वालो की सख्या के साथ-साथ लेखकों की संख्या मे भी अभूतपूर्व वृद्धि हुई । विगत युगों के कुछ लेखक इस युग मे भी तेजी से कार्य करते रहे, कुछ ने दुर्भाग्यवश हमारा साथ छोड दिया । कहानी की लोक-प्रियता को बढ़ते देखकर अनेक उत्कृष्ट कवि कविता-कामिनी की रहस्यमयी छवि का विसर्जन करके इस ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुए । महिला-कहानी-लेखकों तथा हास्य और व्यंग्य कहानी-लेखकों ने इस युग मे कहानी के प्रति विशेष रुचि दिखाई । आज कतिपय मौलिक कहानीकारों के द्वारा साहित्य की सुन्दर सेवा हो रही है । यदि यही अभ्यास जारी रहा तो हम अल्प वर्षों में ही अन्यान्य भाषाओं के कहानी-साहित्य की समानता में अच्छी तरह खडे हो सकेंगे । अस्तु,

भगवतीप्रसाद वाजपेयी—इस युग के कहानी-लेखकों मे श्री वाजपेयीजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है । केवल अल्प समय मे ही आपने इस क्षेत्र मे ख्याति प्राप्त कर ली । इनकी समस्त कहानियों में चरित्र का एक सुन्दर और प्रभाव-शाली रूप देखने को मिलता है । व वस्तुत मनोविज्ञान को अपना आधार बनाकर चलती हैं, जिनमे असाधारण परिस्थिति के बीच पात्रो के चरित्र का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है । इस विद्या मे आप विशेष प्रवीण हैं, इसलिए कथा-भाग इनमे भी नाम-मात्र का होता है । घटनाए और प्रसग केवल सकेत-मात्र होते है, जिनके द्वारा प्रधान-पात्र के प्रतिनिधि गुण-अवगुण ही पाठकों के ध्यान में लाये जाते है । इस प्रकार आपकी कहानियों का उद्देश्य किसी पात्र के गुण अथवा अवगुण का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना ही होता है । 'हिलोर', 'पुष्करिणी' और 'खाली बोतल' नामक

उनके संग्रहों की अनेक कहानियाँ इस कथन को पुष्टि करती है। उनकी 'मिठाई-वाला' कहानी ने तो सबका दिल चुरा लिया है। प्राय. प्रत्येक संग्रह मे उसे स्थान मिल ही जाता है। इस कहानी के अतिरिक्त 'अपमान का भाग्य', 'झाँकी', 'त्याग', 'वंशीवादन', 'आत्मघात', 'हत्यारा' आदि कहानियाँ भी कला की दृष्टि से सफल समझी जायगी।

मनोविज्ञान पर अधिक ध्यान देने के कारण कहीं-कहीं वाजपेयीजी की कहानियाँ साधारण जनता से दूर भी जा पड़ी हैं। जहाँ कहानियों मे कार्य तथा प्रसंगों का अभाव रहा है, वहाँ विश्लेषण की दुरूहता के कारण वे नीरस भी बन गई है। इन कहानियों की विषय-सामग्री सामाजिक जीवन मे से ली गई हैं और उस सामग्री का चयन करने मे लेखक ने अपनी तीव्र निरीक्षण-शक्ति का परिचय दिया है। उनकी अभिव्यक्ति सरल तथा मर्मस्पर्शी है।

वाजपेयीजी की कहानियो के चित्रो मे सजीवता और स्वाभाविकता अधिक रहती है, वे जिस वस्तु का वर्णन करते है, उसकी जीती-जागती तस्वीर हमारे सामने उपस्थित हो जाती है। ऐसा करते समय उन्होंने चतुर कहानीकार की तरह केवल थोड़ी रेखाओ से ही काम लिया है। उनकी कहानियो की भाषा-शैली सुन्दर है। उसमें व्यावहारिकता अधिक है। शैली मे प्रसाद गुण पाया जाता है। संलापों मे उनकी भाषा-शैली हृदय की चुटकी लेती है।

एक बात और, उनकी कहानियों का अन्त अन्य कहानी-लेखको से भिन्न होता है। यहाँ वाजपेयीजी की विशेषता केवल इसी बात मे है कि वे अन्त तक पाठक को निकालकर कुछ नहीं देते। मेरा अभिप्राय कहानी के प्रमुख लक्ष्य तथा पात्र की विशेषता से है। लेकिन अंत मे केवल थोड़े शब्दों मे हमे समूची कहानी का सौन्दर्य समझ मे आ जाता है और हम लेखक की रचना-चातुरी पर आश्चर्य प्रकट करने लग जाते हैं। इसी मे उनकी मौलिकता है।

भगवतीचरण वर्मा—भगवतीचरण वर्मा की इनी-गिनी कहानियाँ 'आधुनिक कहानी-कला' के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। उनके 'खिलते फूल', 'इन्स्टाल-मेण्ट', 'दो बाँके' आदि संग्रहों की कहानियाँ बहुत लोकप्रिय हुई हैं। कथानक की दृष्टि से उनकी कहानियाँ विशेष महत्त्व की नहीं है, क्योंकि आप स्वयं भी उसकी विषय-सामग्री के लिए इधर-उधर भूले-भटके नहीं फिरते। उनकी सूक्ष्मदर्शी आँखें दैनिक-जीवन की भीड-भाड़ मे से अपने लिए एक सुन्दर चीज बटोर लेती हैं। आधुनिक कहानी के सम्बन्ध मे विचारणीय बात भी

यही है। इसमे तो केवल कुछ मनोरजक बातों, चुटकलों और चित्त को आकर्षित करने वाली सूझ होती हैं। वर्माजी की कहानियों मे हम यही पाते हैं। वे एक मनोरंजक बात को उठाकर उसे अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति के द्वारा इतना रोचक बना डालते हैं कि उसका प्रभाव पाठको पर पडे बिना रह ही नहीं सकता। यह बात अवश्य है कि उनकी भाषा-शैली कहानी के समष्टि प्रभाव को डालने मे सहायक हुई है। इतना होते हुए भी यह स्वीकार करना पडेगा कि उनकी कहानियों का विषय ही ऐसा होता है कि जिसे पढ़कर पाठक खिल उठता है और वह उसे दिलचस्पी के साथ पढ़ने लग जाता है। हास्य और व्यग्य आपकी कहानियो मे अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे उतर आया है। आपकी 'प्रायश्चित्त', 'मुगलो ने सल्तनत बख्श दी', 'प्रेजेण्ट्स', 'विक्टोरिया क्रास' आदि कहानियों की अपूर्व सफलता पाठकों से छिपी नहीं। वस्तुत. वर्माजी की कहानियॉ प्रभाव-प्रधान होती है, जिनमे हास्य और व्यग्य के द्वारा मन की केवल एक भावना पर अधिक जोर दिया जाता है। सक्षेप मे, हास्य और व्यग्य का पुट देकर मानव-जीवन के चिरन्तन सत्यो का उद्घाटन, जितना सुन्दर आपने अपनी कहानियों मे किया है, उतना सुन्दर हिन्दी के और किसी कहानी-कार ने नहीं किया। वर्माजी अपने क्षेत्र में अद्वितीय हैं।

प्रभाव-प्रधान कहानियॉ होने के कारण आपने केवल एक-दो पात्रों को लेकर ही अपनी कहानियों की सृष्टि की है। आपके पात्र बडे मजेदार होते हैं। वे केवल अपना व्यक्तिगत रूप लेकर ही हमारे सम्मुख नहीं आते प्रत्युत कहीं-कहीं अपनी वर्गगत विशेषताओं को लेकर भी हमारे सामने उपस्थित होते है। इसके लिए लेखक को सयत्न कोई विशेष प्रयास करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। घटनाओं, प्रसगो तथा परिस्थितियों के द्वारा उनकी चारित्रिक विशेषताए आप ही प्रकट होती जाती हैं। उनके समस्त पात्र यथार्थ, सजीव और स्वाभाविक है। उनका चरित्र-चित्रण इतनी कुशलता से हुआ है कि उसके भाव-विशेष की हमारे ऊपर अक्षय छाप पडे बिना नहीं रह सकती।

उनके कथोपकथनों की भाषा पात्रो के सर्वथा अनुकूल है। सलाप अत्यन्त सक्षिप्त होने के कारण वे कहानियों के लिए बडे ही उपयुक्त बन पडे हैं। वर्माजी की कहानियों की भाषा शैली बडी ही अनूठी है। किसी भाव-विशेष का प्रभाव डालने के लिए वे बडी सहायक सिद्ध हुई हैं। अत हम कह सकते हैं कि उसमें एक अपूर्व शक्ति है। विशेष-विशेष शब्दों तथा वाक्यों के प्रयोग के द्वारा

उन्होंने हास्य-रस की सुन्दर सृष्टि की है। वर्णन के लिए वे थोड़े शब्दों में ही पूरी तस्वीर खड़ी कर देते हैं।

वर्माजी की कहानियाँ उनकी विशिष्ट शैली की परिचायिका नहीं, किन्तु इतना होते हुए भी उनकी सूक्ष्मदर्शी प्रवृत्ति की इनमें अस्पष्ट छाप अवश्य देखने को मिलेगी। उनकी कहानियाँ सामाजिक असंतोष तथा विद्रोह की भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। नवीन शिक्षा तथा आविष्कारों के साथ जिस युग ने भारतवर्ष में प्रवेश किया है, उसके आप सच्चे प्रतिनिधि हैं, इसलिए आपकी कहानियाँ विविध हलचलों तथा अशांति से अधिक सम्बन्ध रखती हैं। उनकी कहानियों को पढ़कर उनके उद्देश्य का पता बड़ी ही आसानी के साथ लगाया जा सकता है। वे यथार्थवादी लेखक हैं, किन्तु उन्हें वही यथार्थ अधिक प्रिय प्रतीत होता है जिसमें जीवन की कुरूपता है। इसी कुरूपता में वे सुरूपता का आभास दे देते हैं। वर्माजी एक सफल कवि भी हैं। उनकी कविताओं का उद्देश्य भी यही है। उन्होंने असन्तोष, क्षोभ, निराशा, उत्पीड़न आदि का ही चित्रण अधिक किया है, जिसका अन्त होता है—जीवन के दृष्टिकोण में तीखा उपहास। इसी मनोवृत्ति से प्रेरित होकर उन्होंने अपनी हास्य-व्यंग्य प्रधान कहानियाँ लिखी हैं। हास्य का उद्देश्य लेकर ये शायद ही लिखी गई हों, परन्तु फिर भी हिन्दी-साहित्य में यह प्रवृत्ति जिन प्रभाव-प्रधान कहानियों में दृष्टिगत होती है, भगवतीचरण वर्मा उसके सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधि हैं।

मोहनलाल महतो 'वियोगी'—आपकी कहानियाँ थोड़ी होने पर भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वे प्रभाव-प्रधान कहानियों की श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। वियोगीजी प्रभाव की सृष्टि के लिए कथानक को पुराण-कथा का रूप देने में विशेष प्रवीण हैं। इस ढंग की कहानियाँ हिन्दी-साहित्य में बहुत कम हैं और उनमें आपका अद्वितीय स्थान है। उनकी 'कवि' नामक कहानी इसका सुन्दर उदाहरण है। इनकी कहानियों में चरित्र, वातावरण, घटना आदि की प्रधानता नहीं होती, प्रधानता होती है—केवल एक मुख्य भावना की, जिसे पुराण-कथा का रूप देकर पाठकों के हृदय पर प्रभाव डालने का प्रयत्न किया जाता है। लेकिन सब जगह कहानियों का यही रूप नहीं है। बहुत-सी कहानियों का सम्बन्ध हमारे सामाजिक क्षेत्र से है, जिसकी समस्याओं पर प्रकाश डालना ही इनका चरम लक्ष्य है।

वियोगीजी की कविताएं भी बड़ी मार्मिक होती हैं। एक सफल कवि होने

के कारण आपकी कहानियों की भाषा काव्यपूर्ण होती है। कहानियों मे काव्य का पुट दिया गया है। अंकित किये गए चित्र बड़े ही सुकुमार, भावपूर्ण और संश्लिष्ट होते है। काव्यमय वर्णन के अनन्तर 'वियोगी' अपना मुख्य उद्देश्य पाठकों के सामने उपस्थित कर देते है, जो हृदय को अत्यन्त ही प्रभावित करने वाला होता है। यही प्रधान चरित्र का केन्द्र होता है और इसी के आधार पर चरित्र के ऊपर प्रकाश डाला जाता है।

'अज्ञेय'—सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की अधिकाश कहानियाँ प्रभाव-प्रधान कहानियों के अन्तर्गत आती हैं। इस दृष्टि से आपकी तुलना चन्द्रगुप्त विद्यालंकार से की जा सकती है। इन दोनों लेखकों मे काफी समानता है। दैनिक जीवन-चर्या की किसी महत्त्वपूर्ण बात को लेकर तथा उसे अपनी कहानी का विषय बनाकर आप भी उसमे एक ऐसा रंग भर देते हैं कि उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। उनकी 'रोज' नामक कहानी इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

'अज्ञेय' ने काफी कहानियाँ लिखी है, और लिखते जा रहे हैं, भविष्य मे भी हमे उनसे बड़ी-बड़ी आशाए हैं। 'विपथगा', 'परम्परा', 'कठोरी की बात' तथा 'जयदोल' आदि आपके कलापूर्ण सग्रह है। 'विपथगा', 'अमर-वल्लरी', 'शत्रु', 'पगोडावृक्ष', 'रोज', 'छाया', 'द्रोही', 'कोठरी की बात' आदि कहानियाँ वास्तव में बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं। आपकी कुछ कहानियाँ गद्य-काव्य की शैली पर होती हैं, जिन्हे हम भाव-प्रधान या वातावरण प्रधान कहानियाँ कह सकते हैं। 'विपथगा' मे वातावरण खींचने मे लेखक को अपूर्व सफलता मिली है। ये कहानियाँ उनके मस्तिष्क की क्षण-भर को उपज-मात्र हैं। हृदय मे भावों की आँधी आने से लेखक उनके वर्णन के लिए ललचाता है। और ज्यों ही वह लेखनी उठाता है, उसका चित्र तत्काल तैयार हो जाता है। आपकी विशेषता इसी में है कि थोडी देर में ही कहानी तैयार कर लेते हैं, पर उसके लिए जैसा कि कहा जा चुका है हृदय में भावों का तूफान होना आवश्यक है।

अज्ञेयजी ने अपनी अधिकाश कहानियाँ निम्न वर्ग और मध्य वर्ग के लोगों को लेकर लिखी हैं। भार-ग्रस्त साधारण व्यक्तियों के प्रति आपने उपेक्षा-भाव से काम नहीं लिया है, वरन् उनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न कर देने वाले भावों को आश्रय दिया है। कहानी की आत्मा और शैली दोनो की दृष्टि से वे एक उत्कृष्ट कहानीकार कहे जा सकते है। उनकी वर्णन-प्रणाली नवीन होती है। अंग्रेजी में सोचने के कारण उनके विचार तथा भाषा पर उसका यथेष्ट

प्रभाव परिलक्षित होता है।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने मे 'अज्ञेय' ने विशेष चातुरी से काम लिया है। 'रोज' मे इसका अच्छा परिचय प्राप्त होता है। आपके पात्र सजीव और स्वाभाविक है। कथोपकथन सरल और व्यावहारिक होता है। भाषा पात्रों के अनुसार अपना रूप बदलती रहती है। भाषा शैली भावपूर्ण है। वाक्य कहीं उखडे-उखड़े-से अवश्य प्रतीत होते है, क्योंकि वाक्य समाप्त कर देने के बाद आप बिन्दुओं के प्रयोग के द्वारा और अनेक बातो की ओर संकेत करते रहते हैं। प्रचलित देशज शब्दों का प्रयोग आपने निःसंकोच रूप से किया है। आपकी कहानियों का उद्देश्य केवल इतना-सा ही दृष्टिगोचर कराना होता है कि किसी साधारण घटना को लेकर पाठकों पर अधिक-से-अधिक प्रभाव डाल दिया जाय। 'अज्ञेय' की बढ़ी-चढ़ी कहानियो को देखकर कोई भी उनके उज्ज्वल भविष्य की आशा कर सकता है।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार—वैसे तो चन्द्रगुप्त विद्यालकार ने बहुत पहले से ही कहानियाँ लिखना आरम्भ कर दिया था, लेकिन इस युग मे उन्हे जितनी ख्याति मिली, उतनी पिछले युगो मे नहीं। चन्द्रगुप्तजी का कहानी-साहित्य मे बहुत ऊँचा स्थान है, क्योंकि उनकी कहानियों के द्वारा कला-रूप का बहुत ही सुन्दर विकास हुआ है। कहानी-साहित्य के साथ-ही-साथ अनुवाद-साहित्य की समृद्धि में भी आपने प्रशंसनीय योग दिया है। 'चंद्र-कला' तथा 'अमावस' आपके सफल कहानी संग्रह है।

दैनिक जीवन के मार्मिक उदाहरणों को छाँटकर उन्हे ज्यों-का-त्यों रख देने मे विद्यालंकार जी को अपूर्व सहायता मिली है। इससे एक ओर तो कहानियो मे प्रभावोत्पादकता आ गई है, दूसरी ओर सत्य की व्यञ्जना बहुत ही सुन्दर रूप से हो पाई है। इसी मे उनकी कहानियो की विशेष खूबी है। 'काम-काज', 'क ख ग' आदि कहानियाँ इसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। लेखक अपनी ओर से एक भी शब्द नहीं कहता, दैनिक जीवन में जिन सत्यों को वह अपनी आँखों से देखता तथा अनुभव करता है, उसी की भव्य व्यञ्जना बड़ी ही बारीकी के साथ पर्दे की ओट मे किया करता है।

प्रभाव-प्रधान कहानियों मे विद्यालंकारजी का स्थान सर्वोपरि है। भाव पूर्ण चित्र उपस्थित करने मे वे बे-जोड़ हैं। इन्हीं भावपूर्ण चित्रो के द्वारा प्रभाव की सृष्टि हुई है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि पृथक्-पृथक् चित्र होने के कारण पात्रों की संख्या भी बढ़ गई है, पर कहानी के ये पृथक्-पृथक् चित्र

अपने में ही पूर्ण है। एक चित्र का दूसरे चित्र से जहाँ तक कथानक का प्रश्न है, कोई सम्बन्ध नहीं। इतना होते हुए भी समष्टि रूप से उनमें प्राय एक ही व्यञ्जना हुई है।

पात्रों का चित्रण बडी कुशलता के साथ किया गया है। विद्यालंकार जी मनोविज्ञान के सहारे गहराई मे पैठते हैं और उनका सूक्ष्म विश्लेपण कर देते हैं। उच्च वर्ग, निम्न वर्ग तथा साधारण वर्ग, इन तीनों वर्गों मे से किसी भी पात्र का चित्र वे सुघडाई से खींच देते हैं। उनके पात्रों की बात-चीत का ढंग निराला है। उन्हें पढ़कर आनन्द आता है। भापा पात्रों के सर्वथा अनुकूल है। अन्य स्थानों पर उनकी भापा तद्भव रूप को लिये हुए अधिक होती है। प्रचलित देशज शब्दों का प्रयोग भी उन्होने किया है। जीवन तथा जगत् के चिरन्तन सत्यों को प्रकाश मे लाना ही इन कहानियों का चरम उद्देश्य है। 'ताँगे वाला', 'डाकू', 'चौवीस घंटे', 'एक सप्ताह' आदि कहानियों मे भी आदर्श कहानी-कला के गुणों का समावेश हो गया है।

कमलाकान्त वर्मा—कला की दृष्टि से कमलाकान्त वर्मा की कहानियाँ कम होने पर भी अत्यन्त उच्चकोटि की हैं, इसमे कोई सन्देह नहीं। वर्माजी की कहानियाँ यथार्थवाद के उस अग की पोपक हैं जो जीवन मे पल-भर के रूप में आता है और फिर रह जाती है उसकी एक मधुर स्मृति। आरम्भिक कहानियाँ इसी प्रकार की है, जिनमें साधारण घटनाओं को लेकर धीरे-धीरे असाधारण बना दिया गया है। कहानी समाप्त कर चुकने के अनन्तर एक गहरी साँस में ही भाव के उस छोटे-से इतिहास की कलात्मक सत्यता पर पाठक चुप होकर रह जाता है। एक वार उस सत्य पर पाठकों को अपना दिल टटोलकर समझना पड़ता है—क्या वास्तव मे यह संसार ऐसा ही है? इससे अधिक एक कहानीकार की सफलता के विषय मे क्या कहना? 'वाजी' इन समस्त गुणों से ओत-प्रोत है।

कमलाकान्त वर्मा की अनेक कहानियों मे आधुनिक कहानियों का चरम उत्कर्ष देखने को मिलेगा। कल्पनापूर्ण कहानियों के लिखने मे भी आपको विशेष सफलता मिली है। इन कहानियों का कला-रूप वर्तमान कविता के संवोध-गीत (Odes) के कला-रूप से मिलता-जुलता है, जिनमे लेखक का दृष्टिकोण वाह्य न होकर अभ्यान्तरिक होता है। इसलिए कवित्वपूर्ण कल्पना का प्रयोग इनमें अत्यधिक रूप मे पाया जाता है। लेखक अपनी बुद्धि और चेतना के द्वारा जड़ पदार्थों को चेतन वना देता है और उनमे एक ऐसी शक्ति

भर देता है कि ये सब पदार्थ मनुष्यों की ही भाँति चलते-फिरते तथा बात-चीत करते हुए नज़र आते हैं । इतना ही नहीं वे प्रमुख मनुष्य-पात्रों की तरह अपने मनोभावों का सुन्दर परिचय भी कराते है । जीवन के नाना भावों को लेकर ही इन कहानियों की सृष्टि हुई है । 'खँडहर', 'तकली', 'पगडंडी' आदि ऐसी ही सुन्दर कलापूर्ण कहानियाँ हैं, जिनमें समस्त स्थूल पदार्थ स्नेह-प्यार, मान-अभिमान, कलह-विरोध आदि की करुण-गाथा सुनाकर हमारे ध्यान को आकर्षित करते रहते हैं । वर्माजी ने प्रमुख स्थूल पात्रों के आधार पर ही अपनी कहानियों का नामकरण किया है तथा उनसे सम्बन्धित दूसरे जड़ पदार्थों को भी सहकारी पात्रों के रूप मे ग्रहण किया है । कविता में स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह जिसे कहा गया है, वर्माजी की कहानियों मे भी हमें उसी का आभास मिलता है ।

इन पात्रों का चरित्रांकन सुन्दर है । कथोपकथन कहीं-कहीं सिद्धान्तों के फेर में लम्बे अवश्य हो गए है, लेकिन वे इतने भावपूर्ण हैं कि उनसे हम नहीं अघाते । उनकी भाषा-शैली मे हमें खड़ी बोली का एक समुन्नत रूप देखने को मिलता है । उनका झुकाव तत्सम शब्दों की ओर अधिक है । कहानियों का लक्ष्य जीवन की चिरन्तन समस्याओं पर प्रकाश डालना तथा उसमे से गम्भीर तत्त्वों को लाकर सामने रखना है । वर्माजी मे एक नवीन शैली के दर्शन होने से मौलिकता अधिक है । भावों का विश्लेषण करने में भी उन्हें अपूर्व सफलता मिली है । प्रेम और कर्तव्य का संघर्ष दिखाकर और अन्त में, कर्तव्य की महत्ता प्रकट करते हुए आप मानों हमे एक व्यावहारिक संदेश भी देते रहते हैं । उनके इन संदेशों मे आधुनिकता अधिक है । वह हमारे जीवन और जगत् के लिए अनुकरणीय हैं ।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—उपेन्द्रनाथ 'अश्क' उर्दू-क्षेत्र से हिन्दी की ओर आये हैं, इसीलिए आपकी कहानियाँ प्रेमचन्द और सुदर्शन की शैली की हैं । वैसे तो आपका साहित्यिक जीवन-काल सन् १९३२ ई० से ही आरम्भ हो जाता है, किन्तु इस समय तक आते-आते आपकी कहानी-कला विकासोन्मुखी हुई और उनमे प्रौढ़ता आ गई । 'अश्क' ने बहुत-सी कहानियाँ लिखी हैं, लिखते जा रहे हैं । उपन्यासों के साथ-साथ दो-तीन कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं, जिनमे 'पिंजरा', 'निशानियाँ' आदि के नाम उल्लेखनीय है । 'पिंजरा', 'पाषाण', 'मोती', 'डूलो', 'मरुस्थल', 'गोखरू', 'खिलौने', 'चट्टान', 'जादूगरनी', 'चित्रकार की मौत' आदि कहानियाँ सफल रचनाएं हैं ।

'अश्क' एक प्रगतिशील लेखक हैं। इसलिए आपकी कहानियो की विषय-सामग्री इस द्वन्द्वात्मक भौतिक विश्व से ही ली गई है। कुछ कहानियाँ वातावरण-प्रधान कहानियो के अन्तर्गत आती हैं। इन कहानियों में उन्हे विशेष सफलता मिली है। वातावरण खींचने मे 'अश्क' ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया है। आप जिस वातावरण को खींचते है,उसकी सूक्ष्म परिस्थितियों का भी सम्यक् ध्यान रखते हैं। उसी के भीतर कहानी का एक विशेष विन्दु अन्तर्निहित होता है। किसी स्थान-विशेष का चित्रण करने में तो आपने कमाल कर दिया है। इन सब बातो को लेकर लिखी गई उनकी 'कॉकडा का तेली' नामक कहानी पढने योग्य है।

'अश्क' की कहानियों के पात्र एक-दो ही होते हैं। ये संसार के चलते-फिरते व्यक्ति हैं, उनमे आदर्श का पुट नहीं दिया गया है। वे अपनी परिस्थितियों के अनुसार दुःख-सुख का सामना करते हुए जीवन-यात्रा समाप्त कर देते हैं। उनमे वह महत्त्वाकांक्षा नहीं, जो अन्य लेखकों के कहानी-पात्रों में है। इसीलिए वे सत्यना के अधिक निकट है और हमारी उनके साथ विशेष सहानुभूति है।

कथोपकथन सजीव और स्वाभाविक हैं। पात्रों के उपयुक्त ही उनकी भाषा होती है। इससे सजीवता और व्यावहारिकता आ गई है। अन्य स्थानों पर भी उनकी भाषा-शैली मे चलता हुआ रूप ही अधिक दृष्टिगत होता है। प्रेमचन्द की भाषा-शैली के गुण एक बार पुन हमें 'अश्क' की कहानियों मे देखने को मिलते हैं। उनकी समस्त कहानियों मे हमे जीवन का एक व्यापक दृष्टिकोण दिखाई देता है। सक्षेप में, उनकी कहानियों मे हमे न तो भविष्य की ओर सुन्दर सकेत दिखाई देता है और न प्राचीन आदर्शों के पोछे मर-मिटने की महत्त्वाकाक्षा। जैसा जिस रूप मे हमें इस भौतिक जगत् मे चारों ओर दिखाई देता है, उसी का सजीव चित्रण आपने सफलता के साथ किया है।

व्यक्तिगत रूप से मैं 'अश्क' की कहानियाँ इन गुणों के अतिरिक्त उनके सुन्दर विकास के लिए पढता हूँ। अभी कथा-साहित्य आपसे बड़ी-बडी आशाएं लगाए बैठा हूँ।

इलाचन्द्र जोशी—उपन्यासों की तरह इलाचन्द्र जोशी ने कहानियाँ भी बहुत लिखी है। उनके 'रोमांटिक और छाया', 'आहुति', 'दीवाली और होली', 'ऐतिहासिक कथाएँ' आदि प्रकाशित हो चुके हैं। इलाचन्द्र जोशी की कहानियाँ आकार में बड़ी होती हैं, उनमें घटनाओं का जाल बिछा रहता है, इसलिए

आधुनिक कहानी को ध्यान मे रखते हुए सम्भव है, उन मे कुछ दोष दिखाई दे। यथार्थ मे उच्च कोटि की कलापूर्ण कहानियाँ उन्होने बहुत कम लिखी हैं। 'अनाश्रित', 'क्रय-विक्रय', 'किड्नैप्ड', 'फोटो' तथा 'प्रेम और घृणा' इन कहानियों का प्रतिनिधित्व कर सकती है।

उपन्यासों की तरह जोशीजी की कहानियों मे भी योरोप की मनो विश्लेषण की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। मानसिक विश्लेषण के नवीन निष्कर्षों के परिणाम-स्वरूप पश्चिमी देशों के कथा-साहित्य मे पर्याप्त उथल-पुथल रही। फ्रायड, जुग, एडलर आदि के मन-सम्बन्धी विचारो का समावेश वहाँ की कृतियों मे हो चुका था।'प्रेत और छाया'की भूमिका मे जोशी जी ने स्पष्ट शब्दो में इसे स्वीकार करते हुए इसके महत्त्व पर अधिक जोर दिया है। उनका कहना है, 'आधुनिक मनुष्य ने सभ्यता के ऊपरी संस्कारो के लेप से अपने सफेद मन मे अवश्य सफेद-पाशी कर ली है, पर जिस परदे पर वह सफेद-पोशी की गई है, वह इतना झीना है कि जरा-जरा सी बात मे फट जाता है और उसमे तनिक भी छिद्र पैदा होते ही उसके नीचे दबी पडी पशु-प्रवृत्तियाँ परिपूर्ण वेग से विस्फुटित होने लगती है।' अत जोशी जी की कहानियाँ मनुष्य के कार्य-व्यापारों मे अन्तर्मन के अतल मे दबी हुई विभिन्न प्रवृत्तियों का ही विश्लेषण अधिक करती है। इसके साथ-ही-साथ उन्होंने कलात्मक अभिव्यंजना का भी ध्यान रखा है। जोशीजी की मौलिकता केवल इसी बात मे है।

जोशीजी की कहानियो के पात्रो का चरित्र-चित्रण इसी मनोविज्ञान की दृढ़ नींव पर हुआ है। वे अपने तन-मन को ही अधिक टटोलते हुए पाये गए है। कहीं-कही जहाँ यह भावना जोर पकड़ गई है, वहाँ चरित्र मिश्र (complex) भी हो गए है। उन्हे समझने मे एक सामान्य पाठक को शायद कठिनाई ही होगी। संलापों की भाषा बड़ी वेगवती है। अन्य स्थानों पर यही गुण है। उनकी भाषा मे खड़ी बोली का एक शुद्ध और परिमार्जित रूप लक्षित होता है। वह आज की आदर्श खड़ी बोली का स्वरूप निर्धारित कर सकती है। इनकी कहानियों का लक्ष्य परम्परागत रूढ़ियो और विश्वासों का खण्डन-मडन करना है। कुछ लोगों ने आपको प्राकृतवादी लेखक माना है। यथार्थ मे प्राकृत-वाद को लेकर उन्होंने बहुत कम कहानियाँ लिखी है।

यशपाल—नवीन लेखकों मे यशपाल का नाम चिर-स्मरणीय है। आप लिख भी बहुत रहे हैं। 'अभिशप्त', 'वो दुनियाँ', 'ज्ञान दान', 'पिंजरे की उड़ान', 'तर्क का तूफान' आदि कहानी-संग्रह हिन्दी-कहानी-प्रेमियों ने बड़े चाव

से पढ़े हैं। यशपाल मे प्रतिभा है, कहानी कहने का एक विशेष ढंग है। उनकी कहानियो को पढकर हम उनकी कहानियों के रूप और शैली को देखते हुए हठात् मौलिक कह बैठते हैं।

यशपाल की विचार-धारा का आरम्भिक स्रोत रूसी साम्यवाद है, इसलिए पहले की कहानियों मे हमे उसी भावना के दर्शन होते है। कला की दृष्टि से ये कहानियाँ यद्यपि महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन जहाँ सिद्धान्तों से प्रेरित होकर आपने विशिष्ट विचारों को स्थान दिया है, वहाँ उनको कहानियों मे अस्वाभाविकता भी आ गई है। इधर आप इन विचारों को छोडकर सुन्दर कलापूर्ण कहानियाँ लिखने लग गए हैं। आशा है भविष्य मे आपकी कला सर्वथा निर्दोष होगी और उनका जनता मे विशेष आदर होगा ।

यशपाल को अपने व्यक्तिगत अनुभव के द्वारा विभिन्न प्रान्तों के रीति-रिवाज, आचार-विचार, सामाजिक तथा राजनैतिक भावनाओं की भी अच्छी जानकारी है, इसलिए कहानियों मे सप्रसंग इनका यथार्थ चित्रण भी खूब हुआ है। वातावरण एव प्रकृति को सजीव करने में उन्हे बहुत सफलता मिली है। अपने सिद्धान्तों से ऊपर उठकर जहाँ उन्होंने मानव-भावनाओं का विश्लेषण किया है, वहाँ कहानियाँ और भी खिल उठी हैं। स्त्री-भावनाओं का चित्रण भी आकर्षक है।

भाषा-शैली आपकी शुद्ध है और कहानियों को देखते हुए उपयुक्त है। जिन-जिन कहानियों के द्वारा आपने ख्याति कमाई है, उनमे से कुछ के नाम ये हैं—८०।१००, 'पराया सुख', 'हलाल का टुकडा', 'ज्ञानदान', 'एक राज', 'गण्डेरी', 'कुछ समझ न सका', 'जबरदस्ती', 'बदनाम', 'अपनी चीज आदि।

सत्यजीवन वर्मा 'भारतीय'—वर्तमान काल के नवीन कहानी लेखकों में श्री भारतीय का नाम बडे आदर के साथ लिया जाता है। केवल थोडे ही समय के भीतर आपने उच्च कोटि की कलापूर्ण कहानियाँ लिखकर अपना नाम श्रेष्ठ और कुशल कहानीकारों में दर्ज करा लिया है। इस अपूर्व सफलता के लिए उन्हे अन्य कहानी-लेखकों की अपेक्षा बहुत-सी सुविधाए प्राप्त हैं। हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् तथा सस्कृत-साहित्य के कुशल ज्ञाता होने के कारण आपको कहानियों की भाषा पर पूर्ण अधिकार है। फिर प्राचीन एवं आधुनिक साहित्य के आदर्शों की अच्छी जानकारी होने के कारण आप उनकी सुन्दर झाँकी दिखाने में विशेष सफल हुए हैं, और अन्त में आपका अध्ययन तथा चिन्तन दोनों ही विस्तृत और गभीर होने के कारण कहानी की सृष्टि करने में

आपको कोई विशेष सोच-विचार नहीं करना पड़ता। इन्हीं कारणों से आपने कहानी-क्षेत्र में प्रवेश करते ही अपनी एक-दो कहानियों के द्वारा ही लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

श्री 'भारतीय' ने यद्यपि अधिक कहानियाँ नहीं लिखी हैं, तथापि वे कहानी के आदर्श गुणों से ओत-प्रोत हैं। उनमे जीवन के अनुभव भरे पड़े हैं। सामाजिक क्षेत्र से सम्बन्धित कहानियों मे वाह्य तथा आभ्यन्तरिक मनोभावों का विश्लेषण करने में आपको अपूर्व सफलता मिली है। आपने कहानी-साहित्य को एक विशेष प्रकार की कहानियाँ दी हैं और वे हैं—पशु-जगत् से सम्बन्धित। इनमे शिशु-मनोविज्ञान (Child-psychology) की अच्छी झलक मिलती है। यथार्थ मे, समाज मे होने वाले अत्याचारों के प्रति, चाहे वे पशुओं से संबन्धित हों चाहे मनुष्यों से, आपकी गहरी सहानुभूति है और उसीके लिए मानो आपने चुपचाप एक मौन संकेत अपनी कहानियों मे किया है। इस प्रकार की हृदय-द्रवित कहानियों को पढ़कर पाठक भी क्षण-भर के लिए पिघल उठता है इसी से आपकी सार्थकता है।

आपकी कहानियों की रचना-शैली बड़ी ही प्रौढ़ और कलात्मक-वृत्ति बडी ही चमत्कारपूर्ण होती है। 'मुनमुन' इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है, जिसे प्रेमचन्द ने एक मास्टरपीस कहानी कहा था। पशुओं में मनुष्य के-से आचरण के दर्शन करना वस्तुतः आपकी सहृदयता की अनुपम निशानी है। उसमे उनकी अन्वीक्षण-शक्ति और वर्णन-शैली के उत्कृष्ट नमूने देखने को मिलेंगे।

श्री 'भारतीय' की कहानियाँ सजीवता तथा स्वाभाविकता को लिये हुए होती हैं और इनमें उनका व्यक्तित्व भी सुन्दर रूप से उतर आया है। स्थल-स्थल पर आप व्यंग्य के रूप में जीवन तथा जगत् के प्रति अपने अमूल्य विचार सूक्ष्म रूप से प्रकट करते रहते हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति से विशेष अनुराग होने पर भी आप उसका अन्धानुकरण नहीं करते वल्कि अपने माप-दंड से प्रत्येक विचार को तौल-तौल कर स्वीकार करते हैं। आपके सिद्धान्तों का मूल रहस्य यही है कि सहृदयता में मनुष्य की सभ्यता की पराकाष्ठा है। मनुष्य का धर्म इसी मे है कि वह दया और करुणा की मूर्तियों के प्रति सहानुभूति का भाव प्रदर्शित करे, चाहे वह चर हो चाहे अचर। इसीलिए आपने अपनी कहानियों मे अवसर हाथ आने पर ईश्वर, समाज तथा मनुष्य के प्रति व्यंग्य किया है। उनका एक संदेश यह भी है कि दूसरों की बुराइयों को देखने

के पूर्व अपनी बुराइयाँ देखो और फिर उन्हे हटाने का प्रयत्न करो, इसी में मनुष्य की मानवता है।

आपकी कहानियों की मूलभित्ति यथार्थ है। यह यथाथ उस आदर्श को अपने में समेटे हुए है, जिससे हम जीवन के साधारण धरातल से ऊपर उठकर किसी ऊँचे स्थान पर जा बैठते हैं। भारतीय जी ने हमे अपनी अनुभूतियों को एकदम बदल डालने का संदेश नहीं दिया है। उनका तो बार-बार आत्मा को चैतन्य रखने का सदेश है। आप अपनी कहानियों मे धीरे-धीरे व्यक्तिवाद से ऊपर उठकर समाजवाद की ओर इसीलिए प्रवृत्त होते हैं। इसके लिए उन्होंने कोई विप्लव की आकांक्षा नही की, उसी मनुष्य की सभ्यता की सुन्दर व्यजना की है।

प्रेमचन्द की तरह आप भी अपनी कहानियाँ एक विशेष उद्देश्य को लेकर लिखते हैं, इसलिए वहाँ पहुँचकर कहानियाँ स्वाभाविक रूप मे समाप्त हो जाती हैं। साहित्य को मनुष्य के उत्थान का साधन मानने वाले भारतीय के उपनाम की सार्थकता इसी में है कि आपने प्रेमचन्द की तरह अपनी कहानियों मे भारतीयता का विसर्जन कभी नहीं किया। 'आत्मज्ञान को सचेत रखना' ही इनकी कहानियों का उद्देश्य है।

आपके प्रमुख गल्प-संग्रह ये हैं—'मिस ३५ का पति-निर्वाचन', 'मुनमुन', 'आख्यानमयी', 'गृहिणी', 'भूकम्प'।

वीरेश्वरसिंह—'पूत के पाँव पालने में ही दीख जाते हैं' के अनुसार हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली वीरेश्वरसिंह की कहानियों को पढ-कर इतना तो निःसकोच कहा जा सकता है कि वे एक उदीयमान लेखक हैं, उनमें कहानी लिखने की अनुभूति है और कहने का एक विशेष ढंग भी। आपकी कहानियों में जिन लोगों को सयम की शिकायत है, वह थोडा और लिख लेने के बाद दूर हो जायगी, क्योंकि कहानी तो एक अभ्यास की चीज है, निरन्तर लिखते रहने से उसका परिष्कार और परिमार्जन आप-ही-आप होता रहता है। इतना होते हुए भी उनकी भाषा में प्रवाह और प्रौढता का अभाव नहीं, वह सर्वत्र देखा जा सकता है। आपकी भाषा में कहीं-कहीं हमें कवित्वपूर्ण शैली के भी दर्शन होते हैं। एक कुशल कहानीकार की सहृदयता और अन्वीक्षण-शक्ति के दर्शन हमें आपकी कहानियों में भी होते रहते हैं। पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व दिखलाकर आपने उन्हे सजीव और स्वाभाविक बना डाला है। इस दृष्टि से 'परिवर्तन' उल्लेखनीय है। आपकी वर्णन-शैली में ध्वन्या-

त्मकता है, थोड़े मे अधिक कहने की प्रवृत्ति है और भावों को व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता। हमे अपने इस होनहार कहानीकार से अभी बड़ी-बड़ी आशाएं हैं। अस्तु,

भुवनेश्वरप्रसाद—शैली में जैनेन्द्र के पद-चिह्नों पर चलते हुए भी भुवनेश्वरप्रसाद में मौलिकता है। जैनेन्द्र की भाषा मे तो कहीं-कहीं शिथिलता आ गई है, किन्तु आपकी भाषा सर्वत्र एक-सी चलती रहती है। उसमे कहीं किसी प्रकार की शिथिलता देखने को नहीं मिलेगी। 'मौसी' उनकी शैली का सुन्दर उदाहरण है। किसी वात को कहना और किसी वात को कहकर भी उड़ा देना, जिससे पाठक सोचते रहें, आपकी भाषा-शैली की प्रधान विशेषता है। आपकी शैली ओजपूर्ण है, पाठकों पर वह चोट करती रहती है तथा उसमे आधुनिक कहानी-कला के दर्शन होते हैं। आजकल आपकी लेखनी और विचार-शैली उत्तरोत्तर प्रौढ़ होती जा रही है। भुवनेश्वर की कहानी-कला पर यद्यपि पाश्चात्य कहानी-कला का पर्याप्त मात्रा में प्रभाव पड़ा है, लेकिन वे फिर भी भारतीय आधुनिकता को ही विशेष रूप से ध्यान मे रखते है। इनकी समस्त कहानियॉ भाव-प्रधान कहानियों की कोटि में आती हैं, इसीलिए इनमें विषय-सामग्री वहुत थोड़ी है। घटनाओं की अवतारणा केवल इसी उद्देश्य से की गई है जिससे कि पात्रों के चरित्र पर प्रभाव पड़ सके। आपकी दृष्टि कहानी के मनोवैज्ञानिक परिवर्तन की ओर ही अधिक जाती है। Sweetest Songs are those which tell of the saddest thoughts' के अनुसार आप अपनी कहानियों का अन्त दुःख मे ही अधिक करते हैं। कुशल एकांकी नाटककार होने के कारण भुवनेश्वर की कहानियों के कथोपकथन बड़े ही सजीव, संक्षिप्त, स्वाभाविक और मार्मिक होते हैं। उनमे भावों की अनुकूलता का वरावर ध्यान रखा गया है। कहानियों मे आप किसी निश्चित उद्देश्य की ओर तो आप संकेत नहीं करते, दार्शनिक की तरह समस्या मे उलझकर रह जाते है।

सदगुरुशरण अवस्थी—अवस्थी जी की कहानियों मे वर्णन-शक्ति, विचार-शक्ति और विश्लेषण-शक्ति को देखकर उनके सुनहरे भविष्य का सहज ही मे अनुमान लगाया जा सकता है। साहित्य तथा जीवन के आलोचक होने कारण आप वड़ी सतर्कता से अपनी कहानियॉ लिखते है। आपकी कहानियॉ जीवन-तत्त्वों को लिये हुए अधिक होती है, उनमें भाव और रस का अभाव रहता है। यही कारण है कि उनमे आदर्श कल्पना न होकर जीवन की यथार्थ स्थिति

का चित्रण अधिक होता है। आप अपने पात्रों के अन्तर्जगत् की ओर ही अपना ध्यान अधिक ले जाते हैं, वहिर्जगत् से उनका कोई लगाव दृष्टिगत नहीं होता। संलाप सरल और स्वाभाविक होते है। भापा-शैली व्यावहारिक है, इसीलिए आपकी कहानियाँ दिन-दिन लोकप्रिय होती जा रही हैं। उसमें उनके कहने का एक विशेप ढग है, तर्ज है, अदा है, फिर भी असाहित्यिकता नहीं आने पाई है। कहीं-कहीं भापा मे हास्य और व्यग्य का भी अच्छा पुट देखने को मिलता है। 'फूटा-शोशा' आपकी दस कहानियों का एक सुन्दर संग्रह है, जिसकी 'फूटा-शीशा' कहानी इन समस्त गुणों को लिये हुए है। अवस्थी जी से भी हमें अभी वहुत आशा है।

रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाडी'—रमाप्रसाद घिल्ड़ियाल 'पहाडी' की कहानियाँ उन समस्त गुणों से अलंकृत हैं, जिन्हें हम आधुनिक कहते हैं। कहानियाँ लिखने में पहाडी को एक विशेप सफलता मिली है। उनके 'सडक पर', 'मौली', 'वरगद की जड़ें' आदि सग्रह वहुत लोकप्रिय हैं, जिनमे उनकी कहानी-कला दिन-दिन विकसित होती हुई नजर आती है। उनकी 'तमाशा', 'सडक पर', 'मौली', 'वरगद की जड़े', 'विश्राम', 'एक विराम', 'नया मोरचा', 'झगडा' आदि कहानियाँ वास्तव मे सफल वन पडी हैं।

पहाड़ी की कहानियों की प्रमुख विशेपता सैक्स भावना तथा मनोविज्ञान का पुट है। इसमें आपको विदेशी कहानियों से अवश्य सहायता मिली है, किन्तु फिर भी ये उनकी अपनी विशेषताओं से शून्य नहीं हैं। चरित्र-प्रधान कहानियों के लिखने मे आप विशेप प्रवीण हैं। आधुनिक कहानियों के अतर्गत चरित्र-प्रधान कहानियों के कलात्मक विकास की पूर्ति अनेक अशों तक इन कहानियों के द्वारा होती है। पात्रों की आभ्यतरिक भावनाओं का सूक्ष्म चित्रण उपस्थित करने में आपने विशेष कौशल दिखाया है। एक कुशल चित्रकार की भाँति दो-तीन वार हाथ मारते ही आप उनमें गहरा रंग भर देते हैं।

कहानियों के संलाप संक्षिप्त और सारगर्भित हैं। उनकी भाषा-शैली व्यावहारिक है। कहानियों का अन्त पढ़ने योग्य होता है। पाठक जहाँ सोचता है, वहीं कहानी समाप्त नहीं हो जाती। लेखक अपनी रचना-चातुरी के द्वारा उन्हें और दूर तक घसीटने में समर्थ हुआ है और यही कहानी अपने समस्त आलोक को लेकर हमे चकाचौंध कर देती है।

पहाड़ी कहानी-साहित्य के यशस्वी लेखक हैं। उनकी प्रगतिशीलता को देखते हुए उनका भविष्य निःसंदेह उज्ज्वल है।

आरसीप्रसादसिंह—आपने कविताओं के साथ-साथ कहानियाँ लिखकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। 'खोटा सिक्का', 'पंच पल्लव', 'एक प्याला चाय', 'काल-रात्रि' आदि संग्रहों के द्वारा आपने यह सिद्ध कर दिखाया है कि आप भी अपने समकालीन लेखकों से किसी बात मे पीछे नहीं हैं। साधारण विषय को लेकर उसे असाधारण रूप देने की क्षमता आप मे खूब ही है। कहानियों का विकास स्वाभाविक रूप से होता रहता है। भाषा-शैली काव्य के समान कोमल है। 'स्मृति के पथ पर', 'आत्मदान', 'मरम्मत', 'शेष-पत्र' आदि सुन्दर कहानियाँ है।

अन्य लेखक—इस युग के फुटकर लेखकों की संख्या बहुत बढ़ी-चढ़ी है। नित नये लेखक इस क्षेत्र मे प्रवेश कर रहे हैं। विस्तार-भय से हम उनका साहित्यिक परिचय नहीं दे सकते। हॉ, इतना तो अवश्य कहेंगे यदि ये सब इसी प्रकार लिखते गए तो हमारा कहानी-साहित्य बहुत ही धनी हो जायगा। इनमे से कुछ लेखकों के तो कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, कुछ लेखक पत्र-पत्रिकाओं मे ही लिखा करते है। इनकी कहानी-कला विकास मे है। जब वह अपनी चरम-अवस्था पर पहुँच जायगी, तब हम उनकी जमकर आलोचना कर सकेंगे। इन लेखकों के नाम इस प्रकार है:—

डॉ० ब्रजमोहन गुप्त, देवेन्द्र सत्यार्थी, नरेन्द्र, अमृतराय, राजेश्वर-प्रसादसिंह, रामचन्द्र टंडन, रायकृष्णदेव गर्ग, बिन्दु ब्रह्मचारी, रागेय राघव, रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र', ब्रजकिशोर नारायण, विष्णु प्रभाकर, 'निर्मोही', प्रभाकर माचवे, अंचल, शांतिप्रसाद वर्मा, वीरेन्द्र कुमार, मोहनलाल उपाध्याय प्रभागचन्द्र शर्मा, शरत् मुक्तिबोध, श्यामसुन्दर पंड्या 'सुशील', ईश्वरचन्द जैन, गजानन माधव मुक्तिबोध, जिज्ञासु, अनन्तप्रसाद विद्यार्थी, क्षितीन्द्र मोहन मित्र, नानकचन्द टण्डन, जितेन्द्रनाथ, वीरेन्द्र नाथ, शम्भूरत्न मिश्र 'मुकुल', कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव, ठाकुरदत्त मिश्र, लक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु', वाचस्पति पाठक, पं० हंसकुमार तिवारी, अख्तरहुसैन रायपुरी, मंगलाप्रसाद विश्वकर्मा, साधुशरण, आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव, अनन्तगोपाल शेवड़े, सूर्यदेव नारायण श्रीवास्तव, धर्मवीर, माधव, राजकुमार रघुवीरसिंह, शिवनाथ शर्मा, रघुपति सहाय, मोहनलाल नेहरू, दुर्गादास भास्कर, ऋषभ-चरण जैन, कृष्णानन्द गुप्त, रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रो० कन्हैयासिंह, चन्द्रमाराय शर्मा, जयनाथ 'नलिन', कृष्णलाल वर्मा, राहुल, स्वामी सत्यभक्त, किशोरसाहू, देवीदयाल, डॉ० रघुवश, बंसल, मोहनसिंह सेंगर, रामसरन शर्मा, बलदेवप्रसाद

मिश्र, व्यथित, डॉ० रामप्रताप आदि-आदि। इनमे से कुछ लेखकों की प्रतिनिधि कहानियाँ पाठकों की जानकारी के लिए परिशिष्ट में दे दी गई हैं।

उपर्युक्त अन्य कहानी-लेखकों मे से कुछ ऐसे कहानीकार हैं, जिनकी कहानियाँ तो केवल नाम-मात्र की हैं, लेकिन उनकी गणना हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों मे की जा सकती है। उदाहरणार्थ, रायकृष्ण देव गर्ग की 'पंछी' कहानी को ही लीजिए। 'उसने कहा था' की तरह यह एकाकी कहानी भी अपने में पूर्ण है। इसके सुसंस्कृत रूप को देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। कहानी की रोचकता वस्तु पर नहीं पर कलात्मक, मनोवैज्ञानिक और फिर भी अत्यन्त स्वाभाविक प्रदर्शन मे निहित है। इसी प्रकार अमृतराय के 'जोवन के पहलू', रांगेय राघव के 'साम्राज्य का वैभव', विष्णु प्रभाकर के 'आदि और अन्त' तथा 'रहमान का वेटा', ब्रजकिशोर नारायण के 'आज का प्रेम', रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' के 'पाँच धागे', डॉ० ब्रजमोहन गुप्त के 'जय-पराजय', वाचस्पति के 'प्रदीप' तथा 'द्वादशी', अनन्तप्रसाद विद्यार्थी के 'त्रिकोण', क्षितीन्द्रमोहन मित्र के 'प्यार', नानकचन्द टंडन के 'वहूजी', जितेन्द्रनाथ के 'उपवन', 'प्रेम-कहानी' तथा 'वःला', शम्भूरत्न मिश्र 'मुकुल' के 'इलाज', वीरेन्द्रनाथ के 'मंजरी', कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव के 'अधूरा स्वप्न' और ठाकुरदत्त मिश्र के 'उमा' नामक कहानी-सग्रहों की भी कुछ कहानियाँ कलात्मक सौंदर्य से युक्त हैं। देवेन्द्र सत्यार्थी, प्रभाकर माचवे, नरेन्द्र, वीरेन्द्रकुमार, जानकीप्रसाद, बिंदु ब्रह्मचारी भी वहुत सुन्दर कहानियाँ लिखते है।

जिन-जिन प्रमुख हिन्दी कवियो ने कहानी-साहित्य मे भाग लिया है, उनमें कुछ के नाम तो आ चुके हैं, शेष कवियों में दो ही विशेष रूप से उल्लेखनीय है। एक हैं—सुमित्रानन्दन पंत और दूसरे हैं पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'। प्रसिद्ध कवि भगवतीचरण वर्मा की कहानियों का उल्लेख हम कर ही आए है, अब अति सक्षेप में इन दो महाकवियों की कहानियों के सम्बन्ध में साहित्यिक परिचय प्राप्त कराना, आशा है, यहाँ असंगत नहीं होगा। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने काव्य, उपन्यास, निवन्ध आदि क्षेत्रों के साथ-साथ कहानी-क्षेत्र में भी कार्य किया है। 'विल्लेसुर वकरिहा' तो एक रेखा-चित्र है। 'चतुरी चमार' नामक कहानी-संग्रह में उनकी गिनी-चुनी कहानियाँ देखने को मिलती हैं। 'लिली' भी ऐसा ही संग्रह है। 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' नामक कहानी कुछ अंशों तक सफल रचना कही जा सकती है। निराला की कहानियों की प्रमुख विशेषता उनका निरालापन है। भाषा तथा भाव दोनों दृष्टियों से

निराला अपनी निज की विशेषताएं रखते हैं, पर कहानी के गुण उनमे नहीं आ पाए हैं। वे एक बात को अपनी अलंकृत भाषा के द्वारा घुमा-फिराकर कहना तो जानते हैं, पर उनके कथानक मे कौतूहल और चरम-सीमा के दर्शन नहीं होते। क्या ही अच्छा होता यदि वे कहानी के आवश्यक तत्त्वों को ध्यान में रखकर अपनी कहानियों की सृष्टि करते। इसी प्रकार सुमित्रानन्दन पन्त ने भी 'पॉच कहानियॉ' नामक संग्रह तो निकाला, पर उन्हे भी सफलता नहीं मिल सकी। यह सच है कि पन्त की इन कहानियो मे हमे नवीन कला के दर्शन होते हैं, लेकिन उनकी कवि-कला ने उनकी कहानियों के सौन्दर्य को क्षत-विक्षत कर डाला है। हमारी तुच्छ सम्मति में हिन्दी के समस्त कवि-कहानीकारों में जितनी अधिक सफलता भगवतीचरण वर्मा को मिली है, उतनी और किसी को नहीं। कवि-कहानीकारों को यह नहीं भूल जाना चाहिए कि कहानी एक कला है, उसके लिखने मे अभ्यास की आवश्यकता है और इनसे भी अधिक उसके प्रत्येक अंग की अच्छी जानकारी होनी चाहिए, केवल अलंकृत भाषा-शैली और रहस्यमयी भावनाओं से ही कहानी सफल नहीं हो जाती।

महिला कहानी-लेखिकाएं—ज्यों-ज्यों सार्वजनिक समानाधिकार की भावना जोर पकड़ती गई, त्यों-त्यों स्त्रियॉ भी कहानी-क्षेत्र मे भाग लेने लगीं। महिला-कहानी-लेखिकाओं मे सर्व-प्रथम उमा नेहरू ने अपनी लेखनी उठाई। उनके बाद शिवरानी प्रेमचन्द ने लिखना आरम्भ किया। श्रीमती शिवरानी देवी ने बहुत सुन्दर कहानियॉ लिखी है। उनकी कहानियों का संग्रह 'नारी-हृदय' प्रकाशित हो चुका है। 'बीती यादे' उनकी एक सफल कलापूर्ण कहानी है, जिसमे कहानी के समस्त गुण विद्यमान हैं। फिर तो सुप्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने भी कुछ अच्छी कहानियॉ लिखना आरम्भ कर दिया। आपके 'सीधे सादे चित्र', 'उन्मादिनी', 'बिखरे मोती' आदि संग्रह इस कथन की पुष्टि करते हैं। उनको 'तांगे वाला', 'राही', 'दो साथी', 'प्रोफेसर मित्रा' आदि कहानियॉ विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिनमे कथानक का विकास स्वाभाविक रूप से हुआ है। सुभद्रा जी की कहानियॉ सीधी-सादी है, लेकिन फिर भी उनका पाठकों के हृदय पर अमिट प्रभाव पड़ जाता है। भाषा की दृष्टि से भी ये कहानियॉ सफल है। ये कहानियाँ प्रधानतः हमारे दैनिक-जीवन से सम्बन्ध रखती हैं, जिनमें नित्य की समस्याओं पर सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला गया है। श्रीमती तेजरानी पाठक ने भी थोडे दिनों मे ही कहानी लिखने मे अच्छी ख्याति अर्जित कर ली है। 'अञ्जलि' नामक संग्रह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इन तीनो

लेखिकाओं में यद्यपि श्रीमती पाठक और चौहान ने केवल अल्प वर्षों तक ही लिखकर अवकाश ग्रहण कर लिया, किंतु श्रीमती शिवरानी देवी ने लिखना जारी रखा तथा जो-कुछ लिखा, वह ठोस है।

सौभाग्य से, आगे चलकर अन्य महिलाए भी इन सबसे प्रभावित होकर साहित्यिक क्षेत्र मे उतर पडीं और उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वे भी अच्छा लिख सकती है। इस दृष्टि से श्रीमती उषादेवी मित्रा का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है। उषादेवी मित्रा ने बहुत-सी कहानियाँ लिखी हैं और आज भी उसी तेजी और तत्परता से लिखती चली जा रही हैं। 'आँधी के छंद' नामक संग्रह का पाठक उनकी 'प्रतीक्षा', 'पथिक', 'परिचय', 'पिउ कहाँ', 'शेष-उत्तर'—जैसी कहानियों को शायद ही भूल सके। इनकी कहानियों की संख्या अधिक होने के कारण हमे सम्भव है सर्वत्र कहानी-कला के समस्त गुण न भी दिखाई दें, लेकिन यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि कुछ कहानियाँ तो काफी सुन्दर हैं। इधर 'मेघ-मल्लार' संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है। 'समझौता' उषाजी की एक सफल और उत्कृष्ट कहानी है। इन कहानियों की भाषा तत्सम शब्दों को लिये हुए अधिक है, जिससे कहीं-कहीं भारीपन भी आ गया है और पाठक को यह भारीपन कहानी के अन्त तक उठाने में जरा कठिनाई ही होती है। शैली मे अलंकृत शब्दों के आधिक्य से स्वाभाविकता और सजीवता को कुछ धक्का ही लगा है, इसीलिए कहीं-कहीं कृत्रिमता स्पष्ट रूप से दिखाई देने लग जाती है। यदि इन कतिपय दोषों का परिहार कर दिया जाता तो हिंदी-कहानी-साहित्य मे उनका स्थान श्रेष्ठ कहानीकारों में गिना जाता और कहानियों का कला-पक्ष भी सर्वथा निर्दोष हो जाता।

श्रीमती सत्यवती मलिक ने यद्यपि केवल इनी-गिनी कहानियाँ ही लिखी हैं, लेकिन उनमें कहानी-कला के प्राय: सभी गुणों का समावेश हो गया है। 'दो फूल' संग्रह से आपको विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। इनकी कहानियों का आदि-अन्त बड़ा मार्के का होता है। भाषा-शैली अनूठी और धारावाहिक होती है। श्रीमती होमवती देवी की भी कहानियाँ हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं मे निरन्तर प्रकाशित होती रहती हैं। आप भी अच्छा लिख लेती हैं। आपके निसर्ग, धरोहर आदि कहानी-संग्रह देखने में आए हैं। शुभ श्री महादेवी वर्मा ने कविता और निबंध के क्षेत्रों में आकर 'स्मृति की रेखाएं' से एकदम पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। महादेवी की कहानियाँ उच्च-स्तर की होती हैं। उनमें करुणा और वेदना की सुन्दर व्यंजना की गई है। यथार्थ होते हुए

भी उनमें अमिट सौंदर्य है। घटनाएं अल्प और अनुभूतियों का आधिक्य है। भाषा-शैली भावपूर्ण है। उसमे काव्य का-सा आनन्द देखने को मिलता है। 'घीसा' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

इधर चन्द्रप्रभा ने भी कहानियाँ लिखना आरम्भ किया है, जिनमें सुनहरे भविष्य का आभास मिलता है। कमलादेवी चौधरी ने भी कुछ सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें 'स्वप्न' एक उत्कृष्ट कहानी है। इसी प्रकार राजेन्द्र कुमारी सेठी की 'उर्वशी' का भी स्थान सुरक्षित है। श्रीमती तारा पाण्डेय ने कविता के साथ-साथ कुछ भावपूर्ण कहानियों की सृष्टि की है। अन्य लेखिकाओं में रत्नकुमारी, श्रीमती सत्यवती मल्लिक, कमला त्रिवेणीशंकर, सुशीला आगा, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, रामेश्वरी शर्मा, कुमारी विद्यावती वर्मा आदि मुख्य हैं, जो अवकाश निकालकर कुछ-न-कुछ लिखती ही रहती है। हमे अपनी महिला-कहानी-लेखिकाओं पर गर्व है। आशा है इनसे प्रभावित होकर अन्य महिलाएं भी उच्चकोटि की कहानियाँ लिखकर अपनी विद्वत्ता और प्रतिभा का परिचय देंगी।

हास्य-प्रधान कहानीकार—यहाँ हम हिन्दी-साहित्य की हास्यपूर्ण आधुनिक कहानियों पर आदि से लेकर अन्त तक विहंगम दृष्टि डालते हुए विचार करेंगे। हास्य-पूर्ण कहानियों का हिन्दी मे हम सर्वथा अभाव तो नहीं कह सकते, लेकिन फिर भी अभाव-सा ही है। इस सम्बन्ध मे हमे स्वर्गीय बाबू जयशकर 'प्रसाद' के वे अमर वाक्य याद आ रहे हैं, जो उन्होंने अपने 'विशाख' नाटक की भूमिका मे कहे है। उनका भावार्थ यही है कि हास्य मनोरंजिनी वृत्ति का विकास है। जिस जाति मे स्वतंत्र जीवन की चेष्टा है, वहीं इसके सुगम उपाय और सभ्य परिणाम दिखाई देते हैं। परन्तु दुःख और दारिद्र्य से परिपूर्ण अभागे भारत को तो अपने रोने से ही फुरसत नहीं, विनोद का समाज मे नामो-निशान तक नहीं, फिर यहाँ उसका उत्तम रूप कहाँ से उपलब्ध हो सकता है? ज्यों-ज्यों हमारी जातीयता सुरुचि-सम्पन्न होती जायगी, त्यों-त्यों शुद्ध मनोरंजनक और विनोदपूर्ण और व्यंग का विकास होता चला जायगा। प्रसाद ने अपने जीवन-काल मे तो देश की स्वतन्त्रता के दर्शन नहीं किये थे। उस समय तो हमारा देश शताब्दियों से पराधीनता की बेडियों से जकड़ा हुआ था। इसीलिए ऐसी विषम परिस्थितियो मे शुद्ध स्वाभाविक विनोदपूर्ण तथा व्यंग्यात्मक कहानियों का उद्भव नहीं हो सका तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं। आज हम कहने के लिए तो स्वतन्त्र हो ही गए है, किन्तु हमे सामा-

जिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों की स्वतन्त्रता मिलना शेष है। आज समाज की भीतरी व्यवस्था पहले से भी अधिक खोखली होती जा रही है, इसीलिए हमारा रोना-पीटना पहले से भी चौगुना हो गया है। यही कारण है कि आज भी विनोदपूर्ण कहानियों का अभाव ज्यों-का-त्यों खटकता रहता है और यह तब तक खटकता रहेगा जब तक कि मानव-जाति आर्थिक-सकटों से मुक्त होकर अधिकाधिक सुखी और मगलमय नहीं हो जाती। ऐसी अवस्था में साहित्य के अन्य अंगों की तरह कहानियों में भी इस उपयोगी रस का समावेश नहीं हो पाया। जो कुछ जिस रूप मे दिखाई देता है, वह नाम-मात्र का है, आँसू पोंछने के लिए है, परम्परा का निर्वाह करने के लिए लाया गया है अथवा यों कह दीजिए कि इसे लेकर हम भी अन्य साहित्यों के सामने खड़े होने का दुस्साहस कर सकते हैं।

हास्य प्रधान कहानियों का सूत्रपात हमारे यहाँ सर्वप्रथम गंगाप्रसाद श्रीवास्तव (जी०पी० श्रीवास्तव) ने सन् १६११ ई० मे अपनी प्रथम कहानी 'पिकनिक' से किया। आगे चलकर और इस समय तक आते-आते उन्होंने अनेक कहानियाँ लिखीं। इस प्रकार उन्होंने आरम्भ से लेकर अब तक अपने लिए हास्य-रस के ही क्षेत्र को चुना। उनका हास्य लोक-प्रिय भी अधिक हुआ। इसका सीधा-सादा कारण तो यही है कि उन्होंने अपने सम्मुख लोक-रुचि को अधिक रखा है। साहित्यिकता तो उसके बाद की चीज है। उन्होंने यद्यपि हास्यपूर्ण कहानियाँ पर्याप्त मात्रा में लिखी है, किन्तु ध्यान पूर्वक देखने से विदित होगा कि 'लम्बी दाढ़ी' ही उनका सब से विशेष लोक-प्रिय संग्रह हुआ है। दो-चार अन्य कहानियाँ भी सुन्दर बन पड़ी हैं, जिनमें 'भड़ामसिह शर्मा', 'गुदगुदी', 'लतखोरीलाल', आदि का नाम लिया जा सकता है। शेष कहानियाँ शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। 'जी०पी० श्रीवास्तव' का हास्य इन अन्य रचनाओं में शिष्ट हास्य की श्रेणी में नहीं आ सकता, क्योंकि इन्होंने स्वतः प्रयास किया है। वे हमें जबरदस्ती हँसाने का प्रयत्न अधिक करते हैं। शब्दों के चयन करने में उन्होंने विशेष कौशल से काम लिया है। ये शब्द ही ऐसे होते हैं, जिन्हे पढ़कर हमें हँसी आने लग जाती है। इतना होते हुए भी निःसंकोच स्वीकार करना पड़ेगा कि उन्होंने जो कुछ हमें दिया है, वह अपने ढग का एक निराला साहित्य है। संक्षेप मे, हम कह सकते है, कि 'जी०पी श्रीवास्तव' का हास्य अत्यन्त सीधा-सादा है। उनकी कहानियों मे पाठकों को हँसाने की विविध सामग्री जुटाई गई है, किन्तु सभ्य, शिष्ट और साहित्यिक

मनोवृत्ति वाले लोगों के लिए यह हास्य उतना महत्त्व का नहीं है, जितना साधारण जनता के लिए।

आगे चलकर हास्य-प्रधान कहानी-लेखकों मे जी०पी० श्रीवास्तव के पद-चिह्नों का अनुशीलन करते हुए हरिशंकर शर्मा, शिवनाथ शर्मा और कृष्णदेव प्रसाद गौड़ (बेढ़ब बनारसी) हमारे दृष्टि-पथ पर आते है। इन तीनों लेखकों मे प्रथम दो लेखक तो साधारण हैं, लेकिन तीसरे लेखक 'बेढ़ब बनारसी' की कहानियों का कथानक साधारण कोटि का होते हुए भी वे न मालूम हमे क्यों सुन्दर लगती हैं? कृष्णदेव प्रसाद गौड के जीवन मे हास्य है, इसलिए साहित्य में हास्य-रस की कहानियों की सृष्टि करके वे जनता की जिह्वा पर चढ़ गए है। यथार्थ में उनका हास्य भी सामान्य जनता के लिए तो उपयुक्त है, लेकिन उच्च कोटि की साहित्यिक जनता के लिए वह उपयोगी नहीं कहा जा सकता। इन सब लेखकों से कुछ ऊँचे दरजे का हास्य हमे अन्नपूर्णानन्द की कहानियों मे देखने को मिलता है। 'महाकवि चच्चा', 'मेरी हजामत', 'मगन रहु चोला' आदि में शिष्टता का उल्लंघन नहीं किया गया है। अन्नपूर्णानन्द शुद्ध हास्य के लेखक हैं। उनमे हास्य के साथ-ही-साथ तीव्र व्यंग्य भी चलता रहता है। उनकी 'अकबरी लोटा' नामक कहानी इसका ज्वलंत उदाहरण है।

राधाकृष्ण ने भी कुछ सुन्दर हास्यपूर्ण कहानियों की अवतारणा की है, जिनमें उनको उत्तरोत्तर सफलता मिल रही है। उनकी कहानियाँ यद्यपि आकार मे छोटी होती हैं, तथापि उनमें हास्य-रस का एक अनूठा प्रवाह अविरल रूप से बहता रहता है। फिर आपकी शैली इतनी विशिष्टता लिये हुए होती है कि वह पाठकों के हृदय में अपना घर कर लेती है। बद्रीनाथ भट्ट ने हास्य-प्रधान कहानियों के लिखने मे अच्छी अभिरुचि दिखलाइ है। कुछ गम्भीर कहानी-लेखकों मे, जिनकी विवेचना हम कर आए हैं, भी हास्य और व्यग्य का अच्छा पुट देखने को मिल जाता है, लेकिन उनको ऐसी कहानियाँ बहुत ही थोड़ी हैं। प्रेमचन्द ने 'मोटेराम शास्त्री' को अपनी कहानियों का नायक बनाकर इस प्रकार की कहानियों के अभाव की पूर्ति करने का अच्छा प्रयास किया है, जिनमे उच्चकोटि का हास्य पाया जाता है। मोटेराम का 'सत्याग्रह' तो अपूर्व है। प्रेमचन्द का स्थान यहाँ भी सुरक्षित है, इसमे कोइ सन्देह नहीं। पंडित विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' और भगवतीचरण वर्मा की कुछ कहानियाँ भी हास्य तथा व्यग्य से ओत-प्रोत हैं। इनमे वर्मा जी को अधिक सफलता मिली है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' भी अपनी कहानियों में कभी-कभी हमे हँसा देते हैं।

आजकल सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' इस ओर विशेष रूप से ध्यान दे रहे हैं।

हास्य-प्रधान कहानी-लेखकों में मिर्ज़ा अज़ीमबेग चुगताई का स्थान महत्त्वपूर्ण है। आपकी कहानियाँ हास्य-रस के उत्कृष्ट नमूने हैं। 'गीदड़ का शिकार', 'लेफ्टिनेंट', 'कोलतार', 'शरीर बीबी' आदि उनके कुछ ऐसे संग्रह हैं, जिनमें हास्य-रस की श्रेष्ठता के दर्शन हो सकते हैं। 'गीदड़ का शिकार', 'पट्टी', 'यह तस्वीर किसकी है', 'खो गया' आदि तो ऐसी कहानियाँ हैं, जिन्हें पढ़कर यथार्थ में स्वाभाविक हँसी फूट निकलती है। इस हँसी का जीवन में महत्त्व-पूर्ण स्थान है। यह बाजीगरों के खेल की हँसी नहीं है। चुगताई की कहानियों में खानदानी मुसलमानों का रहन-सहन, घरेलू वातावरण बड़ी सजीवता से उतर आया है। कहानी का कला-पक्ष भी उज्ज्वल है, जिससे उनमें असाहित्यि-कता लेश-मात्र भी नहीं आने पाई है। 'कोलतार', 'अँगूठी', 'टेलीफोन' आदि में चलकर तो उनका हास्य परिमार्जित हुआ-सा दृष्टिगोचर होता है। इधर हिन्दी के हास्य-साहित्य में एक नवीन प्रतिभा उदय हुई है, वे हैं श्री जयनाथ 'नलिन'। नलिन की अपनी मौलिक शैली है। उनकी 'नवाबी सनक', 'शतरंज की मोहरें', 'जवानी का नशा' तथा 'टीलों की चमक' नामक संग्रह इसके ज्वलन्त साक्षी हैं। उनका हास्य शिष्ट और भद्रता से ओत-प्रोत होता है। इन समस्त लेखकों द्वारा हिन्दी की दरिद्रता अनेक अंशों में दूर हुई जान पड़ती है।

जैसा हास्य हिन्दी में अब उपलब्ध होता जा रहा है, वह किसी भी रूप में परिष्कृत नहीं कहा जा सकता। यह प्रायः अपनी विचित्रता पर ही निर्भर रहता है या निर्भर है स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध पर। अब हमारे हास्य-प्रधान कहानीकारों के लिए मानो जोरू और ससुराल ही दो क्षेत्र अवशिष्ट रह गए हैं। आज के साहित्यिक भोंडेपन की अभिवृद्धि होते देख दुःख होता है। इसी प्रकार आज के हास्य-प्रधान लेखक, जो अश्लीलता और पेटू ब्राह्मणों की ही शरण लिया करते हैं, वे तमाशबीन हैं—साहित्यिक कलाकार नहीं। आशा है, भविष्य में लेखक इस क्षेत्र में विशेष सतर्क रहेंगे और बुद्धिमानी से काम लेंगे। अस्तु,

अनूदित कहानी-साहित्य—अन्यान्य भाषाओं की श्रेष्ठ कहानियों के अनुवाद भी प्रस्तुत किये जा चुके हैं, और किये जा रहे हैं, जिनके द्वारा हमारा कहानी-साहित्य दिन-दिन गतिशील हो रहा है। हमारी तुच्छ सम्मति में यह अनू-दित कहानी साहित्य बड़ा उपयोगी है। तरुण कहानीकारों का ध्यान आकर्षित

करने तथा उन्हे सुपथ पर लगाने के हेतु अन्यान्य भाषाओं से अनुवाद प्रस्तुत करना विशेष लाभदायक सिद्ध हो सकता है । जो आत्मा, रूप और शैली की दृष्टि से अद्वितीय कहानियाँ हैं जिनका कि हमारे साहित्य मे सर्वथा अभाव है, इस प्रकार की कहानियों का ही अनुवाद हमारे यहाँ होना चाहिए—चलती हुई चीज़ों के अनुवाद से कोई लाभ नहीं होने का।

अनुवादकों मे हमारे यहाँ धन्यकुमार जैन, श्रीगोपाल नेवटिया, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, रामचन्द्र वर्मा, ठाकुर राजबहादुरसिंह, श्रीराम शर्मा आदि के नाम सगर्व लिये जा सकते हैं। इन समस्त लेखकों के द्वारा हमारे साहित्य में अन्यान्य भाषाओं की सुन्दर और कलापूर्ण कहानियाँ पढ़ने को मिली हैं। अनूदित हास्य-प्रधान कहानियों में बंगला के परशुराम की कहानियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जिनका सुन्दर अनुवाद धन्यकुमार जैन ने किया। इनके दो संग्रह 'भेड़िया-धसान' और 'लम्बकर्ण' के नाम से प्रकाशित हो चुके है। इसी प्रकार ऋषभ-चरण जैन, रामचन्द्र टण्डन, परमेश्वरीप्रसाद गुप्त आदि ने भी अनुवाद-साहित्य की समृद्धि मे प्रशंसनीय हाथ बटाया है। जिन-जिन अन्य भाषाओं की कहानियों का श्रेष्ठ अनुवाद हमारे यहाँ हुआ है, उनमे से कुछ उल्लेख-नीय ये हैं:—आस्करवाइल्ड की कहानियाँ, मानव-हृदय की कहानियाँ (मोपांसा), पूँजीपति (जार्ज गिसिंग), मेरा देश (अहमद नदीम), तूफान (ससार के श्रेष्ठ कहानी-लेखक), बटोही (खलील जिब्रान), जीवन-सन्देश (खलील जिब्रान), शतरंज का खेल (स्टीफन ज़्विग) आदि आदि।

७

उपसंहार

कहानी लिखने वाले उन भाइयों से दो शब्द यदि वे बुरा मानें! आज कहानी रूपी दीपक पर असंख्य पतंगे उडकर आ रहे हैं। कहानी की लोक-प्रियता और पत्र-पत्रिकाओं के झूठे मान ने उन्हे ऐसा करने के लिए अग्रसर किया है। साथ ही अपने इस साधन के द्वारा वे अपनी व्यक्तिगत रहस्यवाद की बातें दूसरों के कानों तक पहुँचाते हैं। कहानी का यह प्रयोग सर्वथा अनुचित और घातक है। इसीलिए तो खेद के साथ लिखना पडता है कि पतगों मे सच्चे प्रेमी केवल इने-गिने ही हैं। कहानी-साहित्य की यह दुर्दशा देख कर गला भर आता है। क्या सस्ता और भद्दा प्रेम ही उनका प्रेरक हो सकता है? नवीन लेखकों को कहानी लिखते समय उन विशेप नियमों का पालन करना चाहिए जिनका उल्लेख पुस्तक के आरम्भिक प्रकरणों में हो चुका है। साथ ही कहानी प्रकाशित कराते समय जरा सयम, धैर्य और शाति से काम लेना चाहिए। उनकी प्रतिभा का ह्रास नहीं होने का और न पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित होते ही उनकी यश-पताका चारों दिशाओं में फहराने लग जायगी। फिर इतनी व्यग्रता क्यों? मैं अपने ऐसे मित्रों से कहूँगा कि वे तनिक देर के लिए रुकें और शीघ्रता न करें। साहित्य में शांति और धैर्य के साथ ही कार्य करना लाभदायक होगा। चिरन्तन साहित्य भी हम तभी दे सकेंगे। कहानी लिखना कोई गुड़िया का खेल नहीं है। उसके लिए एक विशेष तपस्या की आवश्यकता है। कहानी किसी पर लिख डालना जितना आसान है, उसके दुष्परिणामों को झेलना उतना ही कठिन! दूसरी ओर सम्पादकों को भी चाहिए कि पैसे के लोभ में पड़कर वे साहित्यिकता का गला न घोटें। वे साहित्यिकता की ओर क्यों ध्यान देने लगे? निराश प्रेमियों की भद्दी तथा कुरुचिपूर्ण कहानियाँ उन्हे मुफ्त ही में मिल जाया करती हैं। इस तरह उनका पैसा भी बच जाता है और पत्र की खाना-पूरी भी हो जाती है। अन्धी जनता ऐसी कहानियों के पीछे तबाह हो रही है। आज इस प्रकार के सम्पादकों और लेखकों पर कडा नियन्त्रण रखे बिना हमारी कहानियों का भविष्य उज्ज्वल कदापि नहीं हो सकता, हाँ-नहीं हो सकेगा। यह एक सत्य

है। आजकल भारत को जिन कहानियों की आवश्यकता है, वैसी कहानियाँ बिलकुल नहीं लिखी जा रही है। सर्वत्र सस्ती, सारहीन, कुरुचिपूर्ण और गन्दी कहानियों ने हमारा दिल-दिमाग जकड़ रखा है। पत्र-पत्रिकाओं मे पढ़िये अथवा सिनेमा-घरों मे जाइये, सब जगह यही हाल है। मैं अपने मित्रों से और सप्रसंग अपने विद्यार्थियों से यही कहा करता हूँ कि आजकल की मानसिक-हीनता तथा नैतिक पतन का सबसे बड़ा कारण चित्रपट है। हम अपनी नव जात स्वतन्त्रता की रक्षा किस प्रकार करें, इसका किसी को कुछ भी ध्यान नहीं है। भविष्य के लिए हमें बड़ी सावधानी, होशियारी तथा बुद्धिमानी से कहानियों की सृष्टि करनी होगी। आज हमें नये सिरे से कहानी-साहित्य का सृजन करना होगा। आशा है, नवीन आवश्यकताओं को दृष्टि-पथ पर रखते हुए कहानीकार उत्कृष्ट कोटि की मौलिक कहानियो द्वारा हमारा मनोरंजन करेंगे और साथ-ही-साथ हमे साहित्यिकता भी प्रदान करेंगे। इसी मे 'आधुनिक-कहानी' की सार्थकता है। अस्तु !

आलोचना करने का ढंग

इस अंतिम प्रकरण में हम हिन्दी-साहित्य की एक प्रतिनिधि कहानी लेकर उसकी आलोचना प्रस्तुत करेंगे। इसके लिए हम चन्द्रधर शर्मा गुले की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' को लेते हैं। किसी भी लेखक की कहा को पढ़कर उसकी आलोचना इसी ढग पर करनी चाहिए। आशा है, कहा की आलोचना करने का यह ढग विद्यार्थियों के लिए विशेप लाभदायक सि होगा। अस्तु,

'उसने कहा था'—[चन्द्रधर शर्मा गुलेरी]

१ *विषय-प्रवेश*—कहानी-साहित्य में वंग-महिला की 'दुलाई वाल (सरस्वती सन् १९०७ ई०) के अनन्तर हिन्दी-संसार के कुछ लव्ध प्रतिष्ठि लेखकों ने दैनिक जीवन की साधारण घटनाओं और प्रसगों को लेकर महत्त्व पूर्ण और उच्च कोटि की प्रभावशाली कहानियों की सृष्टि करना आरम्भ किया, जिनमें जयशकर 'प्रसाद' और चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के नाम उल्लेखनी हैं। सच तो यह है कि 'दुलाई वाली' से प्रभावित होकर प्रसाद जी ने 'ग्राम (इन्दु, सन् १९११ ई०) नामक कहानी की अवतारणा की और गुलेरीजी 'सुखमय जीवन' (भारत मित्र, सन् १९११ ई०), ये दोनों कहानियाँ स्वतन्त्र रूप से लिखी जाने पर भी वंग-महिला की कहानी से मिलती-जुलती हैं, दोन मे 'दुलाई वाली' के यथार्थवादी चित्रण का अनुकरण किया गया है। इतन होने पर भी उनमे अपनी मौलिकता है, निजी विशेषता है। मौलिकता से मे अभिप्राय कथानक, पात्र, कथोपकथन आदि के सर्वांश में मौलिक होने नहीं, प्रत्युत सामान वैसा ही होने पर भी एक नूतनता, हृदयगत सूक्ष्म भावनाओं की सजीवता और एक विशेष काव्य-उत्पादन-शक्ति से है, जिस तुलसी और शेक्सपियर तक अपनाते आये हैं और हम उन्हें मौलिक कहते हैं 'ग्राम' नामक कहानी 'प्रसाद' की प्रथम कहानी कही जाती है, जो साधारण घटनाओं और प्रसंगों को लिये हुए भी अपने ढग की एक ही कहानी है

ज्वालादत्त शर्मा की 'विधवा' की भाँति इसमे दैवी घटनाओं और संयोगों (Chances and Coincidences) का सहारा लिया गया है, जो तत्कालीन कहानी-लेखकों की रुचि थी। नायक मनोहरलाल जमींदार को मार्ग ढूँढ़ते-ढूँढते लड़की का मिल जाना, लड़की द्वारा मनोहर को अपने घर ले जाना, विधवा माँ द्वारा करुण गाथा सुनाना और अन्त मे, मनोहर कुन्दनलाल का ही पुत्र निकल जाना दैवी-घटनाएं और सयोग नहीं तो और क्या हैं? ठीक इसी समय ('भारत-मित्र' सन् १९११ ई०) मे प्रकाशित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'सुखमय जीवन' उनकी प्रथम कहानी है।

'सुखमय जीवन' को पढ़ने से ज्ञात होगा कि इसमे कोई नूतनता व नवीनता नहीं; वही सामयिक लोक-रुचि प्रदर्शित की गई है। कहानी आकस्मिक घटनाओ के वल पर सरकती हुई पाठकों का हृदय गुदगुदाती है। विकास जैसा कहानियों मे होना चाहिए वह इसमे नहीं है। इस कहानी का प्रमुख पात्र जयदेवशरण वर्मा, वी० ए० एल-एल० वी० के परीक्षा-फल के लिए प्रतिक्षण व्याकुल और अधीर रहता है। अपनी इस चिन्ता के भार से मुक्त हो जाने की मधुर लालसा मे वह कालानगर अपने एक मित्र के यहाँ जाता है। मार्ग मे साइकिल जवाव दे देती है और जयदेव को पैदल चलना पड़ता है। लेखक यहाँ पर उपयुक्त अवसर पाकर उसकी एक लड़की से भेंट करा देता है, जो उसे 'ग्राम' के मनोहरलाल की भाँति अपने घर ले जाती है। रास्ते में वार्तालाप का क्रम जारी रहता है और इससे वात-ही-वात मे दोनों में प्रेम उत्पन्न हो जाता है तथा अन्त मे, एक दिन दोनों का विवाह भी हो जाता है। इस कहानी मे गुलेरीजी ने एक यथार्थ वातावरण की सृष्टि करके कहानी को सुन्दर और स्वाभाविक वनाने का प्रयत्न अवश्य किया है, लेकिन वे पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाए है। कहानी मे वहुत-कुछ कच्चापन और शिथिलता है। कथानक की वह तारतम्यता भी सर्वत्र एक-सी लक्षित नहीं होती। कहानी की चरम-सीमा (Climax) पर तो कहानी-साहित्य के विद्यार्थी को एक आपत्तिजनक असन्तोष होगा। जयदेव और कमला का विवाह एक खटकने वाली घटना ही नहीं वरन् अस्वाभाविक और अतिरंजित भी है। सड़क पर इस प्रकार चलते-चलते न मालूम कितने पंचर होते होंगे, यदि इस प्रकार पर-पुरुष और पर-स्त्री मे आँखे लड़ते-लड़ते विवाह ही हो जाया करे, तो फिर चाहिए ही क्या? हाँ, जहाँ तक पारस्परिक वार्तालाप और घर ले जाने का प्रश्न है, हम गुलेरीजी का साथ शायद दे सकें, पर

इस अस्वाभाविक घटना का साथ कदापि नहीं दे सकते।

गुलेरीजी की दूसरी कहानी 'बुद्धू का कॉटा' भी आदर्श कहानी की कसौटी पर खरी उतरने वाली नहीं है, पर इसमे 'सुखमय जीवन' की तरह कच्चा-पन नहीं है। इसमे लेखक के उन्नतिशील विचारो और जीवन के प्रति दृष्टिकोण का क्षीण परिचय प्राप्त होता है। इतना होते हुए भी कहीं-कहीं अप्रासंगिकता के दोप स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। कहानी की नायिका भागवती के चरित्र मे कृत्रिमता अधिक है, स्वाभाविकता कम और उस पहाडी टट्टू वाले की घटना तो सर्वथा अरुचिकर और अस्वाभाविक प्रतीत होती है। ऐसा जान पडता है मानो गुलेरीजी ने किसी विदेशी कहानी से प्रभावित होकर इस कहानी की सृष्टि की हो। अंग्रेजी साहित्य मे इससे मिलती-जुलती(Anthoany trollope) की कहानी (Malachi's Cove) है। हमारे विचार से इसी कहानी से प्रभावित होकर गुलेरीजी ने 'बुद्धू का कॉटा' कहानी लिखी है।

तीसरी कहानी, जो गुलेरीजी ने लिखी है, वह है—'उसने कहा था' ('सरस्वती' अक्तूबर सन् १६१५) जिससे कि हिन्दी-विद्यार्थी चिर-परिचित हैं। बस, ये ही तीन कहानियाँ गुलेरीजी ने हिन्दी कहानी-साहित्य को प्रदान की हैं। निबन्ध-साहित्य मे जो स्थान सरदार पूर्णसिंह को प्राप्त है, वही स्थान कहानी-साहित्य में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी को प्राप्त है। स्पष्ट है कि लेखक का महत्त्व अधिक लिखने पर निर्भर नहीं करता, निर्भर करता है उसके सुन्दर लिखने पर। हमारी दृष्टि आलोचना प्रस्तुत करते समय 'कितने' पर से 'कैसे' की ओर अधिक होनी चाहिए। इस दृष्टि से गुलेरीजी कहानी-साहित्य मे अमर हो गए हैं।

'उसने कहा था' की आलोचना के पूर्व मुझे इधर-उधर को एक-दो बातें और कहनी हैं। साहित्यिक दृष्टि से भले ही 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का कॉटा' का कोई इतना अधिक महत्त्व न हो, पर कहानी-साहित्य के विकास की दृष्टि से इनका मूल्य बढ़ जाता है। गुलेरीजी के ये प्रयोग यथार्थ मे कथा-भवन की सुन्दर सीढ़ियाँ हैं। सन् १६११ ई० तक का कहानी-साहित्य निर्बल अशक्त था। उसमें न तो प्रौढ़ता थी और न शक्ति ही। वह तो उस अबोध बालक के समान था, जो धूल मे गिरता-उठता कला-भूमि पर घुटनों के बल चलना सीख रहा था। समय और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए जो कुछ भी लिखा गया, वह थोडा होते हुए भी बहुत था। आज जो कहानी-कला पूर्ण पोषित होकर हमारे सम्मुख आई है, इसका बहुत-कुछ श्रेय प्रेमचन्द,

प्रसाद और गुलेरीजी की आरम्भिक कहानियों को ही है। ऐसे समय में जब कहानी-साहित्य नहीं के बराबर था, 'उसने कहा था'-जैसी आदर्श कलापूर्ण कहानी लिख देना निःसन्देह एक महान् साहित्यिक आश्चर्य है। गुलेरीजी की इस अंतिम कहानी की गणना आज भी सर्वश्रेष्ठ कहानियों में की जाती है। कहानी-कला का वस्तुतः पूर्ण परिष्कार जैसा इस कहानी में हो पाया है वैसा शेष दो कहानियों मे नहीं। अतः हमें देखना चाहिए कि इसमें ऐसी कौन-कौन सी विशेषताएं हैं, जिनके कारण इसकी गणना इतनी उच्चकोटि की कहानियों में की जाती है।

२. *आरम्भ*—'उसने कहा था' में कहानी-कला पूर्ण रूप से विकसित हुई है। आकार, व्यंजना, वातावरण और सजीवता प्रायः समस्त बातों मे यह बेजोड़ है। कहानी के प्रारम्भिक भाग में गुलेरीजी ने एक ऐसे यथार्थ वातावरण की सृष्टि की है, जिससे कहानी को नवजीवन मिल गया है। इसे पढ़कर हमारे सामने एक सजीव और संश्लिष्ट चित्र उपस्थित हो जाता है, जिसे हम नित्य ही शहरों मे देखा करते हैं। अतएव हम इसे कोरी कल्पना न कहकर संसृति का एक सजीव चित्र ही कहेंगे। द्वितीय, इस वातावरण की भव्यता एवं विशालता के बीच इसी प्रारम्भिक भाग मे नायक और नायिका का लेखक ने प्रथम मिलन कराकर कहानी के लिए विकास का मार्ग अनूठे ढंग से खोल दिया है। जिस प्रकार मेघ-माला से आच्छादित चन्द्रमा के बाहर निकलने में कोई सन्देह नहीं रह जाता, ठीक उसी प्रकार उस लड़के और लड़की का क्षीण वार्तालाप पढ़कर हमारे हृदय मे यह धारणा बद्धमूल हो जाती है कि आगे चलकर लेखक इनके विषय में कुछ कहेगा और इस जानकारी के लिए हमारी उत्सुकता जाग्रत हो जाती है, हम लेखक की कहानी-कला रूपी पकड़ मे आ जाते हैं और उसके पीछे-पीछे अतृप्त प्यास को लेकर, जब तक कि कहानी समाप्त नहीं हो जाती, आगे बढ़ते रहते है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि पुआल को देखकर गाय का बच्चा मीलों पीछे-पीछे आ जाता है। कहानी का आरम्भ कितने सुन्दर, सजीव और उत्कृष्ट पंजाबी वातावरण से हुआ है—

'बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी वालों की जबान के कोड़ो से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगाये। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते है, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के

न होने पर तरस खाते है, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार-भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले, तंग चक्करदार गलियों मे हर एक लड्ढी वाले के लिए ठहरकर सब्र का समुद्र उमड़ाकर, 'बचो खालसा जी', 'हटो भाई जी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लाल जी', 'हटो बाछा', कहते हुए सफेद फेटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्ने और खोमचे और भारे वालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उसकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती है। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक-से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने है—हट जा जीणे जोगिए, हटजा करमा वालिए, हट जा पुत्ता प्यारिए, बच जा लम्बी वालिए। समष्टि में इसका अर्थ है कि 'तू जीने योग्य है, तू भाग्यवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है? बच जा।'

वातावरण के बाद बिलकुल ठीक समय और उपयुक्त स्थल पर कहानी के मुख्य भाग का आरम्भ हो जाता है। ऐसा कौन पाठक होगा जो ऐसे उत्कृष्ट वातावरण पर मुग्ध न हो और ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसे इस पर विश्वास न हो? विश्म्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की 'उद्धार' नामक कहानी की भाँति पाठकों का मन इसमें रमने लग जाता है। आगे चलकर प्रधान कहानी का आरम्भ कितनी कुशलता, बुद्धिमानी और सतर्कता के साथ किया गया है—

'ऐसे बम्बू कार्ट वालों के बीच मे होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और वह रसोई के लिए बड़ियाँ। दूकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।' इस प्रकार गुलेरीजी ने वातावरण और कहानी के मुख्य भाग को बड़ी ही खूबी के साथ एक सूत्र मे पिरो दिया है, जिससे एक ओर तो श्रृङ्खला लक्षित होती है और दूसरी ओर 'फिर क्या हुआ?' की प्रवृत्ति जागृत हो जाती है।

३. कथानक—'उसने कहा था' कथानक का सम्बन्ध जीवन की एक बहुत

वड़ी गहराई से है। गुलेरीजी की दृष्टि साधारण और तुच्छ जीवन की घटनाओं पर न रुककर उसकी कठिन और गूढ़ समस्याओं की ओर उन्मुख हुई है। सम्पूर्ण कथानक जीवन से इस प्रकार गुथा हुआ प्रतीत होता है, मानो वह उसका ही एक अंश हो। देखिए—'स्वप्न चल रहा है' सूवेदारनी कह रही है— 'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया' एक काम कहती हूँ, मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने वहादुरी का खिताव दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमक-हलाली का मौका आया है, पर सरकार ने हम तीमियों की एक घघरिया पलटन क्यों न वना दी जो मैं भी सूवेदार जी के साथ चली जाती ? एक वेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही वरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।' सूवेदारनी रोने लगी—'अव दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन ताँगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास विगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण वचाए थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को वचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।'

रोती-रोती सूवेदारनी ओवरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ वाहर आया।

'वजीरासिंह, पानी पिला'—उसने कहा था।

उसने जो कहा था, क्या वह सहज ही में भुलाया जा सकता है ? समूची कहानी का प्राण यही अंश है। कहानीकार ने इसी अंश को अपना चरम-विंदु मानकर रस-वृष्टि की है। इस कथानक में कितना जवरदस्त गठन है। 'वजीरासिंह, पानी पिला—उसने कहा था' से कहानी का कथानक वारम्वार गूँजता रहता है और उसमें से जीवन के तत्त्व निकलते रहते हैं। इसी भाव में कहानी के शीर्षक की सार्थकता प्रकट होती है, वास्तव में भाव के आधार पर रखा गया यह शीर्षक पाठकों के हृदय पर चोट करने वाला है।

कथानक का प्रवाह वड़ी सुन्दर गति से अपने लक्ष्य की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर होता रहता है। लेखक को लहनासिंह के अपूर्व आत्म-त्याग और वलिदान का उद्‌घाटन करना है, इसीलिए घटनाओं के संसर्ग में स्वच्छन्दता से प्रवाह इसी की ओर मन्दाकिनी की तरह वहता रहता है। युद्ध से छुट्टी में घर आने के वाद और पुनः लड़ाई में लौट जाने के पूर्व गुलेरीजी ने उस अवोध लड़की और लड़के की भेंट कराकर कहानी में जान डाल दी है, उसमें अद्भुत शक्ति

आ गई है। पहुँचे हुए साहित्यकारों की ऐसी ही सूझ हुआ करती है। जो लेखक इस प्रकार अपनी कहानी के विकास के लिए, भावों को रोचक बनाने के लिए और कहानी मे जीवन डालने के लिए अनुपम सूझ-बूझ द्वारा ऐसी घटनाएं उपयुक्त स्थान पर ले आते हैं, वे अपने कार्य मे अधिक सफल होते हैं। बस, यहीं हमें गुलेरीजी की आदर्श कहानी-कला के दर्शन होते हैं। कितना प्रभावोत्पादक दृश्य है—

'जब चलने लगे, तब सूबेदार बेड़े मे से निकल कर आया। बोला—लहना, सूबेदारनी तुमको जानती है, बुलाती है, जा मिल आ। लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती है ? कब से ? रेजिमेण्ट के क्वाटरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाजे पर जाकर मत्था टेकना' कहा। आसीस सुनी। लहनासिंह चुप।

'मुझे पहचाना ?'

'नहीं ?'

'तेरी कुड़माई हो गई ?—धत्—कल हो गई—देखते नहीं रेशमी बूटों वाला सालू—अमृतसर में—'

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

'वजीरा, पानी पिला—उसने कहा था।'

इस 'तेरी कुड़माई हो गई ?' का कितना भारी महत्त्व है!

कहानी के प्रथम और द्वितीय भाग छोटे-छोटे नाट्य-दृश्य हैं, जिनका अन्त में, तारतम्य या सम्बन्ध समझ में आता है। नायक और नायिका का अल्प परिचय देकर गुलेरीजी लडाई के मैदान का जीवन बडी सजीवता और स्वाभाविकता से खींचने लग जाते है। युद्ध जर्मन और अंग्रेजों के बीच हो रहा है, जिसमे भारतवासी और विशेप रूप से सिख अपनी अद्भुत स्वामी-भक्ति का परिचय दे रहे हैं। लडाई के मैदान मे योद्धाओं के जीवन की झॉकी हमें लहनासिंह और सूबेदार हजारासिंह की वार्ता से मिल जाती है—

'लहनासिंह, और तीन दिन है। चार तो खन्दक मे बिता ही दिए। परसों 'रिलीफ' आ जायगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरगी मेम के बाग में—मखमल का-सा हरा घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते है, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।'

'चार दिन तक पलक नहीं झॅपी। विना फेरे घोड़ा विगड़ता है और विना लड़े सिपाही। मुझे तो सगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय।'

आगे चलकर गुलेरीजी ने काल का अंतर मिटाकर कहानी का प्रभाव-ऐक्य वड़ी सतर्कता से निभाया है। घटनाओं की जोड़ और गठन जैसी गुलेरीजी की 'उसने कहा था' मे देखने को मिलती है, वैसी हिन्दी की और किसी कहानी मे नहीं। ऐसी पुष्ट कहानियों से मनोरंजन और साहित्यिकता की घूॅट एक साथ ली जा सकती है। यदि कहानी के द्वितीय भाग मे युद्ध का दृश्य न दिखाकर लेखक उस पूर्व-झॉकी का ही दर्शन कराता तो पाठकों का कौतूहल (Suspense) मारा जाता, कथानक का सौंदर्य विखर जाता और कहानी का डोल-डौल ही विकृत हो जाता। लेखक ने समय द्वारा नायक-नायिका को तौला है और इस प्रकार इसका विकास वहुत ही सुन्दर वन पड़ा है। लहनासिंह अतीत की सुनहली स्मृतियों को लेकर अपने जीवन के पथ पर आगे वढ़ता रहता है, कालान्तर मे 'तेरी कुड़माई हो गई' को सुनकर उसे अपने जीवन मे प्रेरणा मिलती है। इसके लिए लेखक ने पीछे धीरे से मानो कहानी की उच्चता, त्यागपूर्ण आदर्श का क्रियात्मक रूप, उस साधारण लहनासिंह मे झलकाकर पाठकों के हृदय को चुपचाप ही सामान्य भाव-भूमि से उठाकर एक उच्च स्तर की ओर मोड़ दिया है, वहाॅ पहुँचकर हमे करुण रस से लथ-पथ हो जाना पड़ता है। ध्यान रहे, युद्ध के दृश्य का एक और भी महत्त्व है। इस घटना के द्वारा ही लेखक ने लहना-सिंह, हजारासिंह और वोधासिंह का मिलाप कराया है। यदि हज़ारासिंह युद्ध में लहनासिंह के साथ न होता तो शायद लहनासिंह को उस अवोध वालिका की याद ही वनी रह जाती, परन्तु कुशल कलाकार ने इन समस्त घट-नाओं को एक धागे में ऐसा वॉध दिया है कि वे हमे अत्यन्त सुन्दर, स्वाभाविक और सत्य मालूम देती हैं। इस प्रकार हम देखेंगे कि वातावरण के पश्चात् गुलेरी ने जिन-जिन घटनाओं की अवतारणा की है, वे कहानी को आगे वढ़ाने के लिए उपयुक्त हैं। कौन-सी घटना किस स्थल के लिए उपयोगी होगी, इस ओर लेखक का ध्यान वरावर रहा है।

कौतूहल की सृष्टि कथानक की सवसे अधिक सुन्दर विशेषता है। गुलेरीजी की शानदार जीत भी यही है। जिन्होंने इस कहानी को प्रथम वार पढ़ा है, उन्हे याद होगा कि जव तक उन्होंने कहानी का पूर्ण विराम नहीं देखा होगा, तव तक इस वात का शायद उन्हे विश्वास ही नहीं हुआ होगा कि लड़की और लड़के का सम्वन्ध आगे चलकर लहनासिंह और सूवेदारनी के

रूप में इतना सुन्दर रूप मे विकसित हो उठेगा। जब एक बार स्वयं नायक लहनासिंह को इस रहस्य की कली खुलने पर आश्चर्य, आनन्द और रस-संचार होने लगता है तो फिर हमारा और आपका तो कहना ही क्या ?

संक्षेप मे, कहानी के प्रारम्भिक भाग मे आकर्षण है, जिसे पढ़ते ही हम मन्त्र-मुग्ध हो जाते हैं, आगे की कहानी के साथ इसका पूरा-पूरा सामञ्जस्य है और कहानी के उद्देश्य की झाँकी तो हमें इसी भाग में मिल जाती है। चतुर और कुशल कहानीकार सदैव ऐसा ही किया करते हैं।

४—*चरित्र-चित्रण*—प्राय: चरित्र-प्रधान कहानियो मे देखा जाता है कि लेखक का ध्यान एक-मात्र चरित्रांकन मे होता है और यह चार प्रकार से किया जाता है। जिस पात्र का चरित्र-चित्रण करना होगा, लेखक उसे तरह-तरह की परिस्थितियों मे डालकर उसके आदर्श गुणों (Noble qualities) की भव्य व्यजना करेगा। पात्र के इस कार्य-व्यापार के बिना पाठक पात्र के स्वभाव, चरित्र, गुण, दोष आदि के विषय मे अपना मत निर्धारित नहीं कर सकता और न वह कहानीकार के व्यक्तित्व का ही पता लगा सकता है। इसके अतिरिक्त जब हम दो पात्रों को परस्पर वार्तालाप करते हुए पाते हैं, तब उनके द्वारा भी हमें पात्रों के चरित्र के सम्बन्ध में अनेक रहस्यपूर्ण बातों की जानकारी होती है। कहीं-कहीं कहानीकार स्वगत-कथनों के द्वारा भी पात्रों के स्वभाव का स्पष्टीकरण करता चलता है और बतलाता चलता है कि कौन पात्र कैसा है ? बहुत-सी कहानियों मे लेखक दूसरों के कथनों के द्वारा भी चरित्र-चित्रण करता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि गुलेरीजी ने 'उसने कहा था' मे चरित्र-चित्रण की इन समस्त प्रणालियों का प्रयोग किया है।

चरित्र-प्रधान कहानियों मे गुलेरीजी की कहानी का स्थान बहुत ऊँचा है। एक प्रकार की चरित्र-प्रधान कहानियाँ वे होती हैं जिनमे पात्रों के चरित्र का सुन्दर और प्रभावशाली चित्रण उपस्थित करने के लिए लेखक विविध परिस्थितियों और प्रसगों का आश्रय लेकर अपने पात्रों को उनके मध्य मे छोड़ देता है। प्रेमचन्द जी इस कला में सिद्धहस्त है। उनकी 'दफ्तरी', 'राज्य-भक्ति', 'स्वत्व रक्षा', 'परीक्षा', 'जुगनू की चमक' आदि कहानियाँ ऐसी ही हैं। जहाँ प्रेमचन्द भिन्न-भिन्न परिस्थितियों और प्रसगों के बीच अपने पात्रों का उत्थान-पतन बतलाते चलते हैं, वहाँ जयशंकर 'प्रसाद' इनकी अधिक अवतारणा न करके केवल थोडे अर्थ-गर्भित वाक्यों द्वारा चरित्र के गुणों का दिग्दर्शन करा देते हैं। 'भिखारिन', 'पुरस्कार', 'व्रत-भग' आदि कहानियाँ इसके

सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। द्वितीय प्रकार की चरित्र-प्रधान कहानियाँ वे होती हैं, जिनमें प्रधान चरित्र के स्वभाव में किसी घटना विशेष से अकस्मात् परिवर्तन दिखलाया जाता है जैसे विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की 'ताई'। प्रेमचन्द द्वारा लिखी गई ऐसी कहानियाँ 'आत्माराम', 'शंखनाद', 'दीक्षा' आदि भी हिन्दी-कहानी-साहित्य मे विशेष ख्याति प्राप्त कर चुकी है। तृतीय प्रकार की चरित्र-प्रधान कहानियाँ वे होती है जिनमें किसी विशेष परिस्थिति में किसी चरित्र का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है—कथानक, घटना और प्रसंग नाम-मात्र के होते हैं, उदाहरणार्थ जैनेन्द्रकुमार, भगवती-प्रसाद वाजपेयी और विनोदशंकर व्यास की क्रमशः 'जाह्नवी', 'मिठाई वाला' और 'अपराध' नामक कहानियाँ। अन्त मे चतुर्थ प्रकार की चरित्र-प्रधान कहानियाँ वे है, जिनमे लेखक अपने प्रमुख पात्र के किसी अंग विशेष अथवा पक्ष का बड़ी ही सतर्कता और सावधानी से चित्रण करता है। उपन्यासकार की तरह स्वतंत्रता न होने के कारण कहानी के छोटे-से दायरे मे लेखक को केवल इसी एक अंग की ओर अपनी दृष्टि केन्द्रीभूत करनी पड़ती है और यही प्रधान पात्र का प्रधान गुण समझना चाहिए। लेखक अपनी अलौकिक प्रतिभा और अनुपम सूझ द्वारा इसी अंग को सुन्दर से सुन्दरतम बनाने मे तल्लीन हो जाता है। इस प्रकार की चरित्र-प्रधान कहानियों में हमारे गुलेरीजी का स्थान अद्वितीय है। अस्तु,

'उसने कहा था' चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की एक ऐसी चरित्र-प्रधान कहानी है, जिसमे प्रमुख पात्र के एक अंग विशेष का चित्रण सफलता पूर्वक हुआ है। लेखक ने जमादार लहनासिंह का चित्रण बड़ी ही सावधानी और खूबी के साथ किया है। इस कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि लहनासिंह जमादार बड़े सुन्दर ढंग से एक आदर्श रूप लेकर हमारे सामने आता है। वह निःस्वार्थी है, देश-प्रेम और लोक-कल्याणकारी भावना उसमे कूट-कूट कर भरी हुई है। उसमे त्याग और बलिदान का जो अंश है, वह मानव-मानव के भेद-भाव को मिटाकर उसे मानवता की उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित कराता है। कहानी के नायक और नायिका का पारस्परिक परिचय और मिलन लेखक बहुत थोड़े शब्दों मे करा देता है। दूसरे तीसरे दिन सब्जी वाले अथवा दूध वाले के यहाँ सड़क पर चलती हुई मोटर गाड़ियों की अत्यधिक भीड़ से अपने-आपको बचाते हुए वे मिल जाते हैं। एक दिन सहसा बालिका ताँगे के नीचे आने को होती है कि जमादार लहनासिंह (नायक) उसे बाल-बाल बचा

लेता है, फिर तो दोनों मे धीरे-धीरे गाढा परिचय होने लगता है और
कदा 'तेरी कुड़माई हो गई' और 'धत्' से वालक-वालिका अपना मन व
रहते हैं। यही उनके मिलने का 'स्वाद' है। देखिये कितना स्वाभाविक
सजीव चित्रण है—

'तेरा घर कहाँ है ?'

'मगरे मे,—और तेरा ?'

'माझे में,—यहाँ कहाँ रहती है ?'

'अतरसिंह की वैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरु वाजार में है।'

इतने मे दुकानदार निवटा और इनको सौदा देने लगा। सौदा
दोनों साथ-साथ चले, कुछ दूर जाकर लडके ने मुस्कराकर पूछा—
कुड़माई (सगाई) हो गई ?' इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्
कर दौड गई और लड़का मुँह देखता रह गया।'

और आगे चलकर देखिये इसी चित्र का दूसरा स्वाभाविक
हृदयग्राही रूप—दो तीन वार लडके ने फिर पूछा 'तेरी कुड़माई हो ग
और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब लडके ने फिर वैसे ही
में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की लड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली
हो गई।'

'कब ?'

'कल,—देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू (ओढ़नी)' व
भाग गई।

इस 'लडकी लड़के की सम्भावना के विरुद्ध' वाले वाक्य में वि
रहस्य छुपा हुआ है ? लडकी की कुडमाई हो जाने से लड़के की जो मान
स्थिति हुई है आगे चलकर केवल थोड़ी-सी रेखाओं के द्वारा किन्तु स्प
से उसका चित्रण लेखक ने कर दिया है। 'उसने कहा था' में पात्रों की
सिक स्थिति का सुन्दर चित्रण हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं। प्रेम
अपनी कहानियों मे इसका चित्रण इसीलिए करते प्रतीत होते हैं कि
होना कला की दृष्टि से अनिवार्य है, इसीलिए वे उपन्यासों की तरह वि
व्याख्या करने बैठ जाते हैं। गुलेरीजी इस दोष से वचे हुए हैं और वे प्रेम
से बहुत आगे हैं।

वालक की तरह वालिका का हृदय भी वड़ा ही विशाल है। इस चि...

हृदयता से आकर्षित होकर ही लहनासिंह के हृदय में प्रेम का अभ्युदय होता है, परन्तु कालान्तर में प्रेम का स्थान कर्त्तव्य ले लेता है और वह उसे भूल जाने की चेष्टा करता है। भूल जाने के दो कारण हैं—एक तो विवाह हो जाने के पश्चात् लहनासिंह की समस्त महत्त्वाकांक्षाओं पर पानी फिर जाता है, दूसरे लडाई का मैदान एक ऐसा स्थल है, जहाँ पर उसे अपने अतीत की स्मृति के लिए अनुकूल वातावरण नहीं मिल पाता। बात-ही-बात में पचीस वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। लड़ाई के मैदान से जब लहनासिंह नम्बर ७७ राइफल्स में जमादार होकर सात दिन की छुट्टी लेकर अपने घरेलू मुकदमे की पैरवी करने के उद्देश्य से घर लौटता है, तब वहाँ उसे अपनी रेजीमेण्ट के अफसर की चिट्ठी के साथ एक चिट्ठी सूबेदार हजारासिंह की मिलती है, जिसमे वह लहनासिंह को अपने यहाँ बुलाने का निमन्त्रण देता है और साथ-ही-साथ यह भी प्रस्ताव रखता है कि गाँव से वे दोनों बोधासिंह को साथ लेकर पुनः लड़ाई में साथ चलेंगे। बोधासिंह सूबेदार हजारासिंह का लाड़ला पुत्र है, युद्ध मे साथ-ही-साथ काम करते हैं। सूबेदार जी का मकान लहनासिंह के गाँव के रास्ते मे ही पड़ता है।

जब लहनासिंह सूबेदार हजारासिंह के लिखने पर उसके दौलतखाने पर पहुँचता है, तब उसे इस बात का कोई बोध नहीं है कि वह आठ वर्षीय लड़की, जो उसे बाल्यकाल मे सदैव सब्जी वाले की दूकान पर मिल जाया करती थी, उसके सूबेदार हजारासिंह की ही पत्नी है। सूबेदारनी (वही आठ वर्षीय लड़की) तो लहनासिंह को पहचान लेती है, पर लहना उसे नहीं पहचान पाता। सूबेदारनी के चरित्र मे सदाचार की भावना, उदारता और संवेदनशीलता की झाँकी मिलती है। वह अपने घर पर आये अपने पुराने सहचर को क्या बिना बातें किए ही लौट जाने देगी? वह सूबेदार से उसे अन्दर भेजने के लिए कहती है। सूबेदारनी 'तेरी कुड़माई हो गई' कहकर उसके सामने वह पुराना चित्र स्पष्ट रूप से उपस्थित कर देती है। बस इसी समय लहनासिंह को यह पूर्ण रूप से ज्ञात हो जाता है कि यह सूबेदारनी, मेरे सूबेदार साहब हजारासिंह की स्त्री और बोधासिंह की माँ है, वही मेरे बाल्यकाल की चिर परिचिता जिसकी 'कुड़माई हो गई' को सुनकर मैंने रास्ते मे एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, कुत्ते पर पत्थर मारा और गोभी वाले के ठेले मे दूध उंडेल दिया था। लहनासिंह को इसके पूर्व क्या पता था कि सूबेदारनी अब पाँच पुत्रों की माँ और सूबेदार की गृहलक्ष्मी बनी हुई है। इस रहस्योद्घाटन पर उसके आश्चर्य और सुख का निस्संदेह कोई ठिकाना नहीं रहा होगा।

मानव-जीवन में वे क्षण कितने मूल्यवान होते हैं ?

अब सूबेदारनी पहले की तरह चंचल बालिका नहीं है—माता के रूप ने उसके जीवन में पट-परिवर्तन कर दिया है। बचपन की तरह अब उसमे वह भोलापन भी नहीं रह पाया है। दायित्वों ने आकर उसे घेर लिया है। स्त्री के रूप में हमें उसमें पति-परायणता, एकनिष्ठता, वात्सल्य आदि गुणों के दर्शन होते हैं। देखिये उसके चरित्र का उज्ज्वल पक्ष, कितना हृदय-विदारक है, पत्थर को पिघलाने वाला है—'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गए हैं। सरकार ने बहादुर का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है। आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की घघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती ? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ। उसके पीछे चार हुए, पर एक भी नहीं जिया। सूबेदारनी रोने लगी—'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन ताँगे वाले का घोड़ा दही वाले की दूकान के पास बिगड गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातो में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खडा कर दिया था। ऐसे ही दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।'

लोभवश इस उदाहरण की पुनरावृत्ति के लिए हम क्षमा चाहते हैं। इसमें भारतीय ललना का कितना आदर्श और सुन्दर रूप हमारे सम्मुख उपस्थित हुआ है। पर-कटे पक्षी की तरह फड़फड़ाकर सूबेदारनी अपनी घघरिया पलटन को तैयार कर अपने प्राणनाथ के कदम-से-कदम मिलाती हुई रण-स्थल मे जाने के लिए लालायित है। जहाँ पति है, वहीं स्वर्ग है, स्त्री के लिए वहीं सब-कुछ है, जगल में भी मगल है। उसे उस घर पर लानत है, जहाँ वह अपने प्राण प्यारे पति और लाडले पुत्र से दूर रहकर उनकी सेवा न कर सके। उसकी तो केवल यही आकांक्षा है कि वह अपने आराध्य देव के साथ रहे—घर में चाहे बाहर। पुत्र और पति को विदा होते देखकर वह बिलख-कर रोती है और अपने दुर्भाग्य को कोसती हुई जीवन की इन दो अनन्त निधियों को लहनासिंह के हाथों पुरानी घटना की याद दिलाकर सौंप देती है। लहनासिंह पर उसका कितना प्रबल विश्वास है ? यह चित्र पाठकों के हृदय को छू लेता है और दोनों पात्रों का चरित्र भी बहुत ऊँचा उठ जाता है। कहानी के छोटे-से दायरे में स्त्री की ऐसी करुणा, ममता और याचना इतने

सुन्दर रूप में देखने को मिल जाय, तो फिर उस लेखक के विषय मे कहना ही क्या ?

लहनासिंह अपने जीर्ण कन्धों पर इस पवित्र और मधुर उत्तरदायित्व का भार लेकर लड़ाई के मैदान में पहुँचता है। लहनासिंह एक ऐसा पात्र है, जिसके लिए मृत्यु का कोई महत्त्व नहीं, प्राणों की कोई परवाह नहीं। वह मर जाना चाहता है, लेकिन एक ऐसे आदर्श के लिए जिससे कि वह सूबेदारनी के शब्दों का पालन कर सके। इससे अधिक सुन्दर मृत्यु लहनासिंह के लिए क्या हो सकती है कि वह एक उच्च आदर्श की रक्षा के लिए प्राणों का परित्याग कर दे। मानव-जीवन मे ऐसी सुखद मृत्यु विशेष महत्त्व रखती है। लहनासिंह के चरित्र का यह विशेष पक्ष निखरकर हमारे सामने आता है। देखिये—'भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।' वजीरा ने वैसा ही किया। 'हाँ अब ठीक है। पानी पिला दे। बस। अब के हाड़ (आषाढ़) में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजे दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने मे मैंने उसे लगाया था।'

वजीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

कुछ दिनों पीछे लोगों ने अखबारों मे पढ़ा—फ्रांस और बेलजियम—६८वीं सूची—मैदान में घावों से भरा—नं० ७७ सिक्ख राइफल्स जमादार लहनासिंह।'

इस प्रकार कहानी का नायक लहनासिंह, सूबेदार हजारासिंह और रोग-ग्रस्त बोधासिंह के प्राणों की रक्षा करके सूबेदारनी के वचन का पालन करता है और स्वयं घायल होकर वजीरासिंह की गोद में प्राण दे देता है। उसे केवल संतोष इसी बात का है कि उसने अपने उस उत्तरदायित्व का पूरा-पूरा पालन किया। कहानी की असाधारण सफलता और कमनीयता का एक-मात्र कारण लहनासिंह का अपूर्व आत्म-त्याग और बलिदान ही है और अधिक हम यहाँ चाहते भी तो नहीं हैं।

गुलेरीजी ने जिन थोड़े-से पात्रों को लेकर अपनी यह अमर कहानी लिखी है, उसके सम्बन्ध मे एक बात और ध्यान देने योग्य है। गुलेरीजी जीवन-पयन्त नीति और सदाचार का प्रतिपादन करते रहे, यह उनके व्यक्तित्व की एक विशेष बात है। संस्कृत, पाली, प्राकृत, हिन्दी, बंगला, मराठी, अंग्रेजी, लेटिन, जर्मन, फ्रेंच, पुरातत्त्व, इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, साहित्य और भाषा-विज्ञान आदि

के इस धुरन्धर विद्वान् ने जहाँ कहीं अपनी कहानियों मे 'सैक्स' (Sex) का प्रसंग आया है, वहाँ उन्होंने निःसंकोच भाव से स्पष्ट व्यंजना कर दी है। ऐसा करते समय उन्होंने कोई दुराव अथवा भेद-भाव नहीं रखा। 'उसने कहा था' मे उनके स्वस्थ और स्वच्छ मन के असंदिग्ध प्रमाण का सुन्दर उदाहरण हमें दो-तीन स्थलों पर देखने को मिलता है।

संक्षेप मे, हम कह सकते है कि गुलेरीजी ने 'उसने कहा था' के पात्रों में केवल नाम की छाप ही नहीं लगाई, प्रत्युत उनमे जीवन की शक्तियाँ भी भर दी हैं, जिससे कि पाठकों के हृदय पर चिर-स्थायी प्रभाव पड़ा है। ये ऐसे पात्र हैं, जिनसे कि पाठकों के जीवन में भी विशेप परिवर्तन हो जाता है। चरित्र-चित्रण करते समय लेखक ने जिस वर्णन-शैली का प्रतिपादन किया है, वह सर्वथा स्तुत्य है। वह इतनी स्पष्ट है कि पात्रों की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वात का पता लग जाता है। मन की भावनाओं का सूक्ष्म विवेचन तथा विश्लेपण भी कहानी के अनुसार सुन्दर ढग से हुआ है। करुणा, हास्य, वीर एवं शृङ्गार आदि भावों से सवंधित भावनाओं का तो इतना सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन हिन्दी-साहित्य की किसी अन्य कहानी मे दुष्प्राप्य है।

५. *कथोपकथन*—'उसने कहा था' मे कथोपकथन का सर्वोत्तम अंश भी देखने को मिलता है। इसी कथोपकथन के द्वारा हमें पात्रों के चरित्र और उनकी मनोवृत्तियों के विपय मे ज्ञान प्राप्त होता है। कथोपकथन जैसा स्वाभाविक, उपयुक्त और भावात्मक है, ठीक वैसा ही सरल, सक्षिप्त, स्पष्ट और मनोरंजक। कहानी के प्रारम्भिक भाग में लड़की और लड़के के वीच होते हुए वार्तालाप की ओर जरा दृष्टिपात तो कीजिये, वह परिस्थिति के कितना अनुकूल वन पडा है।

'तेरे घर कहाँ हैं ?'

'मगरे मे,—और तेरे ?'

'माझे में,—यहाँ कहाँ रहती है ?'

'अतरसिंह की वैठक मे, वे मेरे मामा होते है।'

'मैं भी मामा के आया हूँ, उनका घर गुरु वाजार मे है।'

परिस्थिति के अनुकूल कथोपकथन का एक दूसरा उदाहरण देकर इस विषय को हम यहीं समाप्त करते हैं—

'क्यों वोधा भाई, क्या है ?'

'पानी पिला दो।'

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—'कहो कैसे हो ?'

पानी पीकर बोधा बोला—'कँपनी छूट रही है। रोम-रोम मे तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे है।'

'अच्छा मेरी जरसी पहन लो!'

'और तुम ?'

'मेरे पास सिगड़ी है, मुझे गर्मी लगती है, पसीना आ रहा है।'

'हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सवेरे ही आई है। विलायत से मेमे बुन-बुनकर भेज रही है। गुरु उनका भला करे।'

'सच कहते हो ?'

'और नहीं झूठ ?'... ..

(६. *व्यक्तित्व*—जीवन के प्रति गुलेरीजी का दृष्टिकोण स्वस्थ था। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में 'उन्होंने अपने पांडित्य को सदैव जीवन का साधन ही माना, साध्य नहीं बनने दिया। उनकी जीवन-चेतना इतनी प्रबल थी कि पांडित्य उसको पुष्ट तो कर सका, पर दबा नहीं सका.. उनके साहित्य का आधार छायानुभूतियाँ नहीं है, जीवन की मासल अनुभूतियाँ ही हैं। निदान उनमे मानसिक ग्रन्थियों का सर्वथा अभाव मिलता है।')

ध्यानपूर्वक देखने से विदित होगा कि गुलेरीजी की कहानियों मे शास्त्रों की बँधी हुई प्रवृत्तियाँ हमे देखने को मिलती हैं। वे एक उच्चकोटि के विद्वान् थे, अनेक भाषाओं पर उनका अधिकार था—इतिहास, दर्शन, ज्योतिप, साहित्य और भाषा-विज्ञान के वे एक उच्च और प्रतिष्ठित ज्ञाता थे। गुलेरीजी निःसंदेह एक प्रगतिशील लेखक थे, जिन्होंने बहुत पूर्व ही यह अनुभव कर लिया था कि संस्कृत के तत्सम शब्दों का उच्चारण हिन्दी-व्याकरण के नियमों के अनुसार ही होना चाहिए।

७. *भाषा और शैली*—गुलेरीजी मे प्रतिभा और चातुर्य दोनों ही का उच्चकोटि का सम्मिश्रण देखने को मिलता है। भाषा, भाव और कल्पना के द्वारा हमने उनका प्रभावोत्पादक कथानक देखा, आगे चलकर उनके अद्वितीय चातुर्य ने उनकी कहानियों में सुन्दर शैली को जन्म दिया। उनकी इस सुन्दर शैली की प्रमुख विशेपता यही है कि उसमे एक वाक्य तो दूर रहा, एक भी शब्द अनावश्यक नहीं है। शब्दावली से एक ऐसी सुमधुर रागिनी निकलती है कि जो हमारे हृदय को गुदगुदाने के साथ-ही-साथ एक प्रकार का रागात्मक सम्बन्ध भी स्थापित करती है। भाव गहन हैं और भाव-प्रदर्शन के लिए भाषा बहुत

सुन्दर बन पडी है। कहीं-कहीं तो हृदय की मनोवृत्ति ने कथानक को इतना श्रेष्ठ रूप दे दिया है कि हृदय सचमुच कहानी के साथ झूमने लगता है। कहानी के आरम्भ में लड़के की मानसिक स्थिति का चित्रण इस कथन की पुष्टि करता है।

सबसे आश्चर्यजनक बात 'उसने कहा था' में उनकी मॅजी हुई परिष्कृत भाषा है। ऐसी प्रौढ़ और परिमार्जित भाषा आधुनिक कहानियों के जन्म-काल के समय थी, इस दृष्टि से कहानी का महत्त्व और भी अधिक हो जाता है। प्रेमचन्द की कहानियों की भाषा में इतनी शक्ति नहीं है और शुक्ल जी की भाषा में गुलेरीजी के समान यथार्थता तथा स्फूर्ति नहीं है। इसलिए गुलेरी, प्रेमचन्द और शुक्ल जी से भी एक कदम आगे निकल जाते हैं।

आज से करीब पैंतीस साल पूर्व जब हिन्दी का गद्य-व्याकरण अत्यंत अशक्त था, ऐसे समय में गुलेरीजी को भाषा पर कितना अधिकार था, इसका अनुमान 'उसने कहा था' से लगाया जा सकता है। उनकी भाषा में हमें जीवन की विभिन्न परिस्थितियों और पात्रों की विभिन्न मनोवृत्तियों के दर्शन होते हैं। भाषा मे स्वाभाविक रूप से माधुर्य, ओज और प्रसाद गुण पाये जाते हैं। शब्दों को तोड-मरोडकर कहानी में माधुर्य लाने के सस्ते और हल्के चाव से गुलेरी सर्वदा दूर रहे। जो कुछ भी, जैसा भी हमे देखने को मिलता है, वह स्वाभाविक है, उपयुक्त है। डॉ० नगेन्द्र ने इसी बात को स्वीकार करते हुए कहा है—'इस व्यक्ति के जीवन की सफलता का यही रहस्य था कि इसने अपने पांडित्य की गम्भीरता को जीवन के उपयोग मे अत्यन्त सतर्कता से प्रयुक्त किया। इसीलिए इसके व्यक्तित्व में स्फूर्ति और गम्भीरता थी, अद्भुत योग था। ठीक यही रहस्य उनकी भाषा की समर्थता का भी है। यहाँ भी उन्होंने अपनी व्यापक शब्द-शक्ति और भाषागत पांडित्य का उपयोग जीवन की भाषा गढ़ने में किया है। प्राणवान् व्यक्ति का पाडित्य जिस प्रकार जीवनगत अनुभव से शक्ति और उसका जीवन-गत अनुभव पाडित्य से समृद्धि पाता रहता है, उसी प्रकार साहित्य की भाषा जीवन की भाषा से शक्ति और जीवन की भाषा साहित्य की भाषा से समृद्धि पाती रहती है। और किसी व्यक्ति के ये दो स्रोत जितने ही अधिक खुले होंगे उतनी ही समृद्ध और सशक्त उसकी भाषा होगी। गुलेरीजी को सुविधा भरपूर थी।'

सीधे-सादे शब्दों में 'उसने कहा था' की भाषा नितान्त स्पष्ट, सरल एवं व्यावहारिक है। भावभंगिमा चटपटी है, जो कहानी के लिए होनी ही चाहिए।

उनकी शब्दावली मे संस्कृत की छाप और वाक्य-विन्यास में विस्तार है, इतना होते हुए भी शब्द चलते हुए, सरल और विशिष्टतापूर्ण हैं तथा वाक्य-विन्यास आकर्षक, गठित और मुहावरेदार है। मुहावरे गुलेरीजी को विशेष प्रिय हैं और व्यंग्य लिखने मे भी वे पूर्ण पटु हैं। वस्तुतः उनकी लेखन-शैली की विशेषता व्यावहारिकता ही है। गूढ़ विषय को सरल तथा रोचक बनाना उन्हे खूब आता है। ऐसे समय वे स्पष्ट तथा छोटे-छोटे वाक्यों का ही अधिकांशतः प्रयोग करते है। इसके लिए वे उर्दू, अंग्रेजी, प्रान्तीय शब्द भी निःसंकोच रूप से प्रयोग में ले आते है। इस कहानी मे विभिन्न भाषाओं के अनेक शब्द देखे जा सकते हैं। कहीं-कहीं तो शब्द जन-साधारण के बिलकुल समीप पहुँच गए हैं। भाषा में हास्य (Humor) उनकी निजी विशेषता है। इसी स्फूर्ति और फड़क के कारण वे बड़े-बड़े गद्यकारों से टक्कर ले सकते है। एक वाक्य मे उनकी भाषा में बल है, प्रतिभा है और एक प्रकार का विचित्र आकर्षण है।

८—रस—अब हम 'उसने कहा था' के रस के ऊपर संक्षिप्त विचार करते हैं। गुलेरीजी का रस निरी थोथी रसिकता या विलासिता का परिचायक नहीं है, वह तो जीवन का स्वस्थ, स्वच्छ और गाढ़ा रस है। वह बलिष्ठ है, उसमें वजन है। इसके दर्शन हमे कहानी के आदि-भाग मे ही हो जाते हैं। शनैः-शनैः सारी कहानी ही मधुर रस मे डूब जाती है। बचपन की उस आकस्मिक घटना के माधुर्य को लेकर पुरुषार्थी लहनासिंह को जो प्रेरणा प्राप्त होती है, वही उसे आगे चलकर आत्म-त्याग और बलिदान की पुण्य भूमि पर प्रतिष्ठित करती है। रति, हास्य, ओज और करुणा—इन सब रसों के मिश्रण से जो परिपाक तैयार होता है, वह पुष्ट है, प्रगाढ़ है और प्रौढ़ है।

जिस व्यक्ति का हृदय विशाल होता है, जिसका स्वभाव ऊपर और अन्दर दोनों मे समान होता है और जो प्रकृति से खुला हुआ होता है, उसका हास्य भी उतना ही उच्च कोटि का होता है। गुलेरीजी एक ऐसे ही व्यक्ति थे। वे सहनशील थे, चिड़चिड़ेपन को वे लेश-मात्र भी पसन्द नहीं करते थे। यही तो कारण है कि उनके हास्य मे हमें एक प्रकार का मिठास देखने को मिलता है। वह हास्य एक शिष्ट और सभ्य हास्य है जो गँवारूपन, अल्हड़ता तथा उच्छृङ्खलता से सर्वथा दूर है। जीवन और जगत् से उन्हे प्रेरणा मिली, उनकी स्वस्थ दृष्टि ने इन्हीं को अपनी कहानियों का आधार माना। हृदय मे गुद-गुदी पैदा करने वाले हास्य का अनूठा नमूना हमें वहाँ देखने को मिलता है, जहाँ आरम्भ मे अमृतसर के ताँगे वाले मीठी भाषा का प्रयोग करके सरपट

है कि हमारा ध्यान कहानी से हटता ही नही। कहानी के पढ़ने से लेखक के व्यक्तित्व का भी भली-भाँति अन्दाजा लगाया जा सकता है। गुलेरीजी के जीवन के प्रति दृष्टिकोण, भावोन्माद, आकाङ्क्षा, उद्‌गार, हास्य, गांभीर्य आदि का पता स्थान-स्थान पर मिलता रहता है। कहानी आद्यन्त सरस और स्वाभाविक रूप से हृदय को स्पर्श करती हुई समाप्त हो जाती है। विविध विषयों की जानकारी गुलेरीजी का प्रधान गुण है। उनकी कहानी को पढ़कर हमारे हृदय में उनके पात्रों के प्रति अनुराग और उत्सुकता की जागृति होती है। श्री गगाप्रसाद पांडेय एम०ए० ने 'आधुनिक कथा-साहित्य' मे एक स्थल पर लिखा है—'गुलेरी जी ने बहुत कम कहानियाँ लिखीं, किन्तु उनकी कहानियाँ कहानी-कला के गुणों से ओत-प्रोत है। उनकी 'उसने कहा था' कहानी हिन्दी मे बेजोड़ मानी जाती है, यह बात दूसरी है कि मैं स्वयं ऐसा नहीं मानता।' विद्वानों की इस कहानी के प्रति कुछ भी धारणा रही हो, लेकिन यह ध्रुव सत्य है कि 'उसने कहा था' हिन्दी-साहित्य की एक श्रेष्ठ कहानी है। आज के समय मे जब हम इतने प्रगतिशील हो चले हैं, हमारा कथा-साहित्य इतना प्रचुर और धनी हो गया है कि एक-से-एक बढ़िया कहानी हमें पढ़ने को मिल जाती है, लेकिन जरा उस समय, उस समय की परिस्थितियों और अन्त में, उस समय के लेखकों पर भी विचार कीजिये, जिस समय कि यह कहानी लिखी गई थी। यदि हम गुलेरीजी की कहानी 'उसने कहा था' को आज की दृष्टि से, वर्तमान प्रगतिशील युग को दृष्टिकोण मे रखते हुए तथा किसी विशेष परिभाषा के मापदण्ड से देखेंगे और समीक्षा करेंगे तो यह हमारा उनके साथ बड़ा भारी अन्याय होगा। प्रेमचन्द के पूर्व जब हमारा कहानी-साहित्य घुटनों के बल चलना सीख रहा था, उस समय मे ऐसी कहानी लिख देना एक साहित्यिक आश्चर्य ही नहीं वरन् कथा-साहित्य की एक भरपूर सेवा भी है। आज के समय मे 'उसने कहा था' हिन्दी-साहित्य मे बे-जोड़ कहानी भले ही न मानी जाय, पर उसकी गणना हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों मे अवश्य की जायगी। 'उसने कहा था' ने आज न मालूम कितने तरुण कलाकारों को लिखने के लिए प्रभावित किया है। आज के कहानी-साहित्य का श्रेय फिर हम अपने इस कहानी-नायक को क्यों न दे?

परिशिष्ट

प्रेमचन्द—रानी सारंधा, राजा हरदौल, मन्दिर और मसजिद, एक्ट्रेस, अग्नि-समाधि, आत्माराम, सुजान भगत, बूढी काकी, दुर्गा का मंदिर, शतरञ्ज के खिलाडी, पंच-परमेश्वर, बडे घर की बेटी, विध्वंस, विक्रमादित्य की कटार, कामना-तरु, डिग्री के रुपये, सौत, ईश्वरीय न्याय, नमक का दारोगा, सती, लाछन, मन्त्र, घर-जमाई, घास वाली, खुचड, जुलूस, पूस की रात, प्रेरणा, पछतावा, रामलीला, आँसुओं की होली।

जयशंकर 'प्रसाद'—पुरस्कार, आकाश-दीप, व्रत-भंग, ममता, दुखिया, भीख में, पत्थर की पुकार, खंडहर की लिपि, प्रलय, उस पार का योगी, ज्योतिष्मती, रमला, प्रतिध्वनि, विराम-चिह्न, चित्र-मंदिर, ग्राम-गीत, विजया, प्रसाद, पाप की पराजय, समुद्र-संतरण, इन्द्रजाल, गुण्डा, हिमालय का पथिक, बेड़ी, मधुआ, कलावती, चित्र वाले पत्थर, भिखारिन, देवदासी, बिसाती, चूड़ी वाली, आँधी।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी—उसने कहा था।

सुदर्शन—न्याय-मंत्री, हार की जीत, कमल की बेटी, संसार की सबसे बडी कहानी, एथेंस का सत्यार्थी, पाप-परिणाम, बलिदान, कवि की स्त्री, कीर्ति का मार्ग, राजपूतानी का प्रायश्चित्त, खरा-खोटा, अंधेरे में, मजदूर, गुरु-मंत्र, अंधेर, दिल्ली का अन्तिम दीपक, धर्म-सूत्र, अठन्नी का चोर, हंस की चाल, सन्यासी, एक स्त्री की डायरी।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'—उद्धार, विधवा, माता का हृदय, रक्षा-बन्धन, अभिन्न, कर्त्तव्य-बल, इक्के वाला, आत्माभिमान, पावन-पतिप, मोह, ताई, पगली, दीपावली, कलावान, विद्रोही।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'—देश-भक्त, उसकी माँ, बुढ़ापा, मुसलमान, हिंदू, घूँघट का पट खोल री, अछूत, रामदाने के लड्डू, माँ को चूनरी की साध, संगीत-समाधि, रेशमी।

चतुरसेन शास्त्री—दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी, लम्बग्रीव, ककड़ी

की कीमत, भिक्षुराज, दे खुदा की राह पर, भग्न, पान वाली, चावर्चिन, हठी हमीर।

राय कृष्णदास—गहूला, नर-राक्षस, भय का भूत, प्रसन्नता की प्राप्ति, माहात्म्य, इनाम, कल्पना, समदुःखिनी, वसन्त का स्वप्न, बीज की बात, कला और कृत्रिमता, कवि और कलावन्त, चित्रकार का चित्त, तापसी की तितिक्षा, सम्राट् का स्वत्व, भेद, अन्तःपुर का आरम्भ।

ज्वालादत्त शर्मा—भाग्य का चक्र, तस्कर, अनाथ बालिका।

इलाचन्द्र जोशी—अनाश्रित, क्रय-विक्रय, अपत्नीक, किड्नैप्ड, फोटो, प्रेम और घृणा, आत्म-हत्या या खून ?

विनोदशंकर व्यास—रूखा स्नेह, भूली बात, अपराध, हृदय की कसक, करुणा, विलम्ब, गायक; स्वर्ग, रधिया, प्रतीक्षा, शय्या पर।

भगवतीचरण वर्मा—प्रायश्चित्त, मुग़लों ने सल्तनत वख्श दी, प्रेजेण्टेस, विक्टोरिया क्रास, वरना हम भी आदमी थे काम के, उत्तरदायित्व, इन्स्टालमेण्ट, एक विचित्र चक्कर है, बॉय ! एक पेग और, डायरी के अंतिम पृष्ठ, छः आने का टिकट, वतंगड़, पटा-बनेठी, एक शाम, मैं पगली हूँ !

जैनेन्द्रकुमार—हत्या, चोरी, दिल्ली मे, साधु की हठ, तमाशा, भाभी, फोटोग्राफी, निर्मम, व्याह, मास्टर जी. जाह्नवी, पत्नी, अपना-अपना भाग्य, चलित चित्त, अपना-पराया, विस्मृति, परदेसी, ग्रामोफोन का रिकार्ड, दुर्घटना, अनबन, दृष्टि-दोष, एक कैदी, बाहुबली, ध्रुव-यात्रा, चालीस रुपये, किसका रुपया, जय-संधि, लाल सरोवर, जनार्दन को रानी, कामना-पूर्त्ति, वह सॉप, दर्शन की राह आत्म-शिक्षण।

अज्ञेय—रोज़, अमर-वल्ली, विपथगा, शत्रु, पगोडावृत्त, कड़िया, एकाकी तारा, दुःख और तितलियाँ, मिलन, परम्परा, पुरुष का भाग्य, चिड़ियाघर, सिगनेलर, पुलिस की सीटी, अछूते फल, इन्दु की वेटी, बदों का खुदा खुदा के वन्दे, कोठरी की बात, छाया, द्रोही, एक घंटे मे, विवेक से बढ़कर, गृहत्याग।

गोविन्दवल्लभ पंत—प्रियदर्शी।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार—काम-काज, तॉगे वाला, क ख ग, डाकू, चौवीस घंटे, एक सप्ताह, वचपन, पगली, ऑसू, गोरा, सन्देह।

कमलाकांत वर्मा—खण्डहर, तकली, पगडंडी, वॉनी।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी—मिठाई वाला, सूखी लकड़ी, अपमान का भाग्य,

धरोहर, आजादी।

प्रभाकर माचवे—कापाय।

शांतिप्रसाद वर्मा—आलोक।

वीरेन्द्रकुमार—सृष्टि का अनुरोध।

मोहनलाल उपाध्याय 'निर्मोही'—प्रतिशोध।

प्रभागचन्द्र शर्मा—डारेथी।

शरत् मुक्तिबोध—आवारे पंछी।

श्यामसुन्दर पण्ड्या 'सुशील'—जमना।

ईश्वरचन्द्र जैन—अँगूठी का पाप।

गजानन माधव मुक्तिबोध—प्रश्न।

राजेन्द्रकुमार सेठी—उर्वशी।

जानकीप्रसाद पुरोहित—पारस।

'जिज्ञासु'—पहले दिन की बात, वीणा, प्रेम-तीर्थ, हम सभी मानव हैं?, वह छाया किसकी थी?, ४२०, उनका क्या गया?

कहानी और कहानीकार

[हिन्दी-कहानी और उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों का मार्मिक विश्लेषण]

प्रो० मोहनलाल 'जिज्ञासु',
एम० ए०, एल-एल० बी०
हिन्दी-विभाग, जसवन्त कॉलेज,
जोधपुर

१६५२
आत्माराम एण्ड संस
पुस्तक-प्रकाशन तथा विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली